Our London Office
11, Aldwych, W. C. 2

Our American Office :
50, Church St., New York,

वष ९, खण्ड २]

जुलाई, १९३१

[सं० ३, पूर्ण सं० १०५



वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
श्रीत्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

Printed at The Fine Art Printing Cottage Chandralok—Allahabad

तार का पता—'भविष्य'

टेलीफ़ोन-नम्बर—२०५

भविष्य

सचित्र राष्ट्रीय साप्ताहिक

के ग्राहक बन कर अपना औचित्य पालन कीजिए। सभी बड़े-बड़े और सुप्रसिद्ध विद्वानों की सम्मति है कि इससे सुन्दर कोई भी साप्ताहिक आज तक इस अभागे देश में प्रकाशित नहीं हुआ था और न किसी पत्र का इतना आतङ्क ही था। इसका एक मात्र कारण यही है कि यह राष्ट्रीय पत्र केवल सेवा की पुनीत भावना से प्रेरित होकर प्रकाशित किया गया है और इसके प्रवर्तकों को इस बात का सन्तोष है कि हिन्दी-संसार ने पत्र की जितनी क़द्र की है, उसकी किसी को भी आशा नहीं थी।

आर्ट-पेपर का कवर

लबालब पृष्ठ-संख्या	४४	वार्षिक चन्दा केवल	१२)
चुने हुए चित्र लगभग	५०	छः माही	... ६॥)
चुटीले कार्टून	३-४	तिमाही	.... ३॥)

एक प्रति का मूल्य चार आने

यदि आप अब तक ग्राहक नहीं हैं, तो नमूने को एक प्रति मँगा कर देखिए अथवा अपने यहाँ के एजेण्ट से माँगिए—लगभग सभी स्थानों में 'भविष्य' की एजेन्सियाँ क़ायम हो गई हैं। जहाँ न हो वहाँ के

एजण्टों को शीघ्रता करनी चाहिए

☞ व्यवस्थापक 'भविष्य' चन्द्रलोक, इलाहाबाद

विषय-सूची

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	जीर्ण-गृह (कविता)	[श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]	२५७
२	सम्पादकीय विचार		२५६
३	कनवजियों का ब्याह	[श्री० देवशङ्कर जी त्रिवेदी, बी० ए०]	२६४
४	पराजय	[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]	२६५
५	वर्तमान मुस्लिम जगत	[एक डॉक्टर अफ़ लिट्रेचर]	२७३
६	वीर नख-शिख (कविता)	[राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट "अम्बिकेश"]	२७८
७	साम्यवाद की बाढ़	[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]	२७६
८	विनाश के पथ पर—	[श्री० कैलाशपति जी त्रिपाठी]	२८७
९	वेश्या का हृदय	[डॉक्टर धनीराम जी 'प्रेम' लन्दन]	२६७
१०	मुरझाया फूल (कविता)	[श्रीमती गायत्री देवी "विन्दु"]	३०६

* * *

विविध-विषय

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
११	परदे की समस्या	[श्री० वृन्दावनदास जी बज़ाज]	३११
१२	मारवाड़ी महिलाओं का वेष-भूषा	[श्री० गोपीकृष्ण जी मोहता, बी० कॉम०]	३१४
१३	हमारी सन्तान	[श्री० मोहनलाल जी बड़जात्या]	३१६

क्रमाङ्क लेख	लेखक	पृष्ठ
१४—हमदर्दी	[साहित्याचार्य 'मग']	३२३
१५—आधुनिक शिक्षा पर दृष्टिपात	[श्री० श्यामनारायण जी बैजल]	३२४
१६—आर्थिक उथल-पुथल का समाज पर प्रभाव	[श्री० रामनिरीक्षणसिंह जी]	३२६

*　　*　　*

क्रमाङ्क लेख	लेखक	पृष्ठ
१७—तू-मैं (कविता)	[कविवर श्री० रामचरित जी उपाध्याय]	३३७
१८—अनासक्त	[श्री० ऋषभचरण जी जैन]	३३८
१९—स्वर्गीय बाबू कृष्णबलदेव वर्मा	[श्री० बालदत्त जी पाण्डेय]	३४९
२०—नारी-जीवन (कविता)	[कविवर आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]	३५३
२१—उपन्यास-कला और प्रेमचन्द के उपन्यास	[श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए० (ऑनर्स), साहित्य-भूषण, विशारद]	३५७
२२—दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह	["पागल"]	३६३

*　　*　　*

रङ्ग-भूमि

क्रमाङ्क लेख	लेखक	पृष्ठ
२३—स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरञ्जन दास		३६५
२४—कवि-सम्राट का प्रमाद		३६६
२५—उन्नतिशील मैसूर		३६७
२६—नरक के अड्डे और पाप का व्यापार		३६८

*　　*　　*

क्रमाङ्क लेख	लेखक	पृष्ठ
२७—दुबे जी की चिट्ठी	[श्री० विजयानन्द दुबे जी]	३७०
२८—चुम्बन के प्रति (कविता)	[श्री० बालकृष्ण राव]	३७२
२९—स्वास्थ्य और सौन्दर्य	[श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०]	३७३
३०—फूल (कविता)	[श्रीमती गायत्रीदेवी "बिन्दु"]	३७६

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

३१—सङ्गीत-सौरभ [सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू) ; शब्दकार—अज्ञात] ३७७
३२—गृह-विज्ञान [श्री० मोहनलाल जी मेहरा, वैद्य] ३७८
३३—आह (कविता) [श्री० 'बघेल'] ... ३७९
३४—केसर की क्यारी (कविता) ३८०
३५—जगद्गुरु का फ़तवा [हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष] ३८१

* * *

चित्र-सूची

क्रमाङ्क चित्र

१—कर्त्तव्य-पालन (तिरङ्गा)
२—सिपाही की दुलहिन (")

आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

३—रूस की सुप्रसिद्ध बॉलशेविक नेत्री—मैडम ज़रनॉफ़
४—कुमारी मीठाँ टाटा, एम० एस-सी०, बार-ऐट-लॉ

सादे

५-५७—भिन्न-भिन्न स्त्री पुरुषों के चित्र तथा ग्रूप आदि—५३ चित्र
५८-६१—४ कार्टून



सिपाही की दुल्हिन

जिसकी मन में मूर्ति, निकट ही समुपस्थित वह अज्ञात मौन !
पर चिन्ता से समय किसे है, पीछे फिर कर देखे कौन ?

— आ० प्र० श्री०

सम्पादक :—
श्री० त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०
(जेल में)

स्थानापन्न सम्पादक :—
श्री० भुवनेश्वरनाथ मिश्र, एम० ए०
"माधव"



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ६ खण्ड २ | जुलाई, १९३१ | संख्या ३ पूर्ण संख्या १०५

जीर्ण गृह

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

लिए कितनी स्मृतियों का कोष,
भिखारी-सा जर्जरता भार !
खड़े हो ओ मेरे गृह आज,
किसे करने को भूला प्यार !

❀

सुलाए कितने वर्ष अतीत,
गोद में खड़े हुए दिन-रात !
बुलाए वातायन से नित्य,
झाँकने वाले बाल-प्रभात !

❀

रात की काली चादर ओढ़,
निकलते थे तारे चुपचाप !
देखते थे वे चारों ओर,
भयानक अन्धकार का पाप !

❀

देखते थे तुम भी उस काल,
हृदय में कर सुस्नेह प्रकाश !
दीप्तिमय छिद्र नेत्र से अचल,
उन्हीं नक्षत्रों का आकाश।

❀

तुम्हारे लघु छिद्रों के नैन,
जानता था कब मैं उस काल ?
प्रकाशित होंगे कभी न हाय,
उठेंगे जब से तारे-बाल !

❀

एक छाया ही का आतङ्क,
बढ़ेगा तुम पर ऐसा आह !
निकल जावेगा तुम पर मूक,
रात्रि-दिन का अविराम प्रवाह !

❀

आह, वे स्मृतियाँ कितनी उग्र,
कहाँ हैं, कहाँ-कहाँ, किस ओर !
यहाँ कैसा था रजनी-काल,
और कैसा तम था, उफ़, घोर !

❀

और मेरी माँ का संसार,
हिल रहा था जब पल, प्रति-पल !
नेत्र की उज्ज्वलता में सिमिट—
गया था अन्धकार अविचल !

❀

आँख की पुतली पल में कभी,
भूल जाती थी अपनी चाल !
देखते थे उसको चुपचाप,
प्यार के पाले भोले बाल !

❀

शुष्क ओठों का अविदित बोल,
चुरा ले गई पापिनी वायु !
ओस की बूँदों सी उड़ चली,
फूल से तन में बैठी आयु !

❀

आँख धीरे-धीरे थी खुली,
दृष्टि निर्बल पहुँची सब ओर !
और पुतली ने धीरे छुआ,
बुझी आँखों का सूखा छोर !

❀

उसी क्षण उज्ज्वल दीप-प्रकाश,
हो गया पल-पल अधिक मलीन !
अन्त में सन्ध्या सा बन कहीं,
हो गया अन्धकार में लीन !

आज भी वह स्मृति ले चुपचाप,
रखे हो अपना अवनत भार !
यही तो है जीवन की हार,
यही तो दो दिन का संसार !

❀

यही तो दो दिन का संसार,
खिलाता है कितने ही फूल !
और दो दिन के भूखे भ्रमर,
भूलते हैं अपनापन भूल !

❀

तुम्हारा सुन्दर उपवन और
तुम्हारा सुन्दर रूप विशाल !
आज है देख रहा संसार,
तुम्हें रोगी का नत कङ्काल !

❀

वायु आकर छू जाती शीघ्र,
देखते हो तुम उसका व्यङ्ग !
कभी सौरभ-भारों से थकी,
सदा लिपटी रहती थी अङ्ग !

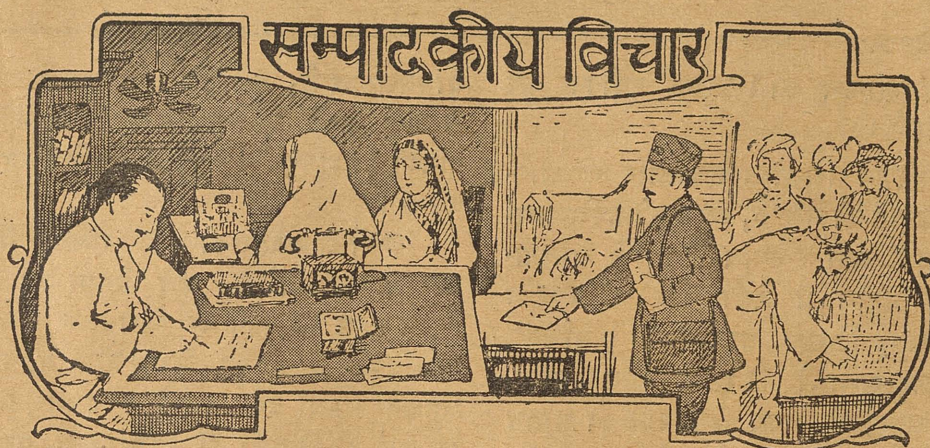
❀

बने हो अब अतीत के विन्दु,
बने हो अवनी पर निरुपाय !
बने स्थिर सकरुण स्वप्नाकार,
लिए अपना अविदित अभिप्राय !

❀

न गिरना, मत गिरना ए सुनो,
सुरक्षित रखना अपना द्वार !
कभी आऊँगा फिर इस ओर,
आँख में भर आँसू दो-चार !







जुलाई, १९३१

भारत का भावी शासन-विधान और स्त्रियाँ



श्रीमती विमनाबाई गायकवाड़ (महारानी साहबा, बड़ौदा), सभानेत्री भारतीय महिला परिषद; श्रीमती मुथूलक्ष्मी रेड्डी, सभापति अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेन्स; श्रीमती ताराबाई मानिकलाल प्रेमचन्द, स्थानापन्न सभानेत्री भारतीय महिला परिषद; श्रीमती हिल्ला रुस्तम जी फ़रीदुन जी, श्रीमती एस० हामिद अली; श्रीमती एस० फ़ैज़ तैयब जी; श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन—भारतीय महिला एसोसिएशन; श्रीमती मालिनी सुखथाङ्कर; डॉक्टर एवं मन्त्रिणी अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेन्स; श्रीमती लक्ष्मीबाई राजवाडे (रानी राजवाडे), प्रबन्ध-मन्त्रिणी अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेन्स तथा श्रीमती हंसा मेहता, अवैतनिक प्रधान मन्त्रिणी; भारतीय महिला परिषद—जैसी सुविख्यात महिलाओं एवं महिला-संस्थाओं ने भारत के भावी शासन-विधान में महिलाओं का क्या स्थान होगा, इस विषय में निम्न-लिखित विज्ञप्ति हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजी है। विज्ञप्ति इस प्रकार है:—

भारतीय महिला परिषद, अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेन्स और भारतीय महिला एसोसिएशन, राष्ट्र के प्रमुख नेताओं द्वारा भारत के भावी शासन-विधान में नागरिकों के समान अधिकारों की घोषणा का स्वागत और समर्थन करते हैं। घोषणा में कहा गया है, कि भारत के भावी-शासन-विधान में बिना स्त्री और पुरुष के भेद के सभी नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य बराबर रहेंगे। धर्म, जाति, वर्ण या स्त्री-पुरुष सम्बन्धी भेद किसी की नागरिकता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न कर सकेंगे। सार्वजनिक नौकरियों, ओहदों और सम्मानों के पाने में और अपनी इच्छानुसार व्यवसाय करने में किसी को किसी प्रकार की बाधा न होगी।

इस घोषणा के अनुसार मताधिकार, प्रतिनिधित्व और नौकरियों के मामले में स्त्री और

पुरुषों की समानता का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है।

इस स्वीकृत सिद्धान्त के आधार पर भारतीय महिलाओं की माँग है, कि उपरोक्त सिद्धान्त के कार्यरूप में आने के समय स्त्रियों के समानाधिकारों के प्रयोग में ऐसा कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाय, जिससे सार्वजनिक निर्वाचनों, व्यवस्थापक सभाओं की सीटों और शासन-सम्बन्धी ओहदों के विषय में स्त्रियों की समान नागरिकता में कोई बाधा पड़े।

वर्तमान शासन-विधान में महिलाओं को जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उसी से बाध्य होकर उपरोक्त माँग पेश करनी पड़ी है। मौजूदा शासन-विधान में स्त्री-पुरुषों की समानता सैद्धान्तिक रूप से तो मान ली गई है; परन्तु व्यावहारिक रूप में मताधिकार के सम्बन्ध में जायदाद आदि के प्रतिबन्धों के कारण स्त्रियाँ उस समानता का कोई उपयोग नहीं कर सकतीं। यद्यपि कॉङ्ग्रेस ने बालिग़ मताधिकार की घोषणा कर दी है; फिर भी सम्भव है कि उस मताधिकार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए जायदाद या शिक्षा-सम्बन्धी कोई न कोई शर्त लगानी पड़े। ऐसी किसी शर्त के लगाने पर स्त्री और पुरुषों की नागरिक समानता चाहे सैद्धान्तिक रूप से भले ही बनी रहे, परन्तु कार्यरूप में स्त्रियाँ उससे कोई लाभ न उठा सकेंगी, क्योंकि समाज की मौजूदा परिस्थिति में ऐसी बहुत कम स्त्रियाँ होंगी, जिनकी अपनी कोई निजी सम्पत्ति हो। मताधिकार के सम्बन्ध में स्त्रियों के लिए कम से कम जायदाद का नियम कर देने पर भी, समाज की वर्तमान रचना में उनको कोई विशेष लाभ न पहुँचेगा, क्योंकि कम से कम जायदाद का नियम कर देने पर भी जायदाद के मामले में पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ पीछे ही रहेंगी। भारत की अधिकांश बालिग़ स्त्रियाँ विवाहिता हैं या विधवाएँ हैं; इसलिए जायदाद के कारण से उन्हें अपने मताधिकार के विषय में अपने पतियों या भूतपूर्व पतियों के आश्रित रहना ही पड़ेगा।

स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में एक और भी कठिनाई है। यदि स्त्रियों को केवल किसी पुरुष की पत्नी या विधवा होने के नाते मताधिकार मिलने का नियम हो जाय, तो भी शिक्षित स्त्रियाँ इसे पसन्द न करेंगी, क्योंकि इस शर्त से स्त्रियों की नागरिकता पुरुषों के वैवाहिक सम्बन्ध से बँध जायगी। हम लोगों की यह ज़बरदस्त राय है, कि स्त्रियों के मौलिक अधिकार का आधार मनुष्यत्व होना चाहिए, विवाह आदि कोई वाह्य सम्बन्ध नहीं।

नागरिक अधिकारों के प्रयोग के लिए साक्षरता का नियम रखने में स्त्रियों का और भी अधिक नुक़सान होगा, क्योंकि साक्षर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कहीं कम है।

आयु की शर्त, जो कि आवश्यक ही है, उसके रखने में भी स्त्रियों का ही अधिक नुक़सान होगा, क्योंकि वोट देने लायक़ आयु वाली साक्षर स्त्रियों की संख्या उनसे अपेक्षाकृत कम है, जिनकी अवस्था कम है और साक्षर हैं।

इसलिए मताधिकार के सम्बन्ध में जायदाद या साक्षरता का कोई प्रतिबन्ध स्त्रियों के लिए कॉङ्ग्रेस द्वारा घोषित अधिकारों के सर्वथा विपरीत सिद्ध होगा।

इन परिस्थितियों में भारतीय महिला परिषद, अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेन्स और भारतीय महिला एसोसिएशन के विचार से बिना किसी शर्त और प्रतिबन्ध के केवल बालिग़ मताधिकार का नियम कर देना, इस देश के स्त्री-पुरुषों की नागरिक समानता क़ायम करने का सब से उत्तम उपाय होगा। उपरोक्त संस्थाओं के मत से जायदाद या साक्षरता

सम्बन्धी प्रतिबन्ध स्त्रियों के नागरिक स्वत्वों के प्रयोग में बाधक सिद्ध होंगे।

इसलिए हमारी राय है, कि २१ वर्ष की आयु के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को व्यवस्थापक तथा शासन-सभाओं के लिए प्रतिनिधि चुनने और स्वयं प्रतिनिधि होने का अधिकार होना चाहिए।

हमें विश्वास है, कि इस रीति से स्त्रियों को साधारण चुनाव द्वारा व्यवस्थापक तथा शासन-सभाओं में पहुँचने का अवसर प्राप्त हो जायगा। फिर उनके लिए सीट रिज़र्व करने, नामज़द करने आदि के अतिरिक्त-प्रबन्धों की भी आवश्यकता न रह जायगी। भारतीय महिलाएँ अपने लिए किसी प्रकार के विशेष प्रबन्ध नहीं चाहतीं। वे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में केवल नागरिकता के समानाधिकारों को ही यथेष्ट समझती हैं।

निस्सन्देह स्त्री-पुरुषों के इन समानाधिकारों के अनुसार स्त्रियों को भी पुरुषों की ही तरह कोई भी पेशा या व्यापार ग्रहण करने का तथा किसी भी सार्वजनिक नौकरी या पद के पाने का अधिकार रहेगा।

साथ ही इसके नागरिक स्वत्वों के न प्रयोग कर सकने की अयोग्यता व्यक्तिगत रहेगी। नागरिक अधिकार के सम्बन्ध में किसी स्त्री के पति की अयोग्यता से स्त्री की योग्यता में बाधा न पड़ सकेगी।

उपरोक्त विज्ञप्ति के अनुसार भावी शासन-विधान में महिलाएँ अपने लिए किसी प्रकार का विशेषाधिकार या संरक्षण नहीं चाहतीं; वे केवल मनुष्य के नाते पुरुषों के बराबर नागरिकता के अधिकार मात्र चाहती हैं। परन्तु उनका कहना है, कि नागरिकता के अधिकारों की यह बराबरी केवल सैद्धान्तिक न होकर, व्यावहारिक भी होनी चाहिए। इसके लिए मताधिकार के नियमों की रचना करते समय स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का पूरा-पूरा ख़्याल रखना पड़ेगा। मताधिकार के सम्बन्ध में जायदाद या शिक्षा का नियम स्त्रियों के लिए अनुकूल न होगा, क्योंकि वर्तमान सामाजिक रचना में ऐसी बहुत कम स्त्रियाँ होंगी, जिनकी अपनी कोई निजी सम्पत्ति हो या जो शिक्षिता ही हों। उनका कहना है, कि प्रत्येक बालिग़ स्त्री-पुरुष मात्र को मत देने का अधिकार होना चाहिए। केवल इसी उपाय से स्त्रियाँ अपने नागरिक अधिकारों की बराबरी का प्रयोग कर सकेंगी। विज्ञप्ति में यह भी कहा गया है, कि स्त्रियों की नागरिकता उनके पुरुषों के आधार पर न स्वीकार की जानी चाहिए। स्त्री-मात्र को केवल मनुष्यता के नाते नागरिकता का अधिकार होना चाहिए। विवाह आदि वाह्य सम्बन्धों का स्त्रियों के नागरिकता के अधिकार-निर्धारण में कोई स्थान न होना चाहिए। विवाह सदृश सम्बन्ध मानव-जीवन के लिए वाह्य सम्बन्ध है अथवा आन्तरिक सम्बन्ध है—इस विषय में मतभेद हो सकता है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि हर हालत में पुरुषों के आधार पर समाज में स्त्रियों का स्थान निर्धारण करना उचित नहीं कहा जा सकता।

बालिग़ मताधिकार के सम्बन्ध में हमारा विचार है, कि उसको व्यावहारिक रूप देने में अभी अनेकों कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं। जायदाद के सम्बन्ध में यदि कोई ऐसा क़ानून बन जाय, जिससे स्त्रियों को अपने-अपने पुरुषों की कमाई का एक निश्चित हिस्सा पाने का अधिकार हो जाय, तो स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में जायदाद के नियम की कठिनाई हल हो सकती है। जब तक ऐसा क़ानून नहीं बन जाता, तब तक शिक्षित पुरुष अपनी ओर से इसी नियम का पालन कर सकते हैं।

* * *

बीसवाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का बीसवाँ वार्षिक अधिवेशन, इस साल गत मुहर्रम की छुट्टियों में—ता० २६, २७, २८ और २९ मई को कलकत्ते में हुआ था। वयोवृद्ध साहित्य-सेवी और ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि श्रीयुत जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर', बी० ए० ने उसके अध्यक्ष का और बिहार के विख्यात विद्वान, संस्कृत



कॉलेज कलकत्ता के प्रोफ़ेसर पण्डित सकलनारायण जी शर्मा काव्य-व्याकरण सांख्यतीर्थ महोदय ने उसके स्वागताध्यक्ष का आसन सुशोभित किया था।

इन दोनों विद्वानों के भाषण, साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर, सामयिक और गवेषणापूर्ण थे। अध्यक्ष महोदय ने हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति और उसके क्रमिक विकास से लेकर वर्तमान अवस्था तक, सभी अङ्गों पर अपना सारगर्भित और सुचिन्तित विचार प्रकट किया। साथ ही आपने बहुत थोड़े शब्दों द्वारा सम्मेलन की वर्तमान अवस्था की ओर भी प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित किया। स्वागताध्यक्ष महोदय ने भी कलकत्ता महानगरी के इतिहास का वर्णन करते हुए बड़े सुन्दर शब्दों में उसकी हिन्दी-सेवाओं का उल्लेख किया। इसके साथ ही कलकत्ते में हिन्दी की वर्तमान, उन्नतिशील प्रगति का भी आपने विशद वर्णन किया।

फलतः इन दोनों भाषणों के लेहाज़ से तथा श्री० गोकुलचन्द जी आदि कई उदार-हृदय दानियों की कृपा से जो २१,०००) की आर्थिक सहायता सम्मेलन को प्राप्त हो गई है, उस दृष्टि से तो हम इस सम्मेलन को कुछ अंशों में सफल कह सकते हैं, अन्यथा गत कई वर्षों की तरह कलकत्ते का यह बीसवाँ सम्मेलन भी एक 'चुनाव-सम्मेलन' मात्र ही था; क्योंकि इस सम्मेलन का सब से महत्वपूर्ण कार्य आगामी वर्ष के लिए नए पदाधिकारियों का निर्वाचन था, परन्तु इस सम्बन्ध में भी सम्मेलन ने कहाँ तक सफलता प्राप्त की है, यह भविष्य ही बतलाएगा।

इस साल सम्मेलन में प्रतिनिधियों की संख्या गत कई वर्षों की अपेक्षा भी कम थी। इससे मालूम होता है, कि सम्मेलन की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शिथिल प्रगति के साथ ही उसकी ओर से साधारण हिन्दी-प्रेमियों की उदासीनता भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। यह सम्मेलन तथा हिन्दी-प्रेमी जनता, दोनों के लिए दुख और कलङ्क की बात है।

इस साल सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों की संख्या पूरे डेढ़ दर्जन अर्थात् अट्ठारह है। परन्तु दो-एक को छोड़ कर, बाक़ी सभी प्रस्ताव निर्जीव हैं। क्योंकि इन प्रस्तावों में सम्मेलन के भावी कार्यक्रम की उन्नति की आशा की ज़रा भी झलक नहीं दिखाई देती। सभी प्रस्तावों में इसी परम्परागत 'अनुरोध' और 'प्रार्थना' की परिपाटी का निर्वाह किया गया है। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं ने स्वर्गीय श्री० गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी के स्मारक के लिए जो एक लाख रुपए की अपील निकाली है, उसका समर्थन किया गया और इसके लिए धन एकत्र करने का अनुरोध किया गया। अदालतों से हिन्दी में कार्रवाई करने का अनुरोध किया गया, राजाओं से अपना राजकार्य हिन्दी में करने की प्रार्थना की गई। नेताओं से अनुरोध किया गया कि यदि ब्रिटिश सरकार से कोई सन्धि हो तो उस सन्धि-पत्र पर हिन्दी में ही हस्ताक्षर किए जायँ और अगर ऐसा असम्भव हो तो किसी दूसरी देशी भाषा में हस्ताक्षर कर देने से भी काम चल सकता है! स्वर्गवासी साहित्य-सेवियों के कुटुम्बों की सहायता के लिए एक 'साहित्य-सेवक-कुटुम्ब सहायक निधि' की स्थापना का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। परन्तु मालूम नहीं, इस 'निधि' की स्थापना सम्मेलन के प्रधान-मन्त्री महोदय द्वारा होगी या किसी स्वतन्त्र समिति द्वारा। यह भी पता नहीं, कि इस महान कार्य का भार किन सज्जनों ने अपने कन्धों पर उठाया है? अस्तु। कवि-सम्मेलनों से अनुरोध किया गया है, कि अश्लील कविताएँ न पढ़ी जायँ और समाचार-पत्रों के सञ्चालकों से अनुरोध किया गया है कि अपने पत्रों में कुरुचिपूर्ण विज्ञापन न छापें।

व्याख्यानों की दृष्टि से सम्मेलन अवश्य सफल रहा। श्री० राजेन्द्रप्रसाद जी, श्री० पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, श्री० रामदास जी गौड़ और श्री० रामनरेश जी त्रिपाठी आदि के सुन्दर, सुललित और सामयिक भाषण हुए; परन्तु हिन्दी-भाषियों की ओर से कोई निबन्ध नहीं पढ़ा गया। हाँ, प्रोफ़ेसर सुनीतिकुमार चैटर्जी ने एक सुन्दर निबन्ध पढ़ा था, जो पाण्डित्यपूर्ण और मनोरञ्जक था।

'मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक' के प्रवर्तक श्री० गोकुलचन्द जी ने ग्रन्थ-प्रकाशन के लिए दस हज़ार रुपए, श्री० बहादुरसिंह जी सिंघई ने प्रयाग में एक संग्रहालय स्थापित करने के लिए साढ़े बारह हज़ार रुपए सम्मेलन को दिए। ये दोनों ही सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं और सब से अधिक धन्यवाद के पात्र हैं, श्री० सीताराम जी सेखसरिया, जिन्होंने पाँच वर्षों तक हिन्दी की योग्य लेखिकाओं को पाँच-पाँच सौ रुपए पुरस्कार प्रदान करने के

लिए ढाई हज़ार रुपए देने की कृपा की है। हम आशा करते हैं कि इससे हिन्दी-लेखिकाओं का उत्साह बढ़ेगा। परन्तु अच्छा होता, अगर किसी तरह 'मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक' की तरह इस 'स्त्री-लेखिका-पुरस्कार' को भी स्थायित्व प्राप्त हो जाता। देश के उदार हृदय साहित्य-प्रेमी दानियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

स्वागतकारिणी समिति ने यथासाध्य अपने कर्तव्य का यथेष्ट पालन किया। प्रतिनिधियों के स्वागत, आराम और भोजन-शयन आदि की व्यवस्था बड़ी ही सुन्दर थी। कलकत्ते की हिन्दी-नाट्य-परिषद और बजरङ्ग-परिषद की ओर से अभिनय द्वारा उनके मनोरञ्जन का प्रबन्ध भी अच्छा था।

परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी, इधर कई वर्षों से सम्मेलन की जड़ में जो घुन लग गए हैं, उनके प्रतिकार का कोई उपाय इस बीसवें अधिवेशन में भी नहीं हो सका। सम्मेलन की जीवनी-शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है और हमें विश्वास नहीं होता, कि इस वर्ष भी उसकी दशा कुछ सुधरेगी। क्योंकि वर्तमान मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों की योग्यता, विद्वत्ता और कार्यपटुता के क़ायल होते हुए भी, सम्मेलन के अध्यक्ष श्री० रत्नाकर जी के शब्दों में हम उन्हें 'बहुधन्धी' समझते हैं। हमें आशङ्का है कि ये सज्जन सम्मेलन को अपना यथेष्ट समय दे सकेंगे या नहीं। उदाहरण के लिए हम श्री० दुर्गाप्रसाद जी खेतान का ज़िक्र कर सकते हैं। आप सम्मेलन के प्रचार-मन्त्री चुने गए हैं। निस्सन्देह आप एक सुयोग्य कार्यकर्त्ता और उत्साही युवक हैं। परन्तु आप कलकत्ता हाईकोर्ट के अटर्नी हैं। कलकत्ता बड़ा-बाज़ार की दर्जनों सभाओं से आपका सम्बन्ध है। इसके सिवा समाज-सुधार सम्बन्धी कामों में आप प्रमुख भाग लिया करते हैं। ऐसी दशा में कैसे यह आशा की जाए, कि आप अपना अधिक से अधिक समय सम्मेलन के प्रचार-सम्बन्धी कार्यों में लगा सकेंगे। क़रीब-क़रीब ऐसी ही दशा अन्यान्य सज्जनों की भी है। इनमें भी कई वकील हैं, कई प्रोफ़ेसर तथा अन्य प्रकार के व्यवसायी। सबके पास समय का नितान्त अभाव है। ये सम्मेलन के काग़ज़-पत्रों तथा सरक्यूलरों पर हस्ताक्षर कर सकते हैं या घण्टे-आध घण्टे सम्मेलन-कार्यालय में जाकर निरीक्षण का कार्य कर सकते हैं—इससे अधिक की आशा इनसे नहीं की जा सकती।

इसलिए हमारी सम्मति है, कि जब तक सम्मेलन को कोई अधिक से अधिक समय देने वाला सुयोग्य कार्यकर्ता न मिल जाए और जब तक उसके मन्त्रि-मण्डल के वर्तमान सङ्गठन में आमूल परिवर्तन न हो सके, तब तक कोई एक सुयोग्य वैतनिक सहकारी मन्त्री रख लिया जाय जो अपना सारा समय सम्मेलन के कामों में लगा सके। इसके सिवा हिन्दी जनता को भी चाहिए कि वह समय-समय पर सम्मेलन की सुध लेती रहे। क्योंकि हिन्दी-साहित्य हमारे लिए राष्ट्रीय कॉङ्ग्रेस की तरह ही एक अत्यन्त उपयोगिनी संस्था है। राष्ट्र-भाषा के प्रचार जैसे महत्वपूर्ण कार्य का भार उसके कन्धों पर है। हिन्दी-साहित्य की उन्नति और देश के कोने-कोने में हिन्दी का प्रचार करने के उद्देश्य को लेकर ही इस संस्था की स्थापना हुई थी। साथ ही अपने जीवन के आरम्भिक काल में, इस सम्बन्ध में उसने कार्य भी ख़ूब किया था। परन्तु उसका प्रचार-कार्य केवल मद्रास तक ही रह गया। बल्कि यों कहना चाहिए, कि पारस्परिक मतभेद और तत्कालीन कार्यकर्ताओं की अपटुता के कारण वह उसे भी पूरा न कर सकी। तब से आज तक उसकी दशा वही रह गई। प्रत्येक अधिवेशन के अवसर पर एक बार बासी कढ़ी में उबाल आता है, अख़बारों में लम्बे-चौड़े लेख मात्र छप जाते हैं। सुधार के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी आशाएँ की जाती हैं, परन्तु अन्त में फिर टाँय-टाँय फिस होकर रह जाता है! साल भर तक कोई सम्मेलन का नाम भी नहीं लेता। बहुधा सभापति भी ऐसे चुने जाते हैं, जो केवल श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम करने के योग्य ही होते हैं; उनमें न तो सम्मेलन के लिए सिर-तोड़ परिश्रम करने की शक्ति होती है, न प्रवृत्ति। फलतः हमें सम्मेलन के कल्याण के लिए कुछ दिनों तक ऐसे जीवन-यात्रा से थके हुए सभापतियों का निर्वाचन भी बन्द कर देना चाहिए और यह पद ऐसे कार्यक्षम तथा श्रमशील व्यक्ति को देना चाहिए, जो साल भर तक तन्मय भाव से सम्मेलन की सेवा कर सके। क्या सम्मेलन के कर्णधार हमारे इस नम्र निवेदन पर ध्यान देंगे?

कनवजियों का ब्याह

[श्री० देवशङ्कर जी त्रिवेदी, बी० ए०]

बेच कर लड़कों को धन-लोभ,
अनेकों करते कपटाचार।
ब्याह का अद्भुत रच कर स्वाँग,
धर्म के बनते ठेकेदार !
यही क्या पौराणिक है राह,
इसे कहते क्या धर्म-विवाह ?

धरा सिर मौर रूप को बना,
बनाया लड़के को लङ्गूर।
किन्तु इसकी किसको परवाह,
शान्ति जो रूठ गई कुछ दूर।
हृदय की कौन लगाता थाह,
किन्तु सब कहते सुन्दर ब्याह !

मनाते पुत्र-वधू यदि मरे,
ब्याह कर पावें द्रव्य अपार !
धर्म की ओट अनेकों हाय,
छिपे हैं अगनित पाप-पहार !
हो गया दूजा तुरत निकाह,
मृत्यु से मिश्रित ऐसा ब्याह !

साथ लेकर के बड़ी बरात,
चार दिन टिकते भरे गुमान।
मिला कम ठहरौनी से द्रव्य,
लौट जाते घर तज कुल-कान।
धर्म के भव्य भवन को ढाह,
हो रहे इस प्रकार के ब्याह !

होय विस्वा में ऊँचा बड़ा,
चहे हो रोगी दीन मलीन।
तुरत कन्या का करके ब्याह,
आप भी कहलावें सुकुलीन।
कठिन है विस्वा-प्रथा प्रवाह,
यही है कनवजियों का ब्याह !

जोड़ कर दो शरीर सुख पाय,
कर दिया गुड़ियों का सा ब्याह !
किन्तु उस पर बीती क्या कहो,
जिसे करना जीवन-निर्वाह ?
जन्म भर निकले मुख से आह,
कहें कैसे आदर्श विवाह ?

पढ़े-अनपढ़े सभी हैं ग्रसित,
कभी क्या होगा उनको ज्ञान,
दयामय दीनबन्धु तुम करो,
तुरत कनवजियों का उत्थान !!
दिखाओ पर तुम भी उत्साह,
मिटा दो यह कुरीतिमय ब्याह।

हृदय से हृदय मिला यदि नहीं,
प्रेम की बही नहीं जो धार।
बजी वीणा यदि सुन्दर नहीं,
व्यर्थ ही जोड़े उसमें तार।
नहीं उत्पन्न हुई जो चाह,
भला फिर कैसा हुआ विवाह ?

देख कर गुण-अवगुण सद्‌ रूप,
तोड़ कर टट्टी छोड़ शिकार।
चले जाने दो जीवन बीच,
प्राण हो घुल कर एकाकार,
तभी होगा स्वधर्म निर्वाह,
जभी होंगे ऐसे फिर ब्याह।

न होवे कोई 'मान्य' 'अमान्य',
न हो जिसमें धन की बौछार।
बँधे हों प्रेम-शृङ्खला बीच,
लखें सब मोद भरा संसार।
प्रीति के सिन्धु बीच अवगाह,
रचें घर-घर में मङ्गल ब्याह।

तार का पता : 'चाँद' टेलीफ़ोन नम्बर : २०५

प्रधान कार्यालय,

'भविष्य' और 'चाँद'

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

एक परमावश्यक अपील

(आप बिना हानि उठाए हुए कैसे संस्था की सामयिक सहायता कर सकते हैं ?)

पिछले २-३ वर्षों में संस्था को केवल अपनी निर्भीक नीति को अक्षुण्ण रखने के लिए जो मूल्य चुकाना पड़ा है, इसका समाचार आपने समय-समय पर पढ़ा ही होगा। फल-स्वरूप आज हमारे सामने जीवन और मृत्यु का प्रश्न उपस्थित हो गया है। देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए अनुभवी पाठक-पाठिकाएँ हमारी कठिनाइयों का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। और यदि शीघ्र ही हमें अपने प्रेमी पाठक-पाठिकाओं का वास्तविक सहयोग प्राप्त न हुआ, तो परिस्थिति हमारे हाथों से बाहर हो सकती है। ऐसी हालत में संस्था की सहायता करना प्रत्येक विचारशील भारतवासी का कर्त्तव्य होना चाहिए; और चूँकि 'चाँद' तथा 'भविष्य'-परिवार की संस्था पर सदैव कृपा-दृष्टि रही है—और यह केवल उनके सहयोग और सहानुभूति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, कि संस्था अब तक इतने अधिक एवं प्रबल विरोधियों का मुक़ाबला ईमानदारी से करती रही है—जब कभी संस्था पर आपत्ति आई है, संस्था के प्रेमियों ने उसे अपने दामन में छिपा लिया है—इसी अभिन्न-सहयोग से प्रोत्साहित होकर इन पंक्तियों का लेखक आपसे यह परमावश्यक अपील करने का साहस कर रहा है। मुझे आशा है, यथाशक्ति आप संस्था को सहायता करके अवश्य अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे।

आप सहायता कैसे कर सकते हैं ?

(१) यदि आप 'भविष्य' तथा 'चाँद' के ग्राहक नहीं हैं, तो उसके ग्राहक बन कर।
(२) यदि आप एक पत्र के ग्राहक हैं, तो दूसरे पत्र के ग्राहक बन कर।
(३) यदि आप दोनों पत्रों के ग्राहक हैं तो पुस्तकें मँगा कर।
(४) यदि अब तक आपने हमारी प्रकाशित पुस्तकों का नया सेट नहीं मँगाया है, तो उसे मँगा कर, जिसमें निम्न-लिखित पुस्तकें हैं :—

(क) पुनर्जीवन (स्वर्गीय काउण्ट टॉल्सटॉय)
(ख) लतखोरीलाल (श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०)
(ग) रहस्यमयी (श्री० ऋषभचरण जैन)
(घ) चित्तौड़ की चिता (प्रो० रामकुमार वर्मा, एम० ए०)

(५) यदि आप सेट मँगा चुके हैं, तो संस्था द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकों में से कम से कम १०) रु० के मूल्य की पुस्तक मँगा कर इस परीक्षा के अवसर पर संस्था को सहायता कर सकते हैं।

(६) यदि ये सारी पुस्तकें भी आपके पास मौजूद हैं, तो अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित इसी मूल्य की पुस्तकें मँगा कर भी आप थोड़ी-बहुत सहायता कर सकते हैं। आपके लिखने पर बड़ा सूचीपत्र सेवा में भेज दिया जायगा।

(७) यदि आप चाहें तो अपने इष्ट-मित्रों अथवा सखी-सहेलियों में भी इन्हीं बातों का प्रचार कर अनायास ही इस कठिन समय में संस्था की सहायता करके अपार यश के भागी हो सकते हैं।

इस संस्था द्वारा प्रकाशित केवल उन पुस्तकों की सूची, जो इस समय प्रस्तुत हैं—नीचे दी जा रही है। यों तो संस्था द्वारा प्रकाशित अन्य बहुत सी पुस्तकें हैं, पर उनके सारे संस्करण समाप्त हो चुके हैं, और चूँकि आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब तक उनका नवीन संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका है, इसीलिए इस संक्षिप्त सूची में उनका उल्लेख नहीं किया गया।

मुझे आशा है, उपरोक्त पंक्तियों पर आप अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे और यथाशक्ति संस्था की सहायता करके हमें और भी उत्साह से देश तथा समाज की सेवा करने का अवसर प्रदान करेंगे; यदि आपने ऐसा नहीं किया, तो वास्तव में मुझे हार्दिक क्लेश होगा और इसका परिणाम संस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकता है!

मुझे आशा है, मेरी इन पंक्तियों पर मेरे भाई और बहिनें गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे!

आपका सदैव शुभचिन्तक,

सञ्चालक 'चाँद' और 'भविष्य'
तथा विद्याविनोद-ग्रन्थमाला इत्यादि

१—पुनर्जीवन	५)	११—दाम्पत्य जीवन	२॥)	२१—रहस्यमयी	१॥)
२—पाक-चन्द्रिका	४)	१२—प्राणनाथ	२॥)	२२—जननी जीवन	१)
३—मालिका	४)	१३—महात्मा ईसा	२॥)	२३—मनमोदक	॥)
४ आदर्श चित्रावली	४)	१४—बाल-रोग-विज्ञानम्	२॥)	२४—ग्रह का फेर	॥)
५—व्यङ्ग चित्रावली	४)	१५—मानिक-मन्दिर	२॥)	२५—राष्ट्रीय गान	।)
६ - सन्तान-शास्त्र	४)	१६—विधवा-विवाह-मीमांसा	३)	२६—चुहुल	१)
७—लतखोरीलाल	४)	१७—देवदास	२)	२७—आशा पर पानी	॥=)
८—मणिमाला	३)	१८—मनोहर ऐतिहासिक कहा०	२)	२८—मेहरुन्निसा	॥)
९—निर्वासिता	३)	१९—विवाह और प्रेम	२)	२९—नयन के प्रति	।=)
१०—दुबे जी की चिट्ठियाँ	३)	२०—मनोरञ्जक कहानियाँ	१॥)	३०—घरेलू चिकित्सा	॥)

पराजय

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]



शाम के पाँच बज चुके हैं। बाबू ज्योतिप्रसाद अपने कमरे में बैठे हुए एक समाचार-पत्र पढ़ रहे हैं। इनकी वयस २३-२४ वर्ष के लगभग है। गौर वर्ण, दोहरा बदन, देखने में एक सुन्दर तथा बलिष्ठ युवक मालूम होते हैं।

ज्योतिप्रसाद समाचार-पत्र पढ़ते जाते थे और बीच-बीच में कमरे के सदर द्वार की ओर देखते जाते थे—मानो किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों। सहसा किसी के पैरों की आहट पाकर वह चौंक पड़े। द्वार की ओर दृष्टि डाली तो एक मुसलमान युवक को आते देखा। उसे देखते ही वह बोले—आओ यार निसार, बड़ा इन्तज़ार कराया।

मुसलमान युवक भी शरीर का हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर था। उसने कमरे में आकर अपनी तुर्की टोपी मेज़ पर पटक दी और कुर्सी पर बैठते हुए बोला—बड़ी गर्मी पड़ने लगी यार!

यह कह कर उसने जेब से रूमाल निकाला और मुँह पोंछने लगा।

ज्योतिप्रसाद बोले—"पङ्खा और तेज़ कर दूँ?" निसारहुसैन छत में लगे हुए बिजली के पङ्खे की ओर ताक कर बोला—"बस ठीक है।"

ज्योतिप्रसाद बोले—चल कर आए हो इससे गर्मी मालूम होती है, पसीना सूख जाने पर सब ठीक हो जायगा।

"चल कर तो आया ही हूँ, मगर गर्मी भी ज़्यादा है।"—निसार ने कहा।

"हाँ, गर्मी तो हुई है।"

थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। तदुपरान्त ज्योतिप्रसाद ने पूछा—देर क्यों लग गई?

"बात यह हुई कि मेल से चचा जान तशरीफ़ ले आए, उनसे बातचीत करने में देर लग गई।"

"बनारस से आए हैं?"—ज्योतिप्रसाद ने पूछा।

"हाँ! वहाँ हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हुआ था न; इसी वजह से कुछ दिनों के लिए चले आए हैं। जब वहाँ अमनो-अमान हो जायगा तब चले जाएँगे।"

"अब तो अमन ही है।"

"हाँ, बज़ाहिर (प्रकट में) तो अमन हो गया है, लेकिन अभी भीतर ही भीतर खिचड़ी पक रही है।"

"यार, यह हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा तो मुल्क के लिए बहुत ही बुरा है।"—ज्योतिप्रसाद ने मुँह बना कर कहा।

"बेशक! इससे किसको इन्कार हो सकता है? मगर किया क्या जाय?"

"आख़िर इन झगड़ों को बन्द करने का कोई ज़रिया हो सकता है?"

"फ़िलहाल तो मुश्किल दिखाई पड़ता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों क़ौमों में ऐसे लोग मौजूद हैं, जिनका यह ख़्याल है कि हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (मेल) हो ही नहीं सकता। ऐसी हालत में झगड़े बन्द होने की कौन सी उम्मीद है?"

"हाँ, यह तो ठीक है। ख़ैर, कभी न कभी तो लोग समझेंगे ही।"

"समझेंगे क्यों नहीं? मगर तभी, जब काफ़ी नुक़्सान उठा लेंगे।"

ज्योतिप्रसाद कुछ देर तक मौन रह कर बोले—एक बात तो है यार, बुरा न मानना! मुसलमानों में बड़ी जल्दी जोश आ जाता है और ये लोग बहुत जल्द लड़ने को दौड़ पड़ते हैं। ज़्यादातर इन झगड़ों की शुरुआत मुसलमानों की ही तरफ़ से होती है।

"यह बात तुम्हारी कुछ हद तक बिल्कुल ठीक है। इसकी एक वजह तो यह है कि मुसलमानों में तालीम-याफ़्ता लोग बहुत कम हैं। दूसरी बात यह है कि अपने मज़हब के असली उसूलों से ज़्यादातर लोग बिल्कुल नावाक़िफ़ (अनभिज्ञ) रहते हैं। पूरा क़ुरान-शरीफ़

हिफ़्ज़ (कण्ठस्थ) है, मगर एक लफ़्ज़ के मानी पूछिए तो नहीं बता सकेंगे। ज़्यादा से ज़्यादा वह यह समझते हैं कि कुफ़्र को मिटाना और काफ़िरों को मारना ही मुसलमानों का मज़हब है। और कुफ़्र को मिटाने की कोशिश में जो मुसलमान मरेगा वह सीधा बिहिश्त को जायगा। नमाज़ चाहे कभी न पढ़ें, रोज़ादारी न करें, मगर कुफ़्र और काफ़िरों को मिटाने के लिए फ़ौरन तैयार हो जायँगे। हिन्दुओं की बाबत मुझे अगर ज़्यादा नहीं, तो इतनी वाक़फ़ियत तो ज़रूर है कि वे लोग मुसलमानों को मारना अपना मज़हब नहीं समझते—क्यों न ?"

ज्योतिप्रसाद बोले—बिल्कुल यही बात है। हमारे यहाँ यह कहीं नहीं कहा गया कि मुसलमानों या विधर्मियों को मारना पुण्य का काम है और इससे आदमी सीधा स्वर्ग में पहुँच जाता है। मगर भाई साहब, इस बीसवीं सदी में तो लोगों में इतनी समझ पैदा हो जाना चाहिए कि ये बातें ठीक नहीं।

"बात यह है कि हमारे मज़हबी पेशवा मुल्ला लोग हैं। वह ख़ुद लोगों को यही तालीम देते हैं कि काफ़िरों को मिटा दो।"

"तो उनकी बात लोग मानते क्यों हैं ?"

"नावाक़फ़ियत की वजह से। जब ख़ुद कुछ पढ़ नहीं सकते, समझ नहीं सकते, तो उन्हें मुल्लाओं की बात माननी ही पड़ती है।"

"भला जब झगड़ा होता है तो कोई मुल्ला भी लड़ने जाता है ?"—ज्योतिप्रसाद ने पूछा।

"तोबा कीजिए ! मुल्ला साहब तो दूसरों को लड़वाना जानते हैं ; ख़ुद नहीं लड़ते। जब लड़ाई होने लगती है तो मुल्ला जी हुजरे (कोठरी) के अन्दर घुस कर बैठ रहते हैं।"

"जब उनकी यह दशा है तो लोग उनकी बात मानते क्यों हैं ?"

"इसकी वजह भी यही है कि लोगों में तालीम नहीं है। वह मुल्लाओं की चालाकियों को समझ नहीं सकते।"

"कितने अफ़सोस की बात है कि एक जगह रहते-बसते सदियाँ बीत गईं, मगर फिर भी एक-दूसरे का ख़ून पीने को तैयार।"

"मगर अब लोग आहिस्ते-आहिस्ते समझ रहे हैं कि ये बातें बुरी हैं।"—निसारहुसैन ने कहा।

"न कहीं समझ रहे हैं। पहले बरसों में कभी कहीं कोई झगड़ा होता था—आजकल रोज़ाना यही बातें हैं, और एक जगह नहीं, हर जगह !"

"इसकी वजह दूसरी ही है जनाब ! आपको मालूम नहीं, न जाने कितने लोग इसी बात की रोटियाँ खाते हैं कि हिन्दू-मुसलमानों को लड़ाते रहें। हिन्दू-मुसलमान ख़ुद थोड़ा ही लड़ते हैं—लड़वाने वाला कोई और ही है।"

"यह तो बिल्कुल ठीक है कि हिन्दू-मुसलमान लड़ते नहीं, लड़वाए जाते हैं। लेकिन अब तो लोगों को चेत जाना चाहिए।"

"चेतेंगे, आज न चेतेंगे कल चेतेंगे। जब लगातार ठोकरें खाएँगे, नुक़सान उठाएँगे तो चेतेंगे ही। अच्छा अब यह बताओ, टेनिस खेलना है या नहीं ?"

"हाँ-हाँ, खेलना क्यों नहीं है।"

"तो उठिए, बहुत वक़्त हो गया।"

"अभी पाँच मिनिट में चलता हूँ।"—यह कह कर ज्योतिप्रसाद उठ खड़े हुए।

२

निसारहुसैन और बाबू ज्योतिप्रसाद एक ही मोहल्ले के रहने वाले हैं। दोनों में बड़ी गाढ़ मैत्री है। दोनों व्यक्ति ग्रेजुएट हैं।

दोनों क्लब में पहुँचे। पहले तो लगभग एक घण्टे तक दोनों टेनिस खेलते रहे। तत्पश्चात् टेनिस-लॉन के किनारे पर रक्खी हुई बेञ्चों पर बैठ कर सुस्ताने लगे। ज्योतिप्रसाद पसीना पोंछते हुए बोले—आजकल एक-दो गेम से अधिक नहीं खेला जाता।

निसारहुसैन ने कहा—गर्मी क्या थोड़ी पड़ रही है।

"इन सब बातों का आनन्द तो जाड़ों में ही रहता है।"

"इसमें क्या शक है। जाड़ों में तो जितनी ज़्यादा मेहनत करो, उतना ही आनन्द आता है। आजकल तो पसीने के मारे फ़िशार बिगड़ जाता है।"

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे अन्य लोगों का खेल देखते रहे। एक व्यक्ति का खेल देख कर निसारहुसैन बोले—इस महाराजसिंह को कभी खेलना न आएगा।

"अब क्या आएगा, जो आना था आ चुका।"—ज्योतिप्रसाद ने कहा।

"न जाने क्या बात है कि बाज़ आदमी चाहे बरसों खेलें, मगर उन्हें खेलना नहीं आता और बाज़ आदमी बहुत जल्द सीख जाते हैं।"—निसार ने कहा।

"हाँ और क्या! चन्दनप्रसाद को ही देख लो न, कितना जल्द खेलने लगा।"

"और अच्छा खेलने लगा।"

फिर दोनों मौन होकर खेल देखने लगे। बीच-बीच में खेलने वालों के कौशल पर टीका-टिप्पणी भी करते जाते थे।

हठात् निसार ने कहा—चलो पानी-वानी पिएँ; प्यास लगी है।

दोनों उठ कर चले। जिस स्थान पर वे बैठे थे उस स्थान से पचास क़दम की दूरी पर एक छोटी सी इमारत बनी हुई थी। यह इमारत क्लब की थी। दोनों इमारत के अन्दर घुसे। बराण्डे को पार करके हॉल में पहुँचे। हॉल में अनेक छोटी-छोटी मेज़ें लगी हुई थीं और प्रत्येक मेज़ के पास चार कुर्सियाँ रक्खी थीं। दोनों एक ख़ाली मेज़ के पास जाकर बैठ गए। निसार ने द्वार पर खड़े हुए आदमी को बुला कर कहा—"दो ग्लास आइस-क्रीम—जल्दी!" बिजली के पङ्खे की हवा खाते हुए ज्योतिप्रसाद ने कहा—"आजकल पङ्खा भी एक बहुत बड़ी न्यामत है।"

निसारहुसैन ने कहा—इसमें क्या शक है। इस वक्त अगर यहाँ पङ्खा न होता, तो आप एक मिनिट तो बैठ नहीं सकते थे।

कुछ क्षणों में नौकर दो ग्लास लाकर रख गया। दोनों ने आइस-क्रीम पीकर एक गहरी साँस छोड़ी। ज्योतिप्रसाद बोले—अब ज़रा होश आया!

फिर दोनों मौन हो गए। इसी समय दो अन्य व्यक्ति इन दोनों के पास की ख़ाली कुर्सियों पर आकर बैठ गए। उनमें से एक ने इन दोनों की ओर देख कर कहा—आज आप लोग बड़ी जल्दी भाग आए?

निसार ने उत्तर दिया—क्या करें, पसीने के मारे नाक में दम हो गया।

"हाँ, आजकल यही तो बड़ी दिक़्क़त रहती है।"—नवागन्तुकों में से एक बोला।

उन दोनों ने भी एक-एक ग्लास पानी मँगा कर पिया। तत्पश्चात् चारों व्यक्ति चुपचाप बैठ कर सिगरेट पीने लगे।

सिगरेट समाप्त हो जाने पर एक बोला—आओ ब्रिज ही उड़े—बैठे क्या होगा?

निसारहुसैन प्रसन्न-मुख होकर बोले—वल्लाह, मेरे दिल की बात कही। आओ एक "रबर" हो जाय।

नौकर को आवाज़ दी गई और उससे ताश तथा "स्कोरिङ्ग कॉपी" मँगा कर खेल आरम्भ हुआ। ज्योतिप्रसाद तथा निसार एक तरफ़ हुए और वे दोनों व्यक्ति दूसरी ओर।

ज्योतिप्रसाद ने पत्ते बाँटे और वन "नो ट्रम्प" कहा। उनके बाएँ हाथ वाले व्यक्ति ने टू "क्लब्स" (चिड़ी) कहा। निसार टू "नो ट्रम्प्स" गए। निसार के बाएँ हाथ वाला व्यक्ति थ्री "क्लब्स" बोला। ज्योतिप्रसाद ने थ्री "नो ट्रम्प्स" कहा। उनके बाएँ हाथ वाले ने "डबुल" करके छोड़ दिया।

निसारहुसैन "डमी" हो गए। ज्योतिप्रसाद ने जो उनके पत्ते देखे, तो उनमें क्लब्स के केवल दो पत्ते "मेम" और "दहला" निकले। ज्योतिप्रसाद मुँह बना कर बोले—इन्हीं दो पत्तों पर आपने क्लब्स के एगेन्स्ट (विरुद्ध) टू "नो ट्रम्प्स" कहा था?

निसार ने उत्तर दिया—नो ट्रम्प्स आपका "बिड्" (बोली) था, इसलिए मैंने अन्दाज़ा लगाया कि क्लब्स आपके पास अच्छा होगा। उसमें के दो "ऑनर कार्ड" (अर्थात् मेम और दहला) मेरे पास थे, इसलिए मैंने आपको "सपोर्ट" किया।

ज्योतिप्रसाद ने कहा—हार्ट (पान) आपके पास इतना अच्छा था, उसका "काल" (बोली) क्यों नहीं दिया।

निसारहुसैन कुछ चिढ़ कर बोले—अच्छा, खेलो तो।

खेल प्रारम्भ हुआ। "क्लब्स" के पत्ते ज्योतिप्रसाद के पास भी नहीं थे! अतएव वह क्लब्स में बुरी तरह पिट गए और तीन सौ "डाउन" हुए।

ज्योतिप्रसाद निसार पर बहुत बिगड़े, बोले—तुमने हत्थे पर ही मामला बिगाड़ दिया, अब आज जीतना मुश्किल है। हार्ट का "काल" इतना अच्छा रहता कि

"ओवर ट्रिक" (अतिरिक्त हाथ) बनते। पाँच पत्ते आपके पास थे और चार मेरे पास और "ऑनर कार्ड" भी सब अपने लोगों के पास थे। राम! राम! ऐसा अफ़सोस हुआ, क्या कहें!

निसार ने कहा—आपने जो "नो ट्रम्प्स" का काल दिया था, वह क्या समझ कर दिया था?

"मेरे पास तीन रङ्ग अच्छे थे, ख़ाली क्लब्स नहीं था। मैंने सोचा कि अगर तुमसे क्लब्स की मदद मिल गई तो खेल बन जायगा। तुमने जब क्लब्स के ख़िलाफ़ मेरे "नो ट्रम्प्स" को सपोर्ट किया, तो मैंने समझा क्लब्स तुम्हारे पास अच्छा होगा, इसीलिए मैं थ्री नो ट्रम्प्स चला गया। मुझे क्या मालूम था कि आप सिर्फ़ दो पत्ते लेकर मुझे सपोर्ट कर रहे हैं। चले हैं ब्रिज खेलने, यह भी कोई "चान्स" या कोट-पीस समझ रक्खा है। "ब्रिज" का खेलना आसान नहीं है।"

निसारहुसैन बोले—ग़लती आपकी है। आपको "थ्री क्लब्स" पर "थ्री नो ट्रम्प्स" नहीं जाना था—"डबुल" करके छोड़ देते। ये लोग जाते कहाँ? ख़ाली "क्लब्स" बना लेते। बाक़ी तीन रङ्गों में पिट जाते।

अन्य दोनों व्यक्तियों में से एक हँसते हुए बोला—अच्छा अब लड़ते क्यों हो, जो होना था वह हो चुका, चलो पत्ते बँटने दो।

खेल आरम्भ हुआ। परन्तु निसार और ज्योतिप्रसाद के साझे का क्रम कुछ ऐसा बिगड़ा कि अन्त तक दोनों हारते ही गए।

जिस समय "रबर" समाप्त हुआ तो ये दोनों बीस "प्वाइण्ट" से हार कर उठे। ज्योतिप्रसाद और निसार घर की ओर चले। बाहर आकर ज्योतिप्रसाद अपनी बाइसिकिल उठा कर तुरन्त चल दिए। निसारहुसैन ने कहा—दो मिनिट ठहरो, मैं भी चल रहा हूँ।

ज्योतिप्रसाद बोले—"आपसे मैं बात नहीं करता।" यह कह कर ज्योतिप्रसाद चल दिए।

निसारहुसैन ने कहा—अच्छा, मुझे भी देखना है, कब तक बात न करोगे?

ज्योतिप्रसाद ने कुछ उत्तर नहीं दिया—क्षण-मात्र में अदृश्य हो गए।

३

उपर्युक्त घटना के दूसरे दिन शाम हो चुकने पर भी निसारहुसैन घर से नहीं निकले, तो उनके पिता ने पूछा—आज क्लब नहीं जाओगे क्या?

निसारहुसैन ने कहा—क्लब तो जाऊँगा, मगर ज्योतिप्रसाद के यहाँ नहीं जाऊँगा।

"क्यों?"

"कल उनसे मेरा झगड़ा हो गया।"

"किस बात पर झगड़ा हुआ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही।"

"आख़िर कुछ तो मालूम हो।"

"हम दोनों "पार्टनर-शिप" (साझे) में ब्रिज खेल रहे थे, उसमें ख़ुद तो हज़रत ने ग़लती की और डाँटने मुझे लगे। और आख़ीर में चलते वक़्त बोले, कि तुमसे बात नहीं करूँगा—मेरे साथ भी नहीं आए।"

उनके पिता हँस कर बोले—अरे, यह कौन ऐसी बड़ी बात है, ऐसी छोटी-छोटी बातों पर ख़्याल न करना चाहिए।

निसारहुसैन के चचा बोल उठे—तो ज़रूरत ही क्या है? अगर यह उनके यहाँ न जायगा तो इसका क्या नुक़सान हो जायगा। और मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि इन लोगों से जितना कम राहो-रस्म रक्खे, उतना ही अच्छा है।

निसारहुसैन के पिता उसी प्रकार हँसते हुए बोले—इसकी उनकी बहुत पुरानी दोस्ती है।

"लाख पुरानी हो, इससे क्या होता है। मुझे तो इन काफ़िरों से सख़्त नफ़रत है। अभी आपके ऊपर पड़ी नहीं है। बनारस में जो हालत थी वह देखी होती तो पता लगता।"

"ख़ैर, यह तो सब चला ही जाता है, मगर इन बातों से पुरानी राहो-रस्म में फ़र्क़ थोड़ा ही आ सकता है।"—निसारहुसैन के पिता बोले।

"फ़र्क़! आप फ़र्क़ को कहते हैं। बनारस में पुरानी राहो-रस्म का नज़ारा देखते तो सब भूल जाते। मैं तो इसे हर्गिज़ यह राय न दूँगा कि यह उनसे कोई ताल्लुक़ रक्खे।"—निसारहुसैन के चचा ने कहा।

निसारहुसैन बोल उठा—फ़िलहाल तो मैं उनसे

बोलूँगा नहीं। मगर जिस ख़्याल से आप कह रहे हैं उस ख़्याल से नहीं, मेरा ख़याल दूसरा है।

"क्यों, मैंने क्या कोई बुरी बात कही?"

"नहीं, बुरी बात नहीं, मगर जिस गोशे-नज़र (दृष्टिकोण) से आप कह रहे हैं, मेरा वह नहीं है।"

"तुम्हारा गोशे-नज़र क्या है?"

"मेरा गोशे-नज़र तो महज़ वह है, जो दोस्तों की शकररञ्जी में हुआ करता है। मज़हबी बातों से उसका कोई ताल्लुक़ नहीं।"

"मैं यह कहता हूँ कि अगर इन लोगों से ज़्यादा रब्त-ज़ब्त न रख कर, महज़ मामूली जान-पहचान रक्खी जाय तो इसमें अपना क्या नुक़सान है?"

"अगर कोई नुक़सान नहीं, तो कोई फ़ायदा भी नहीं।"—निसारहुसैन ने कहा।

"फ़ायदा तो है!"—चचा जान ने कुछ जोश में आकर कहा।

"क्या?"—निसारहुसैन ने कुछ गम्भीर होकर पूछा।

"ज़्यादा रब्त-ज़ब्त रखने में मौक़े पर इन्सान को दबना पड़ता है।"

"तो यही बात हिन्दुओं के लिए भी कही जा सकती है। आपको दबना पड़ता है तो उन्हें भी तो दबना पड़ता है।"

"वह तो हमेशा ही दबे रहते हैं। हिन्दू जाति ही बुज़दिल है।"

"इस वहम का जवाब मेरे पास नहीं है।"—निसारहुसैन ने किञ्चित मुस्करा कर कहा।

"यह वहम नहीं, असलियत है, बरख़ुरदार! अभी तुम नामे-ख़ुदा बच्चे हो—जब ज़रा दुनिया को देखो-भालोगे तब पता लगेगा।"

"आप बुज़ुर्ग हैं, आपसे क्या कहूँ।"

"नहीं, ज़रूर कहो, जो बात समझ में न आवे या जिसमें कुछ शको-सुबह हो, उस पर बहस कर लो। इसमें बुज़ुर्गी-ख़ुर्दगी का ख़्याल मत करो।"

"मेरा ख़्याल तो यह है कि जब एक मुल्क में रहना-बसना है, तब तो मेल-मुहब्बत ही से काम चलेगा।"

"तो मेरा मन्शा यह तो नहीं है कि तुम ख़ामख़ाह उनसे लड़ो।"

"ख़ामख़ाह लड़ना आसान भी तो नहीं है।"

"आसान भी नहीं है और न ज़रूरत है।"—निसारहुसैन के पिता ने कहा।

"तो इस बात की भी ज़रूरत नहीं है कि आप बिला वजह जाकर घुसें। चाहे जितनी मेल-मुहब्बत हो, मगर वक़्त पर ये लोग दग़ा ही करेंगे।"

"यही बात हिन्दू हम लोगों की बाबत कह सकते हैं।"

"तो उन्हें कौन मना करता है। कहा करें!"

"तो इससे नतीजा क्या? बजाय इसके कि आप उन्हें और वह आपको दग़ाबाज़ और बेईमान समझें। अगर मेल-मुहब्बत रहे तो कोई हर्ज रहे?"

"मेल-मुहब्बत क़ायम रहे तब न! मौक़े पर मेल-मुहब्बत सब बालाए-ताक़ हो जाती है।"

"ऐसा अगर होता है तो दोनों जानिब से, ख़ाली हिन्दुओं पर यह इल्ज़ाम रखना मेरी समझ में तो, दानाई (बुद्धिमानी) नहीं है।"

निसारहुसैन के पिता बोल उठे—ख़ैर जी, इस बहस-मुबाहिसे से क्या मतलब, न अपनी तरफ़ से बिगाड़ना चाहिए और न अपनी तरफ़ से बिला वजह उनसे मेल करने की जुस्तजू होनी चाहिए। यह मामला शख़्सियत का है। क़ौम के लिहाज़ से तो न मुसलमानों के ख़्यालात बदल सकते हैं और न हिन्दुओं के। रह गया ज़ातियात का मामला, सो उसके लिए अपने साथ जो जैसा बर्ताव करे उससे वैसा ही बर्ताव रखना चाहिए। अगर अपने साथ कोई मुहब्बत से पेश आवे तो अपना भी यह फ़र्ज़ है कि हम भी उससे मुहब्बत से पेश आवें, और जो अपने से नफ़रत करे, उससे हमें भी अलग रहना चाहिए। मेरा तो यह उसूल है।

निसारहुसैन बोल उठा—बिल्कुल दुरुस्त है। मेरा भी यही उसूल है।

निसारहुसैन के चचा ने कहा—ख़ैर, आपका यह उसूल है तो हो, मुझे कोई एतराज़ नहीं है। पहले मेरा भी यही उसूल था, मगर बनारस में जो हालत हुई है उसे देख कर मैंने तो अपना उसूल बदल दिया। और मुझे यक़ीन-कामिल (पूर्ण विश्वास) है कि अगर आप लोग वहाँ की हालत देखते तो आपका भी उसूल बदल जाता।

"इन बातों से उसूल नहीं बदले जाने चाहिए चचा-जान ! उसूल बदलने के लिए काफ़ी वजूहात (कारण) होने चाहिए।

"अपना-अपना ख़्याल है।"— इतना कह कर चचा-जान चुप हो गए।

४

उपर्युक्त घटना हुए पन्द्रह दिवस व्यतीत हो गए। निसारहुसैन तथा ज्योतिप्रसाद में उसी प्रकार मनो-मालिन्य बना हुआ था। ज्योतिप्रसाद इस प्रतीक्षा में थे कि निसारहुसैन पहले उनसे बात करे और निसार-हुसैन चाहता था कि ज्योतिप्रसाद पहले बोल-चाल आरम्भ करें। निसारहुसैन दो-एक बार ज्योतिप्रसाद के मकान के सामने से निकले और ज्योतिप्रसाद ने उन्हें देखा भी, परन्तु बुलाया नहीं।

सहसा नगर में हिन्दू-मुसलिम दङ्गे की ज्वाला भड़क उठी। हिन्दू मुसलमानों की और मुसलमान हिन्दुओं की हत्याएँ करने लगे। जब दङ्गे का समाचार ज्योतिप्रसाद के मुहल्ले में पहुँचा, तो वहाँ के मुसलमान एकदम उत्तेजित हो उठे। उन्होंने परामर्श करके हिन्दुओं पर आक्रमण करना निश्चय किया। यद्यपि निसारहुसैन और उनके पिता ने इसका तीव्र विरोध किया; परन्तु उत्तेजना में भरे हुए अन्य मुसलमानों के आगे उनकी एक न चली। निसारहुसैन के चचा ने भी अन्य मुसल-मानों के पक्ष में होकर आक्रमण करने की सलाह दी। केवल सलाह ही नहीं दी, वरन् वह भी आक्रमणकारियों में सम्मिलित हो गए। निसारहुसैन के पिता ने बहुत मना किया; परन्तु इन्होंने एक न सुनी।

निसारहुसैन और उनके पिता धड़कते हुए हृदय से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे।

लगभग आध घण्टे तक चारों ओर से हो-हल्ला तथा चीत्कारें सुनाई पड़ती रहीं। आध घण्टे के पश्चात् एक मुसलमान ख़ून में नहाया हुआ निसारहुसैन के द्वार पर आया और बोला—"निसार भाई, आपके चचा जान मारे गए—आपके दोस्त जोतीपरशाद ने मारा।" इतना कह कर वह तो एक तरफ़ भागा, इधर निसारहुसैन पर मानो वज्रपात हुआ। कुछ क्षणों तक वह खड़े सोचते रहे। हठात् उनकी आँखें लाल हो गईं, माथे पर बल पड़ गए, भवें तन गईं। वह घर के भीतर गए और वहाँ से एक तलवार लेकर बाहर की ओर दौड़े। उनके पिता ने उनको पकड़ने की चेष्टा की, परन्तु एक नवयुवक पर एक वृद्ध का ज़ोर कहाँ काम दे सकता था—निसारहुसैन क्षण-मात्र में घर के बाहर हो गए। उनके पिता "हाय अल्लाह !" कह कर गिर पड़े।

* * *

निसारहुसैन मुसलमानों की भीड़ को चीर कर आगे पहुँचे। उन्होंने देखा कि पचीस क़दम के फ़ासले पर हिन्दुओं का दल डटा खड़ा है। उस दल में सब से आगे ज्योतिप्रसाद हाथ में रक्त-रञ्जित तलवार लिए खड़े हैं। दोनों दलों के बीच में एक हिन्दू और एक मुसलमान की लाश पड़ी है। मुसलमानी लाश निसार-हुसैन के चचा की थी। यह देखते ही निसारहुसैन की आँखों में ख़ून उतर आया। उन्होंने कहा—क्यों जोतीपरशाद, तुमने मेरे चचा को मार डाला ! ख़ूब दोस्ती अदा की। चचा जान ठीक कहते थे कि इन काफ़िरों का कोई एतबार नहीं।

निसारहुसैन की बात सुन कर ज्योतिप्रसाद का मुख पीला पड़ गया। उन्होंने कहा—भाई निसार-हुसैन, मैंने उन्हें बिल्कुल नहीं पहचाना। आठ-दस बरस पहले देखा था, इसलिए पहचान ही न सका। मुझे अफ़सोस है.........।

ज्योतिप्रसाद की बात पूरी होने के पहले ही निसार-हुसैन बोला—ओ काफ़िर, तू झूठ बोलता है। तू और मेरे चचा को न पहचाने, यह बिल्कुल ग़ैरमुमकिन है।

"मैं ईश्वर को गवाह करके कहता हूँ, कि मैंने उन्हें नहीं पहचाना। इसके अलावा उन्होंने मुझ पर हमला किया था, मैं उन्हें न मारता तो ख़ुद मरता।"

"तू और तेरा ईश्वर दोनों झूठे हैं।"

ज्योतिप्रसाद ने एक क्षण के लिए सोचा—यह वही निसार है, जो उस दिन मेरे कमरे में हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों पर कितने ऊँचे विचार प्रकट कर रहा था, हाय री साम्प्रदायिकता ! तू बड़े-बड़े बुद्धिमानों और उदार मत वालों की मति भ्रष्ट कर देती है।

ज्योतिप्रसाद यह सोच ही रहे थे कि निसारहुसैन ने कहा—तुम बड़े मारते ख़ाँ हो तो आओ, मुझे मारो।

"निसार ! मुझे अफ़सोस है कि ग़म और ग़ुस्से ने तुम्हारा दिमाग़ ख़राब कर दिया है। हिन्दू कभी हमला नहीं करते—वे सिर्फ़ दूसरों के हमले से अपने को बचाते हैं। हमला तो तुम्हारी ही तरफ़ से शुरू हुआ है। लिहाज़ा तुम्हारी ही तरफ़ से शुरू होना चाहिए।"

"मैं क़सम खा चुका हूँ कि जब तक तुम्हारा ख़ून न बहा लूँगा, यहाँ से वापस न जाऊँगा।"

"अच्छी बात है, तो आ जाओ। हम-तुमने टेनिस वग़ैरह अनेक प्रकार के खेल खेले हैं—आज यह खेल भी सही। तुम अपने आदमियों को मना कर दो और मैं अपने आदमियों को मना किए देता हूँ—हमारे-तुम्हारे बीच में कोई दख़ल न दे।

निसारहुसैन बोला—बेहतर है।

दोनों ने अपने-अपने दल के आदमियों को समझा दिया। तत्पश्चात् दोनों पैंतरे बदलते हुए आगे बढ़े और दोनों में तलवार चलने लगी। कठिनता से दो-तीन मिनिट बीते होंगे कि ज्योतिप्रसाद की तलवार निसार-हुसैन के गले पर पड़ी और उधर निसारहुसैन की तलवार ज्योतिप्रसाद की छाती में घुस गई। दोनों साथ ही गिरे।

ज्योतिप्रसाद ने गिरते-गिरते पूछा—क्यों दोस्त, कौन जीता ?

निसारहुसैन के मुख से निकला—दोस्त ! दोनों हारे।

दोनों साथ ही भूमि पर गिरे और दोनों की आत्माओं ने साथ ही अपना शरीर छोड़ कर उस लोक का रास्ता लिया, जहाँ कदाचित् साम्प्रदायिकता की विषाक्त छुरी उनके स्नेह तथा प्रेम के बन्धन को कदापि न काट सकेगी।

❦　❦　❦



देशवासियों का स्वप्न

(क्या फिर यही दृश्य उपस्थित होगा ?)

वर्तमान मुस्लिम जगत्

[एक डॉक्टर ऑफ़ लिट्रेचर]

(गताङ्क से आगे)

सम्प्रदाय-भेद



ख़लीफ़ा उस्मान के समय से ही इस्लाम धर्म में भी परिवर्तन होने आरम्भ हो गए। उस्मान स्वयं प्रत्यक्ष में तो मुसलमान था, परन्तु उसके हृदय-तल में अभी प्राचीन परम्परागत धार्मिक विचार वर्तमान थे। वह उन लोगों में से था, जिन्होंने मुहम्मद की तलवार के भय से इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। गद्दी पर बैठते ही उसने इस्लाम की राजनीति में परिवर्तन करने आरम्भ कर दिए और इस्लाम धर्म के कुछ सिद्धान्तों से अपना मतभेद प्रकट करते हुए क़ुरान का एक नया संस्करण तैयार करवाया। इन कारणों से उसके विरुद्ध एक दल खड़ा हो गया, जिसने अपना नेता मुहम्मद के एक सम्बन्धी (दामाद) अली को स्वीकार किया और उसको गद्दी पर बैठाने के लिए उस्मान से युद्ध किया। यह घरेलू संग्राम कई वर्षों तक चलता रहा और अली के मरने के बाद भी बन्द नहीं हुआ। अली अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण अपने अनुयायियों का बड़ा प्यारा और अपने सैनिकों के हृदय का हार था। इसके कारण उसके देहान्त के बाद भी उसके अनुयायी उसके गीत गाते रहे और उसकी क़ब्र के ऊपर रोना और शोक प्रकट करना अनेकों ने अपने धर्म का अङ्ग बना लिया। अली के अनुयायियों की संख्या ईरान में दिन-दिन बढ़ने लगी। इधर लोग यह भी विश्वास करने लगे कि वास्तव में अली की मृत्यु नहीं हुई। वह किसी एक दिन प्रकट होकर पुनः उनका नेतृत्व ग्रहण करेगा। इसके बाद लोगों की यह धारणा होने लगी कि पीड़ित लोगों का कष्ट-निवारण करने के लिए और इस्लाम का उद्धार करने के लिए भविष्य में मेहदी नाम के एक ख़लीफ़ा का आविर्भाव होगा। फलतः मेहदी की लोग स्तुतियाँ करने लगे और इस प्रकार इस्लाम धर्म में अवतारवाद भी घुस पड़ा।

रूपान्तर

जब इस्लाम अनेक देशों में पहुँचा और अनेक जातियों ने इसे स्वीकार किया, तो यह स्वाभाविक बात थी कि इसके रूपान्तर भी होते। मुहम्मद ने इस्लाम की रचना अरब लोगों की प्रकृति, परम्परा तथा आवश्यकता को ध्यान में रख कर की थी, इसलिए इस्लाम अरब-देशवासियों के लिए एक अत्यन्त उपयुक्त धर्म था। लेकिन यह सार्वभौम धर्म नहीं बन सकता था। जब तलवार के बल से इसका अन्य देशों में भी प्रभुत्व जमाया गया, तो लोगों ने इसको आतङ्कवश स्वीकार तो कर लिया, लेकिन यह उनके हृदय-तल को स्पर्श न कर सका और देश-काल के अनुकूल इसके रूपान्तर होने आरम्भ हो गए। जो धर्म अपने जन्म-स्थान को छोड़ कर बाहर निकले, उन सबकी यही दशा हुई है। इस्लाम की भाँति बौद्ध मत तथा ईसाई मत भी अपने विस्तार के साथ ही साथ रूपान्तरित हुए हैं। वास्तव में किसी एक देश का धर्म सार्वभौम धर्म नहीं बन सकता। प्रबल प्रयत्न से चाहे उसका प्रचार बढ़ जाए, परन्तु उसके रूपान्तर नहीं रुक सकते। यही कारण है कि इस्लाम जैसे सरल और असहिष्णु धर्म में भी इसके जन्म के सौ वर्ष पश्चात् ही भारी परिवर्तन दिखाई देने लगे। ईरान में अली की अमरता और मेहदी के आविर्भाव में विश्वास करने वाले शीया तथा निर्गुण-भक्त सूफ़ियों का प्रभुत्व बढ़ गया और ईराक़ से पश्चिम की ओर इस्लाम के मूल सिद्धान्तों को मानने वाले सुन्नियों का प्राधान्य बना रहा। उत्तरी अफ़्रिक़ा तथा स्पेन में भी इस्लाम का रूप बदल गया। कलमा और नमाज़ के सिवा और सब रूढ़ियाँ लोगों की ज्यों की त्यों बनी रहीं, बल्कि वे भी इस्लाम धर्म की एक अङ्ग मानी जाने

लगीं। इस धार्मिक मतभेद के कारण इस्लाम-धर्म में वैसी ठोस एकता तो कहीं भी न रही, जैसी आदि-ख़लीफ़ों के समय में या मुहम्मद के समय में थी। ईराक़ और उसके इधर-उधर के देश में तो शीया तथा सुन्नियों में निरन्तर कलह रहने लगा। सम्पूर्ण धर्मों में सत्य स्वीकार करने वाले और प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप में ईश्वर का अनुभव करने वाले सूफ़ियों को अनेक प्रकार की यातनाएँ भोगनी पड़ीं, लेकिन वे दबे नहीं। जब मानव विचार-धारा एक बार प्रबल वेग से उमड़ पड़ती है, तो उसका रोकना असम्भव हो जाता है। तलवार सैनिकों को काट कर गिरा सकती है, लेकिन विचार वायु-वेग के समान उसके काटे नहीं कटते। वे अक्षय रूप से सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं।

बग़दाद में ख़िलाफ़त स्थापित होने के बाद ईरान और अरब की संस्कृतियों के सम्मिश्रण से एक सुन्दर सभ्यता का उद्भव हुआ था। इस सभ्यता को इतिहासकार 'सेरेसन सभ्यता' कहते हैं। हम पहले ही बतला चुके हैं कि तत्कालीन मुसलमान-सभ्यता संसार में सर्वोच्च थी और मुसलमान वणिकों तथा विद्वानों के यूरोप में अनेक विषयों के उपयोगी ज्ञान का प्रचार हुआ था। लेकिन ख़लीफ़ों की निरङ्कुशता और तुर्कों की प्रभुता के कारण यह सभ्यता नष्ट होने लगी। अरब लोग स्वभाव से ही स्वतन्त्रता-प्रिय हैं। वे अपने शासक की अनियन्त्रित सत्ता कभी स्वीकार नहीं कर सकते। इस प्रबल लोकमत से बचने के लिए ही ख़लीफ़ाओं ने मदीना से हट कर, पहिले दमिस्कस को और फिर बग़दाद को अपनी राजधानी बनाया था। लेकिन फिर भी अरब-लोकमत से वे नितान्त छुटकारा नहीं पा सके। बग़दाद में भी अरब लोग ख़लीफ़ाओं की बढ़ती हुई निरङ्कुशता का विरोध करने लगे। एक दल तो ऐसा उठ खड़ा हुआ, जो ख़लीफ़ाओं की आवश्यकता को भी अस्वीकार करने लगा। इसलिए इन स्वतन्त्रता-प्रेमी अरब-दलों में तथा ख़लीफ़ाओं में निरन्तर विरोध रहने लगा और अरब लोगों का दमन होने लगा। ख़लीफ़े दिन-दिन अपनी रक्षा के लिए तुर्की सैनिकों को अपनी सेना में भर्ती करने लगे और उनके द्वारा अरब लोगों को खदेड़-खदेड़ कर ईरान से हटाने लगे। दमन-चक्र से बचने के लिए अरब लोग भी ईरान तथा ईराक़ छोड़ कर पीछे अरबिस्तान के रेगिस्तान में आने लगे और इस प्रकार सेरेसन सभ्यता क्षीण होने लगी।

तुर्क लोगों की संख्या और शक्ति मुस्लिम जगत में बढ़ने लगी। ये लोग लड़ने में निपुण, अनुभवी और सधे हुए थे, परन्तु वैसे थे निरे जङ्गली। ग्यारहवीं शताब्दी में अधिकांश तुर्कों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, परन्तु तो भी वे सभ्य और संस्कृत नहीं बन पाए, बल्कि धार्मिक असहिष्णुता और आवेश ने उनको और भी अधिक भयङ्कर विजेता बना दिया। ईरान, ईराक़ और एशिया-माइनर आदि स्थानों में तुर्कों की प्रभुता बढ़ने लगी और उनसे त्रस्त अरब लोग दुर्गम रेगिस्तान की शरण लेने लगे। परिणाम यह हुआ कि सेरेसन सभ्यता लोप होने लगी और सब तरफ़ तुर्कों का दौर-दौरा हो गया। तत्कालीन तुर्कों में सैनिकता के अतिरिक्त और कोई सभ्य तथा उन्नत जातियों का गुण न था। शासन-प्रणाली, वाणिज्य, कला-कौशल या साहित्य में उनकी बिल्कुल गति न थी। इसलिए ज्यों-ज्यों तुर्कों की प्रभुता बढ़ी, त्यों-त्यों पुरानी संस्कृति का लोप होने लगा। इस्लाम अब निरा आक्रमणकारी धर्म बन गया।

यूरोप से धर्म-युद्ध

मुहम्मद तथा उनके बाद के आदि-ख़लीफ़े जज़िया-कर ग्रहण करने के सिवा पराजित देशों के धर्म में और कोई विघ्न नहीं डालते थे। सन् ६३७ में यरूशलम मुसलमानों के हाथ आया था, परन्तु ख़लीफ़ा अबूबकर और उसके उत्तराधिकारियों ने ईसाइयों के धार्मिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। वैसे भी ईसाई लोगों को अन्य धर्मावलम्बियों की अपेक्षा मुसलमान अच्छा समझते थे। इनको 'अहले किताब' अर्थात् धार्मिक पुस्तक वाले माना जाता था। अन्तर केवल इतना था कि क़ुरान, बाईबिल से पीछे की पुस्तक थी और इसलिए वह अधिक प्रामाणिक तथा मान्य थी। सन् १००० तक ईसाई और मुसलमानों का पारस्परिक सम्बन्ध काफ़ी अच्छा बना रहा और भविष्य में और भी अच्छा होने की सम्भावना थी। लेकिन तुर्कों के कारण यह शान्ति-सम्बन्ध टूट गया। जब तुर्कों ने यरूशलम को

जीत लिया तो ईसाइयों के धार्मिक जीवन में भी हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया और उनको अनेक प्रकार से उत्पीड़ित करने लगे। यरूशलम ईसा का लीला-स्थल होने के कारण ईसाइयों का तीर्थ-स्थान था और बहुसंख्यक ईसाई प्रति वर्ष वहाँ यात्रा करने के लिए आया करते थे। तुर्कों ने ईसाइयों के मन्दिरों को बन्द कर दिया और ईसाई यात्रियों को वहाँ आने से रोक दिया। यह घटना भयङ्कर उत्पात तथा लोमहर्षण रक्तपात का कारण बनी। हरमिट नामक एक ईसाई संन्यासी ने सम्पूर्ण यूरोप में भ्रमण करके मुसलमानों के अत्याचार की दुखद कहानी घर-घर पहुँचा दी, जिससे ईसाई-संसार में एक अपूर्व विक्षोभ उत्पन्न हो गया। कुस्तुन्तुनिया से लन्दन तक राजा और प्रजा सब ईसाई अत्याचारों का बदला लेने के लिए अधीर हो उठे। धार्मिक आवेश का समुद्र उमड़ पड़ा। रोष का दावानल धधकने लगा। समर-भेरी बजनी शुरू हो गई और लगातार छठी शताब्दी तक रण-निनाद के कारण शान्ति का कोमल स्वर सुनाई न दे सका।

मुसलमानों के विरुद्ध ईसाइयों का धार्मिक युद्ध सन् १०९९ में शुरू हुआ और १२९० तक चलता रहा। इसमें ईसाई राजा और प्रजा दोनों शामिल थे। मुसलमानों का अत्याचार ईसाइयों को इतना असह्य हो गया था कि एक बार सहस्त्रों ईसाई बच्चे भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। समय-समय पर ईसाई लोग टिड्डी-दल की भाँति यरूशलम पर चढ़ दौड़ते, कभी उनकी हार होती थी और कभी मुसलमानों की। एक युद्ध में इतना भीषण रक्तपात हुआ कि यरूशलम की गलियों में बरसात के पानी की तरह ख़ून बहने लगा और ईसाई सैनिकों के घुटनों तक आ पहुँचा। भयङ्कर युद्ध के बाद यरूशलम ईसाइयों के हाथ में आ गया था। परन्तु फिर शीघ्र ही मुसलमानों के हाथ में चला गया। तदनन्तर बहुत दिनों तक मुसलमानों के ही हाथ में रहा, लेकिन सन् १९१८ में फ़्रान्सीसी, अङ्गरेज़ी तथा हिन्दुस्तानी सेना ने इसको उनसे छीन लिया और अब यह अङ्गरेज़ों के अधिकार में है।

तेरहवीं शताब्दी के अन्त में ईसाइयों का धार्मिक आवेश भी कम होने लग गया और यह धार्मिक युद्ध बन्द हो गए, लेकिन ईसाई और मुसलमान सदा के लिए एक-दूसरे के घोर शत्रु बन गए। मुसलमानों ने फिर भी यूरोप की तरफ़ बढ़ना जारी रक्खा। सन् १४५३ में मुहम्मद द्वितीय ने यवन-साम्राज्य को नष्ट करके कुस्तुन्तुनिया पर अपना अधिकार जमा लिया तथा एक शताब्दी के अन्दर ईरान से मोरक्को तक का समस्त भू-भाग जीत लिया। और बालकन अन्तरीप को अधिकृत करके अपनी सेना को वायना के दुर्ग के पास खड़ा किया।

भारतीय तुर्क राज्य का पतन

दसवीं शताब्दी में बग़दाद के ख़लीफ़ाओं से अपना सम्बन्ध तोड़ कर एक तुर्क सैनिक ने ग़ज़नी में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली थी। इस समय भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था और महाराज चन्द्रगुप्त या समुद्रगुप्त जैसे शक्तिमान सम्राट विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने वाले नहीं थे। तुर्क लोग दसवीं शताब्दी के अन्त से ही भारत पर आक्रमण करने लगे थे और २०० वर्ष के अन्दर ही उन्होंने सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। इस अरसे में उन्होंने अनेक भव्य देव-मन्दिरों को नष्ट किया, कई विशाल पुस्तकालयों को जलाया, असंख्य निरपराध लोगों का बध किया, और हज़ारों युवक-युवतियों को तथा बच्चों को अपने देश में ले जाकर भेड़-बकरी की भाँति दो-दो, चार-चार रुपए में बेचा। इसके अतिरिक्त मन्दिरों में सञ्चित की हुई प्रभूत धन-राशियाँ ऊँटों पर लाद-लाद कर ले गए। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में सिन्ध-देश को भी अरब लोगों ने जीता था, पर वह विजय और प्रकार की थी। उसमें इतनी धन-लोलुपता, धर्मान्धता तथा नृशंसता नहीं थी। सन् १२०६ में सर्व-प्रथम मुसलमान बादशाह दिल्ली के राज्य-सिंहासन पर बैठा और उसके बाद मुसलमानों का राज्य-विस्तार उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि १४वीं शताब्दी के मध्य में सम्पूर्ण भारत पर, उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक, कम से कम कुछ समय तक तो मुसलमानों का राज्य हो ही गया। लेकिन तुर्क, पठान तथा अफ़ग़ान शासक सभ्य और संस्कृत नहीं थे। न उनकी शासन-प्रणाली ठीक थी और न उनकी नीति ही लोकप्रिय थी। देश के बड़े-

बड़े विद्यालयों तथा पुस्तकालयों को नष्ट करके तथा देव-मन्दिरों को तोड़ कर उन्होंने बच्चे-बच्चे के हृदय में घोर घृणा उत्पन्न कर दी थी। इसलिए तलवार के बल से ज्यों-ज्यों उनका राज्य विस्तृत होता जाता था, त्यों-त्यों देश में उनके प्रति घृणा भी बढ़ती जाती थी। धार्मिक एकता के अभाव के कारण भारत मुसलमानों के विरुद्ध वैसा प्रबल दल नहीं बना सका, जैसा कि यूरोप में सन्त हरमिट के आह्वान से बना था। परन्तु तो भी दूर दक्षिण में एक अपूर्व राष्ट्रीय जागृति हुई और विजयनगर नामक विस्तृत हिन्दू राज्य स्थापित हो गया। उत्तर में महाराणा साँगा की सेना कई बार दिल्ली के दुर्ग तक जा पहुँची और मुसलमानों के उच्छेद की कहानी सम्पूर्ण देश में सुनी जाने लगी।

चङ्गेज़ ख़ाँ

बारहवीं शताब्दी के अन्त में तूरान में एक भयङ्कर तूफ़ान के खड़े होने का सूत्रपात हुआ। चङ्गेज़ ख़ाँ नाम के एक तूरानी सैनिक सरदार ने मङ्गोल जाति के लोगों को सङ्गठित कर सारे संसार पर चढ़ाई कर दी। सर्व-प्रथम उसने उत्तरीय चीन पर धावा किया और सारे प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। फिर वह पश्चिम की ओर मुड़ा और जिधर गया, उधर के देश उसके आक्रमणों से अत्यन्त त्रस्त हो गए। उसकी सेना में चीनी इञ्जीनियर शामिल थे और बारूद का उपयोग किया जाता था। इसलिए अनेक दुर्धर्ष दुर्ग बात की बात में गिरा दिए जाते थे और उसके रण-कुशल घुड़सवारों के सामने कोई सेना न टिकती थी। मङ्गोल जाति को रक्तपात से स्वाभाविक प्रेम था। मनचाहा धन प्राप्त हो जाने पर भी शहरों को उजाड़ने, सहस्रों नर-नारियों का वध करने तथा खड़ी हुई खेतियों को जलाने में उनको आनन्द आता था। चङ्गेज़ ख़ाँ के मर जाने के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने भी यह प्रलयकारी कार्य जारी रक्खा। उनके निरन्तर विनाशकारी आक्रमणों का फल यह हुआ कि पश्चिमी एशिया तथा पूर्वी यूरोप उनके नाम के श्रवण मात्र से काँपने लगा। ईरान से पोलैण्ड तक बरबादी और विनाश के चिन्ह दृष्टि-गोचर होने लगे। निरपराध लोगों की खोपड़ियों के ढेर, राख से भरे हुए खेत, धराशायी दुर्ग, दुर्भिक्ष और रोग सर्वत्र मङ्गोल जाति की निर्दयता का परिचय देने लगे। उस समय बग़दाद का पूर्व ऐश्वर्य तो बिदा हो चुका था, लेकिन फिर भी वह थी ख़लीफ़ाओं की राजधानी। भव्य भवन, विशाल विद्यालय, उत्तम पुस्तकालय, कला-कौशल आदि सब उसको अभी तक अलंकृत करते थे। सन् १२५८ में मङ्गोल लोगों ने इसको नष्टप्राय करके उसे अतीत स्मृति का विषय बना दिया। इससे भी बढ़ कर क्रूर कर्म उन्होंने ईराक़ में किया। यह देश तत्कालीन संसार में बड़ा उपजाऊ, धनधान्यपूर्ण तथा हरा-भरा था। इसका कारण यह था कि यहाँ हज़ारों वर्ष पूर्व बुद्धिमान तथा उन्नतिप्रिय शासकों ने बड़ी सुन्दर और उपयोगी नहरें बनवाई थीं, जो अब तक वर्तमान थीं और हज़ारों बीघे भूमि को सींचती थीं। मङ्गोल लोग उपयोगिता या अनुपयोगिता को तो कभी लक्ष्य में रखते ही नहीं थे, उनका काम था आँख मूँद कर नाश करना। इसलिए उन्होंने इन नहरों को तोड़ डाला और हज़ारों वर्षों की उपजाऊ भूमि को ऊसर और बञ्जर बना दिया। परिणाम यह हुआ कि यह प्रदेश अब तक वैसा ही ऊसर बना हुआ है। इसकी सम्पदा हमेशा के लिए बिदा हो गई।

भारत में मङ्गोल-तूफ़ान घुसते-घुसते रह गया। चङ्गेज़ ख़ाँ से हार कर एक ख़्वारिज़्म का बादशाद भारत की ओर भागा और चङ्गेज़ ख़ाँ ने उसका पीछा किया। तत्कालीन भारत के बादशाह बलबन ने उसको शरण देने से इन्कार कर दिया, इसलिए वह भारत में न घुसा और ख़ैबर की घाटी से सिन्ध तथा बलूचिस्तान होता हुआ वापस चला गया। इसलिए भारत चङ्गेज़ ख़ाँ के आक्रमण से बच गया। लेकिन सन् १३९८ में तैमूरलङ्ग ने भारत पर आक्रमण करके तुग़लक़ों के राज्य को नष्ट कर डाला। तैमूरलङ्ग का आधिपत्य दिल्ली से मिश्र तक स्थापित हो गया था और इस भूखण्ड के सब शासक उसके नाम से काँपते थे। १४०५ में उसकी मृत्यु हो गई और उसका विस्तृत राज्य कई टुकड़े होकर अन्त में नष्ट हो गया।

तुर्कों द्वारा ह्रास

तुर्कों के प्रभुत्व से मुसलमान सभ्यता को पहिले भारी धक्का लग चुका था। कला-कौशल और ज्ञान की

ही उन्नति नहीं रुक गई थी, बल्कि निरन्तर लूट-मार के कारण भारत और यूरोप का व्यापार भी बन्द सा हो गया था। स्थल-मार्गों का तो लुटेरों के कारण उपयोग हो ही नहीं सकता था और नौका-ज्ञान तुर्कों को कुछ भी न था। अरबिस्तान के चतुर नाविकों को कोई पूछता ही न था। मुस्लिम जगत् में अशान्ति के कारण उनके व्यापार में कोई लाभ न था। ख़लीफ़े अब नाम-मात्र के रह गए थे। न कोई उनकी आज्ञा मानता था और न कोई उनमें श्रद्धा रखता था। राजनैतिक और धार्मिक शक्ति—दोनों उनके हाथ से जा चुकी थीं। जगह-जगह तुर्की सैनिकों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए थे। तुर्क लोगों ने इस्लाम धर्म को अवश्य स्वीकार कर लिया था, परन्तु इससे वे एकदम सभ्य थोड़े ही बन सकते थे। नतीजा यह हुआ कि स्वयं तो सभ्य बने नहीं, बल्कि इस्लाम धर्म को सारे संसार में अपनी कट्टरता, बर्बरता और रक्त-पिपासा के कारण कलङ्कित कर दिया। यूरोप और भारतवर्ष दोनों सभ्य देशों में इस्लाम एक उत्पाती धर्म माना जाने लगा और उसके अनुयायी घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे।

मुग़ल और उनकी सभ्यता

ऐसे समय में मुग़लों के आक्रमण हुए और इस्लाम-संसार की हीन दशा हीनतर हो गई। मुग़ल तुर्कों से भी अधिक रक्तपिपासु, बर्बर तथा जङ्गली थे। उनके आक्रमण प्रलयकारी दावानल के समान थे, जिसकी सर्वसंहारिणी ज्वालाएँ, वन, उपवन, भवन, विद्यालय, पुस्तकालय, कला-कौशल, ज्ञान, नहरें—जो सामने आते थे, सबको भस्म करती जाती थीं। मुग़ल लोगों ने भी इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, लेकिन इस्लाम की दीक्षा इनको दस-पाँच वर्ष में सभ्य नहीं बना सकती थी।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी इस्लाम के इतिहास में विजय-विस्तार और राजनैतिक परिवर्तनों के लिए तो प्रसिद्ध नहीं है, लेकिन संस्कृति-प्रचार की दृष्टि से यह काल बड़ा महत्वपूर्ण है। इस्लाम-धर्म की महत्ता इस काल के इतिहास का अध्ययन करने से प्रकट होती है। हम बतला चुके हैं कि जिस समय तुर्क लोग ईरान में घुसने लगे थे, उस समय उनका एकमात्र गुण था सैनिक वृत्ति। वरना उनका दिल और दिमाग़ मानव-संस्कृति से शून्य था और सभ्य जाति का कोई भी गुण उनमें दिखाई नहीं देता था। मुग़ल उनसे भी अधिक असभ्य, रक्तपिपासु तथा पिशाच-प्रकृति थे। लेकिन इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने पर इन दोनों जातियों में शनैः-शनैः परिवर्तन होना आरम्भ हुआ और पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में तुर्क और मुग़ल दोनों संस्कृत, सभ्य, सुशिक्षित तथा सङ्गठित हो गए। उस समय के मुग़लों में काव्य-रचना और गायन भी उतने ही वाञ्छनीय गुण समझे जाते थे, जितने घोड़े पर चढ़ना, तलवार चलाना और संग्राम में वीरतापूर्वक लड़ना। बाबर ने चौदह वर्ष की अवस्था में अपनी जन्मभूमि को वापस लेने के लिए वीरतापूर्वक कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं और २०-२२ वर्ष की आयु में वह काबुल का स्वतन्त्र शासक बन गया था। भारत पर आक्रमण करते हुए उसने सब नदियों को तैर कर पार किया था और महाराणा साँगा जैसे वीर-रण-पण्डित को युद्ध में पराजित करके अपनी अपूर्व वीरता तथा रण-कुशलता का परिचय दिया था। साथ ही वह गायनप्रिय भी था। स्वयं मनोहर ग़ज़लें बनाता, सुन्दर अक्षर लिखता, लेखन शैली पर अधिकार रखता, पुष्प, चिड़ियाँ आदि प्रकृति के सुन्दर पदार्थों को बहुत चाहता था और घण्टों तक उपवनों में घूमा करता था। ईश्वर-भक्ति और वात्सल्य उसमें कूट-कूट कर भरे हुए थे। कहाँ चङ्गेज़ ख़ाँ और तैमूरलङ्ग और कहाँ बाबर! यह इस्लाम-धर्म का प्रभाव था।

तुर्कों की उन्नति

उधर तुर्क लोग भी इस्लाम के प्रभाव से अधिकाधिक सभ्य होने लगे। सन् १४५३ में क़ुस्तुन्तुनिया को जीत लेने के बाद तुर्कों का वैभव बढ़ने लगा। क़ुस्तुन्तुनिया, एशिया और यूरोप का सिंहद्वार है। यहाँ दोनों महाद्वीपों की सभ्यता का सम्मेलन होता है। यूरोप-निवासी उस समय सुसभ्य और उन्नत हो रहे थे। यदि तुर्क लोग निरे जङ्गली ही रहते तो तुर्क राज्य का यूरोप में विस्तार होना तो दूर रहा, वे क़ुस्तुन्तुनिया में भी नहीं टिक सकते थे। लेकिन १५वीं शताब्दी में तुर्क लोगों में भारी परिवर्तन होता जाता था। वर्तमान तुर्कों की भाँति वे यूरोपीय सभ्यता की नक़ल तो नहीं करते थे, परन्तु

अपने ही ढङ्ग पर उन्नत होते जाते थे। कुस्तुन्तुनिया का विजेता मुहम्मद द्वितीय एक चतुर सेना-नायक ही नहीं, वरन् बुद्धिमान शासक भी था और वाणिज्य के महत्व को तथा कला-कौशल की आवश्यकता का भी अनुभव करता था। १५वीं शताब्दी के अन्त में भारत से सरविया तक सम्पूर्ण मुसलमान जगत इस्लाम के प्रभाव से संस्कृत, उन्नत तथा सभ्य बन चुका था, जिसका परिचय एक छोर पर बाबर और दूसरे छोर पर मुहम्मद की शासन-प्रणाली से मिलता था।

मनुष्य जाति के विकास के दो स्वरूप हैं—एक काल-चक्र और दूसरा काल-प्रभाव। इतिहास में एक ही प्रकार की घटनाओं की आवृत्ति प्रायः बार-बार हुआ करती है, जैसे किसी देश में साम्राज्यों के उत्थान और पतन। साथ ही मानव जाति की उन्नति-धारा भी निरन्तर आगे बढ़ती जाती है, जैसे लेखन क्रिया, कला-कौशल, विज्ञान और शासन-प्रणाली। इस्लाम के इतिहास में काल-चक्र अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। मुहम्मद का धर्म, समाज-सङ्गठन और नीति ६५० से १००० तक निभे। तदनन्तर सम्पूर्ण मुसलमान जगत छिन्न-भिन्न होकर उसी अवस्था में पहुँच गया, जिसमें एक समय अरबिस्तान था। १५वीं शताब्दी में फिर उन्नति का आरम्भ हुआ और सोलहवीं शताब्दी में यह पुनः सम्पन्न, समृद्धिशाली तथा शक्तिमान बन गया। सत्रहवीं शताब्दी में पुनः इसका पतन हुआ और अट्ठारहवीं शताब्दी में अत्यन्त शीर्ण और अवकीर्ण हो गया। अब बीसवीं शताब्दी में इसमें फिर जीवन आया है और नवीन ढङ्ग से संसार के सामने खड़ा हुआ है।

(क्रमशः)

वीर-नख-शिख

[राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद भट्ट, "अम्बिकेश"]

वीर अधर

रक्त-रङ्ग-रञ्जित त्रिशूली को त्रिशूल कैधौं,
शत्रुन को शूल बलदेव जू को हर है।
बान की अनी है कैधौं, वज्र की कनी है चारु,
रसना फनी की फूलि फैलत जहर है।
चावि चन्द-दन्त काल-दाढ़ सुरभानु कैधौं,
लीलिबे को लेत भूरि भूतल लहर है।
काल को कहर, जम जाल को जहर कैधौं,
वीरवर तेरो विकराल ये अधर है।
जम्पित गगन त्यों विकम्पित धरनि ह्वैहै,
झम्पित तरनि तेज तारापति तावैगो।
बाहुन मृणाल सने श्रोणित सरोवर में,
पङ्कज के जाल मुण्डमाल लहरावैगो।
जोगिनी जमाति जुरि, धूमकेतु पाँतिन की,
अखिल अराति पै परावनी परावैगो।
घोर हाहाकार की मचैगी चीतकार जो पै,
फरक तिहारो कहूँ रद-पुट जावैगो।

वीर नयन

प्रलय के कृसान हैं, बुझाए विष-बान कैधौं,
भभकत युग अग्नि-कुण्ड के अङ्गारे हैं।
ग्रीषम को भान, कढ़ी काल की कृपान कैधौं,
रूप सिन्धु-वारे बड़वानल अपारे हैं।
सोखन को प्राणवायु अखिल अरिन्दन के,
फफकत फैलिधां फणिन्द विकरारे हैं।
शत्रुन को शोचन, दबोचन दिगीशन को,
मोचन त्रिताप, वीर लोचन तिहारे हैं।
जाकी ओर ताकत, न ताकत रहत तामें,
ताकत कहा है मुरि एक बार हेरें हैं।
पीठि ही दिखात, ना दिखात फिर दीठि कबौं,
भगैं ऊँच-नीच भूमि-भाग ना निवेरें हैं।
झूमत मतङ्ग से दिखात युग क्रोध भरे,
लीलि जैहैं विश्व लेत तीछन तरेरें हैं।
दुवन दरेरैं, दाबि कोल्हू सम पेरैं, घोर
प्रलय घन घेरैं, जब वीर दृग फेरैं हैं।

साम्यवाद की बाढ़

[डॉ० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी-लिट्०]

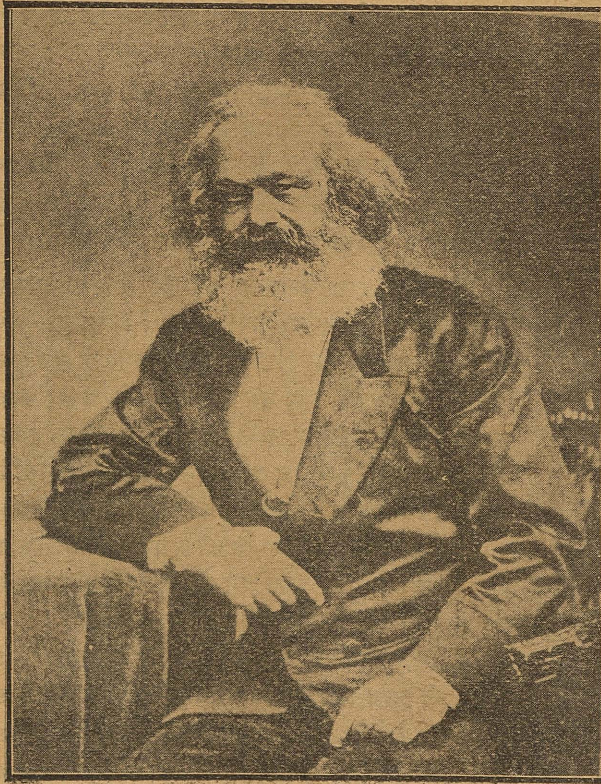


उन्नीसवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने वाणिज्य-जगत में भारी उथल-पुथल पैदा करके अनेक विषम समस्याएँ उपस्थित कीं। मैशीनों के आविष्कार के कारण लाखों मज़दूर बेकार हो गए, सारे उद्योग-धन्धे पूँजीपतियों के हाथ में आ गए। लोग व्यापार-सङ्घों में अपना धन जमा करके घर बैठे हुए विपुल लाभ उठाने लगे। फ़ैक्ट्रियों में काम करने वाले मज़दूरों के स्वास्थ्य के विषय में शासकों को चिन्ता होने लगी। मैशीनों से पैदा किए हुए माल के लिए संसार में बाज़ारों की तलाश होने लगी। इन बाज़ारों को अपने चङ्गुल में फँसाए रखने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों को अनेक युद्ध लड़ने पड़े। जगत के रहन-सहन में और सामाजिक जीवन में घोर परिवर्तन हो गया और धार्मिक, नैतिक तथा पारिवारिक जीवन में अनेक हेर-फेर हुए। औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न होने वाली इन समस्याओं में सब से अधिक जटिल और विश्व-व्यापी समस्या है, पूँजी और श्रम का भयङ्कर सङ्घर्ष।

मैशीनों के आविष्कार ने श्रमजीवियों को भी एक प्रकार से मैशीनों के पुर्ज़े बना दिया। उनकी व्यक्तिगत निपुणता, योग्यता और कार्य-दक्षता का महत्व अधिकांश जाता रहा। उनका काम केवल मैशीनों को चलाना या किसी कार्य को निरन्तर एक विशेष प्रकार से करते रहना ही रह गया। उनकी कला और निपुणता की, मैशीनों से चलने वाले कारख़ानों में, कोई आवश्यकता नहीं रही। फल यह हुआ कि श्रमजीवियों को अपने जीवन में विशेष उन्नति और सफलता प्राप्त करने का कोई अवसर न रहा। उधर पूँजीपति लोग औद्योगिक कला और निपुणता से रहित होते हुए भी, केवल अपनी सम्पत्ति की शक्ति से, अश्रुतपूर्व लाभ प्राप्त करने लगे। पूँजी के द्वारा ज़मीन और मैशीनें ख़रीदना, आवश्यक इञ्जीनियर, मिस्त्री और निरीक्षकों को नियत करना, कच्चा माल ख़रीदना और हज़ारों श्रमजीवियों से पशुओं की भाँति कई घण्टे तक निरन्तर काम करवाते रहना क्या कठिन था? इस औद्योगिक विप्लव के कारण पूँजीपति अधिकाधिक सम्पत्तिशाली होने लगे और श्रमजीवियों की दशा अधिकाधिक हीन होने लगी। हज़ारों मज़दूर एक पूँजीपति के अधीन हो गए। उनको केवल साधारण जीवन-निर्वाह के लिए भी वेतन मिलना कठिन हो गया और उनके उद्योग तथा श्रम से पूँजीपतियों के पास अधिकाधिक धन एकत्र होने लगा।

विप्लव की इस भयङ्करता को अनुभव करने वाला सर्व-प्रथम महापुरुष था कार्ल मार्क्स। इसका जन्म जर्मनी के एक यहूदी कुल में हुआ था। अपनी युवावस्था में ही इसको एक पत्र का सम्पादन करना पड़ा। प्रत्येक कार्य को तल्लीनता के साथ करना कार्ल मार्क्स की प्रकृति थी। इसलिए सम्पादन-सफलता के निमित्त इसने अनेक सामयिक विषयों का और विशेषकर तत्कालीन यूरोप की आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन किया। शीघ्र ही इसको पूँजी और श्रम के पारस्परिक सङ्घर्ष का पूरा ज्ञान हो गया और इसके भावी दुष्परिणामों पर तथा श्रमजीवियों के चिन्ताजनक भविष्य पर इसने कितने ही लेख लिखे। उग्र और असाधारण विचारों के कारण कार्ल मार्क्स को जर्मन-सरकार एक ख़तरनाक आदमी समझने लगी और उसे देश से निर्वासित कर दिया। तदुपरान्त वह फ़्रान्स में जाकर रहने लगा और वहाँ उसके विचारों से सहानुभूति करने वाले तथा सहयोग देने वाले उसे कई मित्र भी मिल गए। परन्तु कार्ल मार्क्स के विचार और कार्यों ने फ़्रान्स सरकार का भी ध्यान शीघ्र ही आकर्षित कर लिया और उसको फ़्रान्स छोड़ने के लिए विवश किया गया। इसके पश्चात् वह बेलजियम चला गया और जब वहाँ की सरकार भी उसको आपत्तिजनक समझने लगी, तो इङ्गलैण्ड भागा और अन्त में वहीं उसकी मृत्यु हुई।

कार्ल मार्क्स साम्यवाद का प्रथम आचार्य है। उससे पूर्व बुद्ध और ईसा ने भी अपने अनुयायियों को एक प्रकार के साम्यवाद की शिक्षा दी थी। परन्तु वह साम्यवाद और था और वर्तमान साम्यवाद और है। कार्ल मार्क्स ने सब से पहिले बतलाया था कि मनुष्य-जाति के हर एक प्रयत्न का कारण और ध्येय कोई न कोई आर्थिक स्वार्थ हुआ करता है; इतिहासकार कार्ल



स्वर्गीय कार्ल मार्क्स

मार्क्स के इस सिद्धान्त को इतिहास की भौतिक व्याख्या कहते हैं। तत्कालीन पूँजी और श्रम के सङ्घर्ष को देख कर कार्ल मार्क्स ने यह अनुमान किया कि भविष्य में पूँजीपति और श्रमजीवियों में विश्व-व्यापी युद्ध होगा और उसमें श्रमजीवियों को विजय मिलेगी। जिस समय कार्ल मार्क्स फ़्रान्स में था, उसी समय यूरोप के श्रमजीवियों का सङ्गठित होना आरम्भ हो गया और एक मज़दूर-सङ्घ ने कार्ल मार्क्स को उचित सलाह देने और पथ-प्रदर्शन करने के लिए निमन्त्रित भी किया था। इस अवसर पर कार्ल मार्क्स ने संसार के श्रमजीवियों के नाम एक साम्यवादी घोषणा-पत्र प्रकाशित किया, जिसने यूरोप के पूँजीपतियों में और शासकों में भारी खलबली पैदा कर दी थी। इस पत्र में कार्ल मार्क्स ने वर्ग युद्ध और साम्यवाद के स्वरूप का विस्तृत तथा स्पष्ट विवेचन किया था और श्रमजीवियों को सचेत करते हुए अपने स्वत्वों की रक्षा करने तथा भावी युद्ध के लिए तैयार होने के लिए आह्वान किया था। कार्ल मार्क्स का साम्यवादी घोषणा-पत्र साम्यवाद के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख है। इसको लिखे हुए आज लगभग एक सौ वर्ष हो गए, लेकिन इसमें कही हुई बातें जिस प्रकार उस समय सत्य थीं, उसी प्रकार आज भी सत्य हैं। यह घोषणा-पत्र इस समय लगभग तीन सौ पृष्ठों की पुस्तक के स्वरूप में मिलता है और साम्यवाद के तत्वों को समझने वाले के लिए इसका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ हम उसके एक अंश को केवल परिचय के लिए उद्धृत करते हैं। पूँजी और श्रम के हित-विरोध का वर्णन करके कार्ल मार्क्स कहता है :—

"संसार के श्रमजीवियो, क्या तुमको जगत की आर्थिक स्थिति का पूरा पता है? क्या तुम जानते हो कि निर्धन ग्रामीणों के पास से निकल-निकल कर लक्ष्मी किस प्रकार नगरों के पूँजीपतियों के पास एकत्र हो रही है? तुम कमाने वाले हो और ये लोग खाने वाले। पूँजीपतियों के विपुल लाभ का तुम लोग क्या अनुमान कर सकते हो? इन लोगों को न हाथ हिलाना पड़ता है, न पैर; केवल अपने धन के बल से इन लोगों ने तुमको ग़ुलाम बना रक्खा है और लाखों-करोड़ों के फ़ायदे स्वयं उठा रहे हैं। वास्तव में यह लाभ होता है तुम्हारे श्रम और प्रयत्न से। लेकिन तुमको मिलता है क्या? केवल उदर-पूर्ति के लिए कुछ पैसे। यदि तुम चूँ करते हो तो पूँजीपति लोग तुमको बरख़ास्त करके भूखों मार सकते

हैं। तुम करोड़ों की सम्पत्ति कमा कर इनके घर में रखते हो, पर तुम्हारी इतनी भी बिसात नहीं कि सङ्कट के समय में बैठ कर दो-चार दिन खा सको। अब तुम्हारे चेतने का समय है। अपने आपको सङ्गठित करो। अपनी मेहनत के अनुकूल मज़दूरी प्राप्त करने का यत्न करो और स्वयं अपने भाग्य के विधाता बनो।"

कार्ल मार्क्स को अपने विचारों के कारण देश-विदेश भटकना पड़ा और अनेक यन्त्रणाएँ सहनी पड़ीं, परन्तु आज संसार का सम्पूर्ण उत्पीड़ित श्रम-जीवी-दल उसके साम्यवाद का अभिनन्दन करने को तैयार है। संसार में ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ किसी न किसी रूप में साम्यवाद ने प्रवेश न किया हो। कार्ल मार्क्स के देहान्त के लगभग तीस वर्ष बाद इङ्गलैण्ड में कितने ही मज़दूर-सङ्घों का सङ्गठन हुआ। फ़्रान्स में सेण्डीकेलिज़्म अर्थात् हड़तालवाद का प्रचार बढ़ने लगा और रूस में किसान और श्रमजीवी लोग कुलबुलाने लगे। यूरोपीय महासमर के बाद साम्यवाद और भी ज़ोर से फैलने लगा।



रूस के क्रान्तिकारी नेता—मोशिए लेनिन

रूस में साम्यवाद ने बोल्शेविज़्म का रूप धारण किया और लेनिन ने ज़ार-परिवार का अन्त और बोलशेविक शासन की स्थापना करके संसार के सामने साम्यवाद का एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया। साम्यवाद के आचार्य कार्ल मार्क्स ने जिस बात की कल्पना भी नहीं की थी, वह सन् १६१६ में, लेनिन ने प्रत्यक्ष कर दिखाई। रूस में पञ्चायती राज्य ही स्थापित नहीं हुआ, वरन् सम्पत्ति-वैषम्य और पारस्परिक अर्थ-सङ्घर्ष भी मिटा दिया गया। प्रत्येक देशवासी के लिए पर्याप्त भोजन, वस्त्र, निवास-स्थान, शिक्षा, चिकित्सा और विनोद का उचित प्रबन्ध करना शासन का ध्येय मान लिया गया। बिना हाथ-पैर हिलाए अपने धन के बल से हज़ारों लोगों को ग़ुलाम बनाए रखना और विपुल लाभ का उपभोग करना बोल्शेविक सरकार ने असम्भव कर दिया। सवा सौ वर्ष तक भारत में राज्य कर चुकने पर भी अङ्गरेज़ महाप्रभु अभी इस देश का पिण्ड नहीं छोड़ना चाहते और सुधारों के टुकड़ों से ही भारतवर्ष को सन्तुष्ट करना चाहते हैं, परन्तु सोवियट सरकार ने देश में शान्ति स्थापित होते ही अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में बोल्शेविक शासन जारी कर दिया। बात की बात में रूसी तुर्किस्तान और साइबेरिया जैसे पिछड़े हुए देश रिपब्लिक—अर्थात् प्रजातन्त्र देश बना दिए गए और शिक्षा-प्रचार, सैनिक शिक्षा, स्त्री-स्वातन्त्र्य आदि सुधार अत्यन्त शीघ्र गति के साथ जारी किए गए। आज से पन्द्रह वर्ष पहिले रूसी तुर्किस्तान एक प्रकार से जङ्गली देश था, परन्तु अब वहाँ हर एक अङ्ग में आधुनिकता की छाप लग चुकी है। सैकड़ों वर्षों की पर्दा-प्रथा बात की बात में उठा दी गई। गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोल कर मैजिक लैण्टर्न और रेलवे का प्रचार करके शिक्षा का प्रचार किया गया। कई सड़कें बनवा कर यात्रा को सुगम करने के लिए लॉरियों का उपयोग बढ़ाया गया। इसके अतिरिक्त चिकित्सा और स्वास्थ्य-रक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया गया। साम्यवादी शासन के प्रभाव से इस पिछड़े हुए देश में जो आश्चर्यकारिणी उन्नति हुई है, उसका पाठक इससे अनुमान लगा सकते हैं कि वहाँ पर प्रजातन्त्र की उप-प्रधाना एक महिला हैं। यह देवी साम्राज्यवादी रूस के शासन-काल में एक अमीर के अन्तःपुर में आठवीं पत्नी थीं और अपने यौवन और जीवन-ध्येय को एक प्रकार से उसकी भोग-लिप्सा के भेंट कर चुकी थीं। जब सन् १६१६ में रूस में साम्यवाद ने ज़ोर पकड़ा और अत्याचारियों के आसन डगमगाने लगे, तो इस देवी ने सुअवसर देखा और चुपके से अन्तःपुर से भाग कर बुख़ारा नगर में क्रान्ति का प्रचार करने लगी। अनुकूल अवसर मिलने पर इसकी योग्यता और प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ और अब यह प्रजातन्त्र की उप-प्रधाना है।

साइबेरिया में, सन् १६१७ तक, कितने ही ऐसे प्रदेश थे, जहाँ के निवासी भारतवर्ष के कोल और भीलों से अधिक सभ्य नहीं थे, परन्तु अयोग्यता का बहाना बना-बना कर साम्यवादी रूस ने इनको अपने पञ्जे में नहीं फँसाए रक्खा। स्वयं शासन की योग्यता न रखने पर भी इन देशों में रिपब्लिकन गवर्नमेण्ट (प्रजातन्त्र शासन) स्थापित कर दी गई। इन लोगों ने शासन-सञ्चालन में अनेक भूलें कीं, हानियाँ उठाईं, ठोकरें खाईं और अनेक सङ्कटों का सामना किया, परन्तु कुछ ही काल में सब काम ठीक चलने लगा और प्रजातन्त्र शासन की विजय हुई।

साम्यवादी शासन में सिद्धान्ततः साम्राज्यवादी नीति की गुञ्जायश नहीं हो सकती। जब देश भर सम्पत्ति-वैषम्य का विरोध करता हो और अपने परिश्रम के अनुकूल सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करना प्रत्येक मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार समझता हो, तो उसके लिए यह सम्भव नहीं है कि अपने साम्राज्य के हित के लिए दूसरे देशों का रक्त-शोषण करे। जिस समय रूस में लेनिन ने ज़ार की नृशंसता का अन्त करके बोल्शेविक शासन स्थापित किया तो उसके विरोधी यूरोपीय राष्ट्रों ने यह भय फैलाना शुरू किया था कि रूस अपने देश के लिए साम्यवादी रहेगा और दूसरे देशों के लिए साम्राज्यवादी बन जाएगा। साम्यवादी विचार के प्रचार को साम्राज्यवादी देश एक प्रकार का प्लेग समझते थे और इसलिए उसको रोकने के लिए सम्पूर्ण यूरोप ने प्राणपण से चेष्टा की थी। फिर भी जनरल कोचक की अध्यक्षता में सोवियट सेना को प्रत्येक रणाङ्गण में जो अद्भुत विजय प्राप्त हुई, उसको पाठक भूले न होंगे। आख़िरकार हार मान कर यूरोपीय राष्ट्रों को बैठ जाना पड़ा और रूस में साम्यवाद का डङ्का बजता रहा।

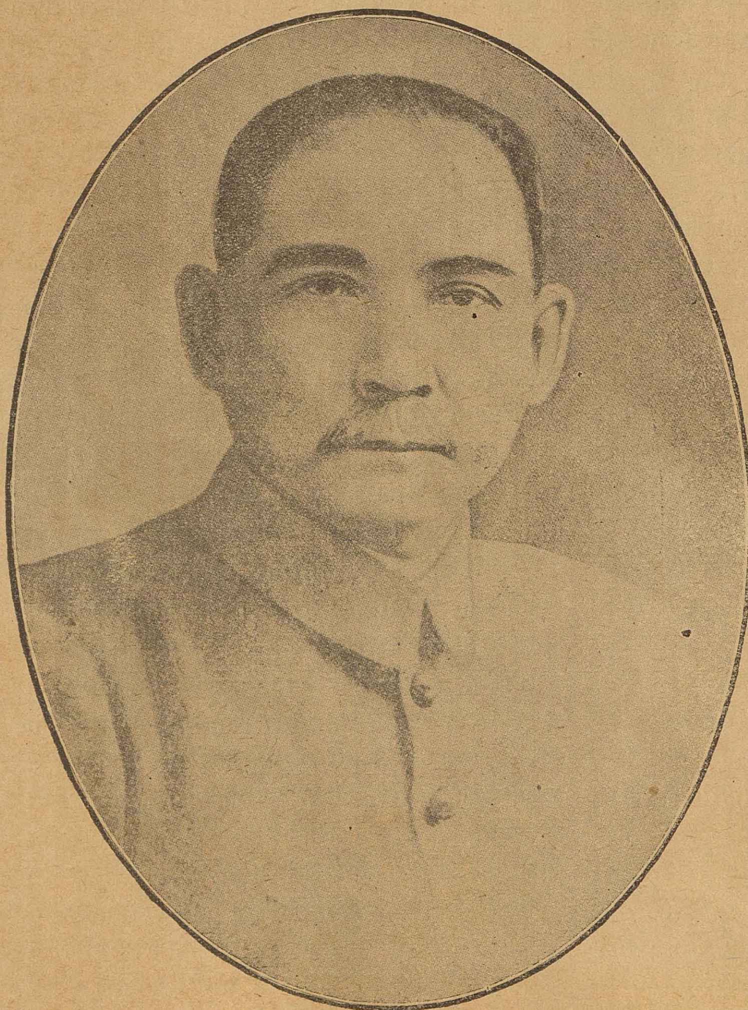
इस प्रकार सारे यूरोप से लोहा ले चुकने पर रूस ने अपने पार्श्ववर्ती देशों के साथ अपनी उदार नीति का व्यवहार आरम्भ किया। सन् १९१९ से पूर्व टर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान यूरोपीय शक्तियों से दबे हुए थे। कमाल पाशा के स्वातन्त्र्य-संग्राम से पहले यूरोपीय राष्ट्र टर्की को यूरोप का रोगी कहा करते थे और जैसे मरणासन्न पशु की लाश का गिद्ध लोग इन्तज़ार किया करते हैं, इसी प्रकार एक दिन टर्की साम्राज्य का बटवारा करने के लिए कई यूरोपीय राष्ट्र उत्सुक हो रहे थे। २०वीं सदी के आरम्भ में यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों में टर्की की निर्बलता प्रधान विषय था। प्रत्येक राष्ट्र का उस पर दाँत लगा हुआ था और प्रत्येक उस पर क़ब्ज़ा जमा कर पश्चिम एशिया में अपना दबदबा क़ायम करना चाहता था। यूरोप की इस हरण-नीति में उस समय रूस भी शामिल था। सन् १९०८ में इङ्गलैण्ड और रूस में ईरान के विषय में एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ था। इसके अनुकूल ईरान के उत्तर भाग में रूस का और दक्षिण भाग में इङ्गलैण्ड का प्राधान्य स्थापित करना दोनों देशों ने न्यायानुकूल मान लिया था। ईरान के बादशाह कठपुतली की भाँति इन दोनों देशों की उँगलियों पर नाचा करते थे। इसी प्रकार अफ़ग़ानिस्तान को भी एक तरफ़ से अङ्गरेज़ों ने और दूसरी ओर से रूस ने दबा रक्खा था।

जब यूरोपियन महासमर का अन्त होने लगा तो अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने संसार के सामने प्रेममयी अन्तर्राष्ट्रीय नीति का सुन्दर आदर्श रक्खा और परतन्त्र देशों को आश्वासन दिलाया गया कि उनको शीघ्रातिशीघ्र स्वराज्य के योग्य बना कर स्वतन्त्र कर दिया जायगा। सङ्कट के समय में येन-केन-प्रकारेण सहायता प्राप्त करने के लिए मित्र-राष्ट्रों ने विल्सन की इस नीति को प्रत्यक्ष स्वीकार तो कर लिया, परन्तु उसके मुँह से ये सुन्दर शब्द निकलने ही पाए थे कि सन्धि-परिषद् के महारथियों ने गिरगिट के समान रङ्ग बदलना शुरू किया और ऐसी कूट चालें चलीं कि राष्ट्रपति विल्सन का सुन्दर आदर्श केवल पुस्तकों का विषय रह गया। भारत के प्रति न इङ्गलैण्ड ने अपनी नीति को बदला, न इण्डोचाइना आदि के प्रति फ़्रान्स ने अपनी शासन-नीति में कोई हेर-फेर किया। यह साम्राज्यवादी यूरोपीय देशों का हाल था, परन्तु साम्यवादी रूस की अन्तर्राष्ट्रीय नीति में महान परिवर्तन हो चुका था। सन् १९१९ में जिस समय फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड की कूट-सहायता से यूनान टर्की को दबाना चाहता था, उस समय रूस ने उसके साथ एक ऐसी उदार सन्धि की, जिससे स्वातन्त्र्य-संग्राम के लिए मुस्तफ़ा कमाल पाशा का साहस दूना हो गया और उत्तरी टर्की से राष्ट्रीय सेना में धड़ाधड़ रङ्गरूट भरती होने लगे। कमाल पाशा की प्रबन्ध-शक्ति, नेतृत्व, चतुरता और अनुपम वीरता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता, लेकिन साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि रूस में साम्यवादी शासन स्थापित न हुआ होता और यूरोप की हरण-नीति में रूस भी शामिल होता और टर्की की उत्तरी सीमा पर नाना प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होती रहतीं, तो टर्की यूनानी सेना को इस प्रकार खदेड़ कर नहीं हटा सकता था, जैसे उसने सकारिया के युद्ध में उसे मार भगाया और अनेक बल-गर्वित राष्ट्रों को चकित कर दिया।

ईरान के साथ रूस ने जो सन्धि की, वह और भी उदार थी। यही कारण था कि अङ्गरेज़ी सेना दुम दबा कर ईरान छोड़ भागी। अहमदशाह एक अङ्गरेज़ी जहाज़ पर लद कर अपना विलासमय जीवन व्यतीत करने के लिए यूरोप पधार गए और रज़ाअली शाह को ईरान की स्वतन्त्रता के लिए एक बूँद भी ख़ून न बहाना पड़ा। इसी प्रकार अफ़ग़ानिस्तान की स्वतन्त्रता-प्राप्ति में भी रूस का बड़ा भारी हाथ था। अङ्गरेज़ों के ख़िलाफ़ तलवार खींचने का साहस अमानुल्ला को उस समय हुआ था, जब रूस के साथ मित्रता स्थापित करके वह पश्चिम की ओर से निश्चिन्त हो चुका था। यदि रूस अपनी परम्परागत साम्राज्य-नीति जारी रखता, तो न दर्रए-ख़ैबर में उसको आश्चर्यकारिणी विजय प्राप्त होती और न अफ़ग़ानिस्तान एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनता।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का कुछ भी ज्ञान रखने वाला इस बात को स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता कि मुस्लिम राष्ट्रों को स्वतन्त्रता प्राप्त करवाने में साम्यवाद का बड़ा हाथ था। मुस्लिम संस्कृति में हिन्दू संस्कृति की भाँति राजपद का सम्मान करने की परम्परा है और इसलिए टर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में साम्यवादी

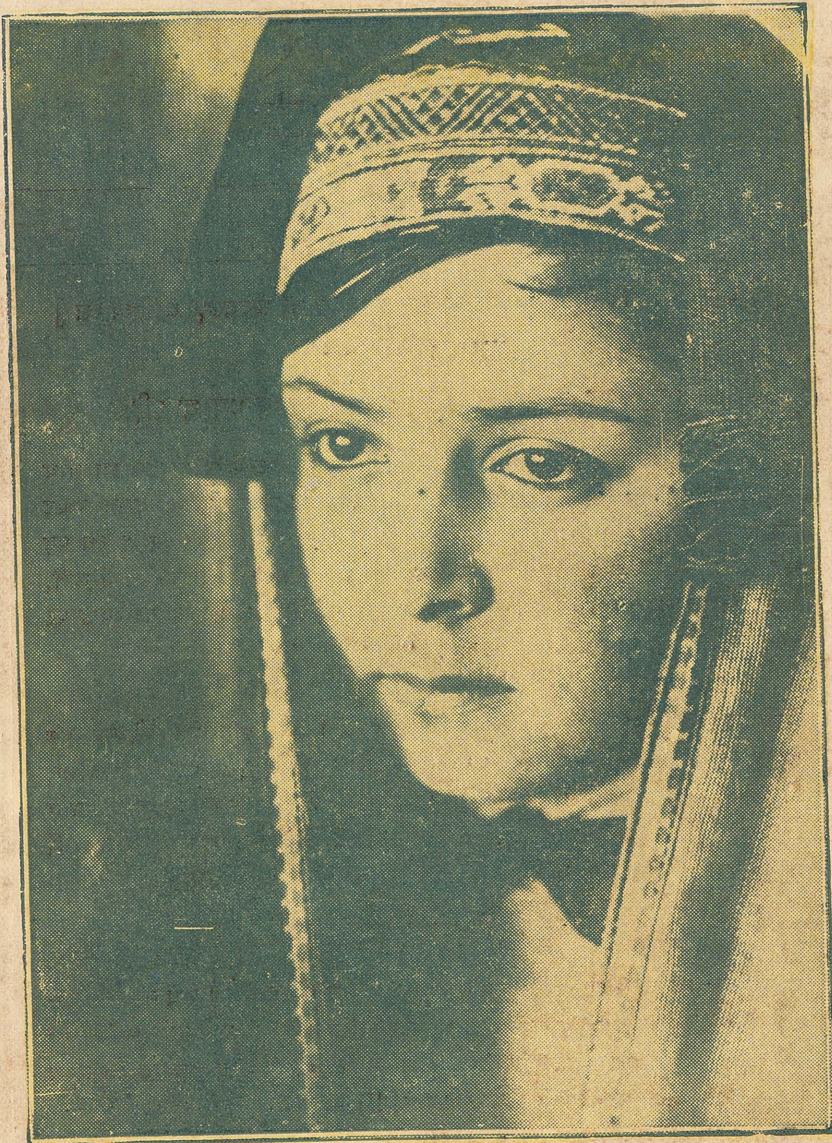
विचारों का प्रचार शीघ्रता के साथ नहीं हो रहा है। अमानुल्ला, कमाल पाशा, रज़ाअली शाह और नादिर-शाह—कोई भी अपने देश में मानव-वैषम्य का अभाव नहीं देखना चाहते। सम्राट, नियन्त्रित शासक या निर्वाचित राष्ट्रपति, किसी न किसी रूप में वे अपनी शान



डॉक्टर सनयात सेन

क़ायम रखना चाहते हैं। इस समय साम्यवाद के प्रवेश को रोकने के लिए इनकी सरकारों ने अपने देश की रूसी सीमाओं पर बड़ी कड़ी चौकियाँ बिठा रक्खी हैं, लेकिन पिछले पन्द्रह वर्ष की इतिहास-दृष्टि से यदि हम भविष्य के स्वरूप का अनुमान करें, तो निर्विवाद कह सकते हैं कि आज नहीं तो कल मुस्लिम देशों में साम्यवाद का प्रचार अवश्य होगा।

वर्तमान चीन का विधाता और चीन-प्रजातन्त्र का संस्थापक डॉ० सनयात सेन स्वयं एक कट्टर साम्यवादी था। उसने कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया था और उसके पुस्तकालय में साम्य-वादी साहित्य का अद्भुत संग्रह था। अपने व्याख्यानों में भी वह इसी बात पर अधिक ज़ोर दिया करता था, कि देश की सम्पत्ति सिमट-सिमट कर चन्द लोगों के पास एकत्र नहीं होनी चाहिए और प्रत्येक देश-निवासी को भरपेट स्वास्थ्यप्रद भोजन, पर्याप्त तथा अनुकूल वस्त्र और उपयुक्त निवास-स्थान मिलना चाहिए। जब य्यान-शिकाई ने राष्ट्रपति के सिंहासन पर बैठने के पश्चात्, सन् १९२१ के लगभग साम्राज्य-नीति को ग्रहण किया तो डॉ० सनयात सेन खुल्लमखुल्ला साम्यवादी ढङ्ग से किसान और मज़दूरों का सङ्गठन करने लगे। ज़मींदारों, मिल-मालिकों और सर-कार से बातचीत करने के लिए और मज़दूरी आदि की शर्तें निश्चित करने के लिए कृषक-सङ्घ और मज़-दूर-सङ्घ बनाए जाने लगे। सन् १९२४ में जब क्योमिण्टेङ्ग (चीनी कॉङ्ग्रेस) का पुनर्सङ्गठन किया गया, तो उसी समय डॉ० सनयात-सेन ने मज़दूरों के सङ्गठन की आव-श्यकता भी अनुभव की और इस सङ्गठन के द्वारा ही क्रान्ति करवाने का निश्चय किया। रूस से कई सङ्गठन-पण्डित बुलाए गए और साम्यवाद का प्रचार जारी किया गया। सन् १९२५ में व्याख्यान देते हुए डॉ० सनयात सेन ने कहा था कि "क्रान्तिकारी



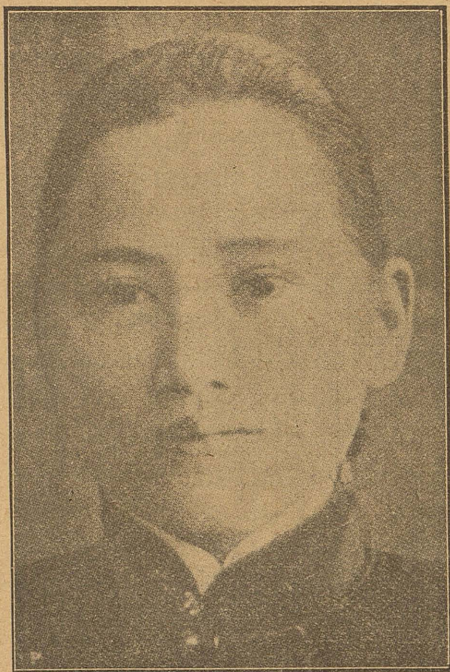
रूस की सुप्रसिद्ध बॉलशेविक नेत्री

मैडम ज़रनॉफ़

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

सरकार का ध्येय जनता को ही देश का शासक बनाना है। हमारे देश की अधिकांश जनता कृषक है। यदि ये लोग क्रान्ति में सम्मिलित नहीं हुए, तो वह कदापि सफल न होगी। नव-सङ्गठित क्योमिण्टेङ्ग के कार्यक्रम में किसान और मज़दूरों के सङ्गठन को प्रधानता दी गई है।''

सन् १९२५ में डॉ० सनयात सेन का देहावसान हो गया। परन्तु रूस की सहायता से किसान और मज़दूरों के सङ्गठन का कार्य बन्द नहीं हुआ, बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उसी वर्ष जब जनरल च्याङ्क-शैक के नेतृत्व में कैण्टन से क्योमिण्टेङ्ग की सेना उत्तर की ओर बढ़ी, तो किसानों और मज़दूरों ने इसको विपुल सहायता दी और लगभग छः महीने के भीतर ही यह सेना याङ्सी घाटी तक पहुँच गई। समता-स्वप्न से उन्मत्त किसान और मज़दूर स्वयं सङ्गठित होकर जिधर दाँव लगता था, उधर साम्राज्यवादी सेनाओं पर टूट पड़ते थे, उनकी रसद रोक कर, खेत उजाड़ कर और मार्गों को विघ्न-सङ्कुल बना कर अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा कर देते थे। क्योमिण्टेङ्ग की सेना जिधर जाती थी, उधर उसका सप्रेम अभिनन्दन किया जाता था और उसको सब प्रकार की सहायता दी जाती थी। सन् १९२६ में छः लाख, सत्ताइस हज़ार किसान और तीन लाख, सत्तर हज़ार मज़दूर सङ्गठित हो चुके थे। सन् १९२७ के अन्त में इन सङ्घों के प्रतिनिधियों ने मिल कर अपने सङ्गठन के ध्येय निश्चित किए थे, जिनमें से प्रधान ये थे—"किसानों के हित-विरोधियों को दण्ड दिया जाय। इन हित-विरोधियों में सैनिक लोग, राज-कर्मचारी, अमीर और ज़मींदार प्रधान हैं। किसानों में आत्मरक्षा के लिए बल उत्पन्न किया जाए और सरकार को विवश किया जाय कि खेती का सुधार करे और किसानों का रहन-सहन उन्नत बनावे। किसानों से जो मनमाना ब्याज लिया जाता है, वह बन्द किया जाए।'' डॉ० सनयात सेन की मृत्यु के तीन वर्ष बाद ही चीनी कॉङ्ग्रेस के ध्येय में महान अन्तर आ गया और साम्यवादी लोग उस सङ्गठन में से निकाले जाने लगे। कॉङ्ग्रेस की इस नीति को देख कर चीन-सरकार ने भी अपनी नीति बदली और साम्यवादियों को दबाया जाने लगा। इससे चीनी कॉङ्ग्रेस के एक प्रकार से दो दल हो गए। साम्यवादी लोगों का नेतृत्व स्वर्गीय डॉ० सनयात सेन की सुयोग्या धर्मपत्नी ने ग्रहण किया और कॉङ्ग्रेस का प्रधान भाग पूँजीपति और ज़मींदारों का हिमायती बन गया। इस समय चीन में साम्यवादियों की बड़ी दुर्दशा है। साम्यवादी को मार डालना कोई हत्या नहीं समझी जाती। सरकारी सैनिक जहाँ-तहाँ इन लोगों को मार डालते हैं और त्रस्त लोग इस भय से इनकी लाशों को भी नहीं उठाते कि कहीं उनको भी साम्यवादी समझ कर गोली का निशाना न बना दिया



डॉ० सनयात सेन की धर्मपत्नी (पुरुष-वेश में)

जावे। डॉ० सनयात सेन की धर्मपत्नी इधर-उधर छिपी हुई मारी-मारी फिरती हैं और हज़ारों साम्यवादी गोलियों के शिकार हो चुके हैं, तो भी साम्यवाद चीन से नष्ट नहीं होने पाया है और न नष्ट होगा।

भारतवर्ष में साम्यवाद के प्रचार के भय से गवर्नमेण्ट किस प्रकार थर्राती है, यह पाठकों से छिपा नहीं है। मेरठ के अभियुक्तों पर गवर्नमेण्ट ने मुक़दमा चलाने की इतनी जल्दी की कि, मानो तनिक विलम्ब होने से

ब्रिटिश साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने वाला हो। सीमा-प्रान्त के ख़ुदाई ख़िदमतगारों को सामर्थ्यशील सरकार हौवा समझती है। उनकी लालकुर्ती से पुलिस इस प्रकार डरती है, जैसे बिल्ली से चूहे। भारतवर्ष के मज़दूर-सङ्घ, किसान-सङ्घ और कारीगर-सङ्घ आदि संस्थाएँ वास्तव में घनघोर साम्यवादी नहीं हैं, परन्तु राजकर्मचारियों को डराने के लिए उनके लाल झण्डे और लाल कपड़े ही काफ़ी हैं। गत ता० १८ मई को ब्रिटिश पार्लामेण्ट के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में परराष्ट्र विषयों पर जिस समय बहस हो रही थी, उस समय अनुदार-दल के सदस्य श्री० लोकर सेम्पसन ने महात्मा गाँधी के लिए कहा कि यदि वे पतलून पहनते होते तो उनकी जेबों में से रूसी सिक्के ढूँढ़ निकालना कोई कठिन बात नहीं थी। सेम्पसन साहब का अभिप्राय यह था कि महात्मा गाँधी को स्वतन्त्रता के संग्राम में मॉस्को से सहायता मिलती है और भारत की वर्तमान जागृति में साम्यवादियों का बड़ा भारी हाथ है। महात्मा गाँधी वास्तव में पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों से ही परे हैं। वे दीनबन्धु और अनाथों के नाथ हैं। सत्य उनका ध्येय और अहिंसा उनका साधन है। ऐसे निर्मम महात्मा को साम्यवादी कह कर सेम्पसन ने बतला दिया है कि चरित्र-निरीक्षण की शक्ति का उनमें कितना अभाव है। परराष्ट्र विषयों के उपमन्त्री श्री० ह्यग डाल्टन ने सेम्पसन के कथन का विरोध करते हुए कहा कि महात्मा गाँधी पर साम्यवादी होने का दोष नहीं लगाया जा सकता। महात्मा गाँधी साम्यवाद के प्रचार के उतने ही विरोधी हैं जितनी कि सरकार। इस बहस से यह बात तो स्पष्ट है कि साम्यवाद से साम्राज्यवादी लोग कितने भयभीत हैं और स्वतन्त्रता के साथ लोग इसका कितना सम्बन्ध समझते हैं।

ब्रिटिश पार्लामेण्ट की उदार और अनुदार दोनों पार्टियाँ साम्यवाद के प्रचार का घोर विरोध करती हैं, परन्तु मज़दूर-दल की नीति इनसे भिन्न है। इन दोनों पार्टियों ने रूसी सरकार को न स्वीकार किया था और न इसके साथ व्यापारिक सङ्घ स्थापित किया था। परन्तु जब मज़दूर-दल ज़ोरदार हुआ और शासन-सूत्र उसके हाथ में आया तो उसने रूस के साथ व्यापारिक सन्धि कर ली और रूसी माल ग्रेट-ब्रिटेन में आने-जाने लगा। कारण यह है कि इङ्गलैण्ड का मज़दूर-दल भी मूलतः साम्यवादी है। इङ्गलैण्ड के साम्राज्यवादी वायु-मण्डल में साम्यवाद का स्वरूप बदल गया है और इसने ट्रेड यूनियनिज़्म का रूप धारण कर लिया है, परन्तु ट्रेड यूनियनिज़्म के सिद्धान्तों के तल में भी वास्तव में वही बात है, जो साम्यवाद में है। पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में डॉक्टर बेसेन्ट, मिस्टर मेकडॉनल्ड आदि कितने ही प्रसिद्ध व्यक्तियों ने जो फ़ेबियन सोसाइटी स्थापित की थी, उसका ध्येय भी आरम्भ में तो कृषक और मज़दूरों को उन्नत करना और साम्राज्यवाद का विरोध करना ही था, परन्तु शनैः-शनैः इस सोसाइटी के सदस्य और सञ्चालकों पर भी साम्राज्य की शान का असर पड़ने लगा और विश्वबन्धुत्व के सुन्दर सिद्धान्त शीघ्र ही भुलाए जाने लगे। ब्रिटिश मज़दूर-दल एक सीमा तक तो साम्यवादी है, पर साम्राज्य की हित-रक्षा के निमित्त वह साम्यवाद के सिद्धान्तों की चिन्ता भूल जाता है। फिर भी इस दल के सङ्गठन का आधार साम्यवाद ही है। इसके नियम और उद्देश्य उलट-फेर करके कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों से मिलते-जुलते हैं। यही कारण है कि मज़दूर-सरकार की नीति भारतवर्ष, मिश्र, ईराक़, पैलेस्टाइन और अफ़्रिका के प्रति इतनी बुरी नहीं है, जितनी उदार तथा अनुदार-दल की थी।

जर्मनी, पोलैण्ड, ऑस्ट्रिया और बालकन अन्तरीप के राष्ट्रों में साम्यवादियों का ज़ोर ख़ूब बढ़ता जाता है। जर्मनी में तो साम्यवादी और नाज़ी, ये ही दो प्रधान राजनैतिक दल हैं। शासन-सूत्र को ग्रहण करने के लिए इन दोनों में लगभग दो साल से पारस्परिक सङ्घर्ष है। साम्यवादी लोग व्यक्तिगत स्वत्व और अधिकार को प्रधानता देते हैं और नाज़ी लोग इटली के फ़ेसिस्ट की भाँति देश और जाति के अभ्युदय को। इन दोनों दलों में कई बार सशस्त्र मुठभेड़ हो चुकी है और नगरों में उपद्रव हो जाया करते हैं। पोलैण्ड और ऑस्ट्रिया रूस से मिले हुए हैं, इसलिए यहाँ के लोगों में साम्यवाद का प्रचार होना तो स्वाभाविक ही बात है। स्पेन की रिपब्लिकन (प्रजातन्त्रवादी) पार्टी साम्यवादी है। इसी ने एल्फ़ान्ज़ो को सिंहासन छुड़वा कर देश से भगाया है और इस समय यही दल राजरक्त को निःशेष करने पर तुला हुआ है।

संयुक्त अमेरिका में भी साम्यवाद शनैः-शनैः बढ़ता जाता है और वहाँ की सरकार इससे चिन्तित है। अभी कुछ मास हुए, अमेरिकन सरकार ने साम्यवादियों की संख्या, स्थिति, शक्ति, गति के विषय में रिपोर्ट करने के लिए एक कमीशन की रचना की थी। इसने रिपोर्ट की कि अमेरिका में लगभग ५,००० साम्यवादी रहते हैं, जो अत्यन्त सङ्गठित हैं और सम्पत्ति-वैषम्य का अन्त करके अमेरिकन सरकार को उलट देने का उद्योग कर रहे हैं।

इस वर्ष समस्त यूरोप और अमेरिका में गत १ मई को साम्यवादी-दिवस मनाया गया था। उस दिन साम्यवादियों के भारी जुलूस निकाले गए थे, साम्यवादी साहित्य का प्रचार किया गया था और इस विषय पर व्याख्यान दिए गए थे। रूस में यह उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया था। दो दिन तक सोवियट सेना का परेड हुआ और अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोदों का समस्त देश में प्रबन्ध किया गया। स्पेन की नवीन प्रजासत्तात्मक सरकार ने भी इस उत्सव के साथ सहानुभूति दिखाई और समस्त मन्त्रि-मण्डल उत्सव में सम्मिलित हुआ। वहाँ साम्यवादियों ने उनके सामने जो अपनी माँगें रक्खीं, उन पर ध्यान देने का प्रधान सचिव ने वचन दिया। इङ्गलैण्ड में भी इस उत्सव पर कोई बाधाएँ नहीं खड़ी की गईं और दिवस शान्तिपूर्वक मनाया गया। हङ्गरी की राजधानी बुदापेस्त में भी लगभग ८,००० साम्यवादियों का जुलूस शान्तिपूर्वक और निर्विघ्न निकाला गया। किन्तु अन्यत्र कई स्थानों में सरकार और साम्यवादियों में ख़ूब मुठभेड़ हुई। पुलिस ने जुलूसों को रोका, सभाएँ भङ्ग करने की चेष्टा की और साम्यवादी साहित्य के विक्रय तथा वितरण में नाना प्रकार की आपदाएँ खड़ी कीं। फलतः पेरिस, बारसिलोना, म्यूनिच, वारसा, हवाना, जोन्सबर्ग आदि नगरों में कितने ही साम्यवादी गिरफ़्तार किए गए, कितने ही गोली से घायल हुए और कितने मारे गए। साथ ही पुलिस भी कई जगह डण्डों से, पत्थरों से और ठोकरों से पीटी गई। अभी उस दिन की बात है कि स्टोकहोम में राजद्रोही साहित्य का वितरण करने वाले साम्यवादियों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं और कितनों ही को मार डाला।

उपरोक्त पंक्तियों से पाठकों को अनुमान हो गया होगा कि साम्यवाद की लहर समस्त संसार में किस वेग के साथ फैलती जाती है, उत्पीड़ित जनता किस प्रकार इसका अभिनन्दन कर रही है और सत्ता तथा लक्ष्मी के पात्र इससे कितने भयभीत हैं और इसको रोकने का कैसा दयनीय प्रयत्न करते हैं। यह रुकेगी या नहीं, इसका उत्तर देने की यहाँ आवश्यकता नहीं।

विनाश के पथ पर—

[श्री० कैलाशपति जी त्रिपाठी]

विस्मृति की सुन्दर गोदी को,
जब स्मृति ने अपनाया।
क्षुद्र जगत में सूनेपन ने,
अपना वैभव पाया।
कितना था उत्कर्ष ! प्रकृति ने,
क्या सबको ठुकराया ?
छोड़ न जाते भी बनता था,
कैसी थी वह माया !!

लग है चुकी क्षणिक सुख के—
जब बलिदानों की टोली।
राख लपेटे अङ्गारों की,
होगी कब तक होली ?
मेरी निर्बलता के बल पर
हर ने आँखें खोलीं।
भरें, कहाँ तक भर पावेंगे
निज प्रलयङ्कर झोली ?



समस्त [illegible] ग्रजुएट महिलाओं का ग्रुप—जो इस समय अमेरिका में शिक्षा पा रही हैं। इन महिलाओं में ३ भारतीय महिला भी हैं।



कुमारी शकुन्तला देवी

आप दातागञ्ज (बदायूँ) के मुख़्तार पं० मुकुटबिहारी-लाल सनाढ्य की कन्या हैं। आपकी उम्र अभी केवल बारह वर्ष की है, किन्तु इस साल आपने व्याकरण की मध्यमा की परीक्षा दी है।



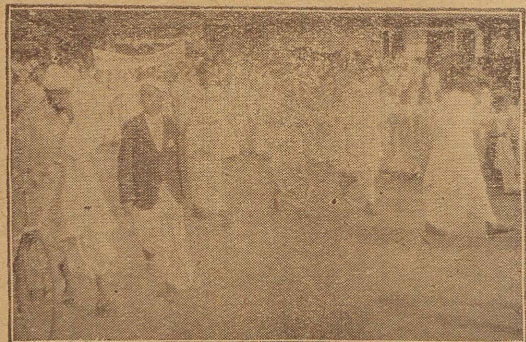
चि० निमाई

यह १९ महीने का सुन्दर शिशु इलाहाबाद के डॉ० पी० एल० चटर्जी का पौत्र है। इसे चर्ख़ा चलाने का बड़ा शौक़ है। बालक बड़ों की अपेक्षा स्वराज्य का सच्चा समर्थक प्रतीत होता है।



श्रीमती सावित्री देवी श्रीवास्तव

आप मसूरी कॉङ्ग्रेस कमिटी की प्रधाना हैं।



स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू के श्राद्ध के दिन रङ्गून (बर्मा) में निकलने वाले वृहत् जुलूस का एक भाग।



रायबरेली ज़िले के कॉङ्ग्रेस कार्य-कर्त्ताओं के सहभोज का दृश्य—यह सहभोज गत १६ मार्च को श्री० पित्रेय जी द्वारा ऊँचाहार ग्राम में दिया गया था। बीच में × चिन्हयुक्त खड़े, श्री० पित्रेय जी और बैठे हुए श्री० शीतलासहाय जी।



दक्षिण कनाडा में पट्टूर शाखा के 'वीमेन्स इण्डियन एसोसिएशन' द्वारा सञ्चालित हिन्दी क्लास की कुछ अध्यापिकाएँ तथा छात्राएँ। बैठी हुई महिलाओं में बाईं तरफ़ से तीसरी श्रीमती पी० सीतादेवी प्रधान हिन्दी अध्यापिका हैं। आपकी सेवाओं के उपलक्ष में छात्राओं ने आपको एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया था।



राजा ऋषिकेश लाहा, सी० आई० ई०

आप बङ्गाल नेशनल चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स के प्रेज़िडेण्ट चुने गए हैं।



श्री० जे० पी० श्रीवास्तव, एम० एल० सी०

आप राजा बहादुर कुशलपालसिंह के स्थान पर, संयुक्त प्रान्त की सरकार के शिक्षा-मन्त्री नियुक्त हुए हैं।



राष्ट्रीय महिला-मण्डल कराची—इन महिलाओं ने गत सत्याग्रह-संग्राम में अपूर्व कार्य किया है। बैठी हुई सभी महिलाएँ जेल-यात्रा कर चुकी हैं। नीचे बैठा हुआ दस वर्ष का एक बालक है, जो कोड़ों की मार खा चुका है।



डॉ० के० सी० बघेल

आप मध्य प्रान्तीय कॉङ्ग्रेस कमिटी के आठवें डिक्टेटर हैं, जिन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया है।



पं० रघुवंशरत्न गौड़

आप अलीगढ़ बार-कौन्सिल के डिक्टेटर थे, जो सरकारी सेना को भड़काने के अभियोग में गिरफ़्तार हुए थे और हाल ही में छूटे हैं।



श्री० हरिशङ्कर विद्यार्थी

आप स्वर्गवासी श्री० गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी के सब से बड़े पुत्र हैं।



श्री० ब्रजबिहारी मेहरोत्रा

आप पोखरायाँ (कानपुर) तहसील कॉङ्ग्रेस कमिटी के प्रधान हैं और ६ मास का कठिन कारागार भोग चुके हैं।



डॉ० श्रीमती सुखताङ्कर

आप बम्बई के म्युनिसिपल कॉरपोरेशन की सदस्या हैं।



श्रीमती माया दीक्षित

आप अमरावती की ख्यातनामा महिला हैं। गत आन्दोलन में आपने अपूर्व राष्ट्रीय कार्य किया है।



कुमारी जी० एम० डीसोज़ा; एल० आर० सी० पी० (लण्डन), एम० आर० सी० एस० (इङ्गलैण्ड)

आप मट्टानचेरी (कोचीन) के 'वीमेन एण्ड चिल्ड्रेन हॉस्पिटल' की सार्जन इञ्चार्ज हैं।

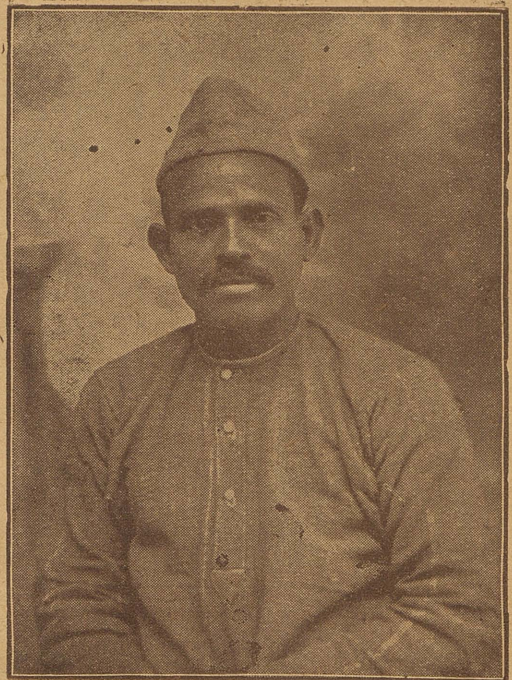


श्रीमती मारठा वो० सिंह

आप पटने के बादशाह नवाब रजवी प्रेक्टिसिङ्ग स्कूल की प्रधान शिक्षयित्री हैं।



(दाहिने) पं० रामचन्द्र शर्मा वैद्यराज और पं० हरिहर-
दत्त शर्मा, एम० ए०—दोनों ही सज्जन कनखल
(हरद्वार) के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता हैं।



श्री० पं० तुलाराम जी
आप आगरा वार-कौन्सिल के १७वें डिक्टेटर हैं और
तीन महीने की सज़ा काट चुके हैं।



यह चित्र उस समय का है, जब कि कराची में श्री० एफ़० के० नरीमेन आदि
बम्बई के प्रतिनिधि, बम्बई में एक जुलूस निकालने के लिए, सरदार किशन-
सिंह से स्वर्गीय सरदार भगतसिंह का भस्मावशेष ले रहे हैं। पुष्पाच्छा-
दित मञ्जूषे में सरदार के चित्र के साथ उनका भष्मावशेष है।



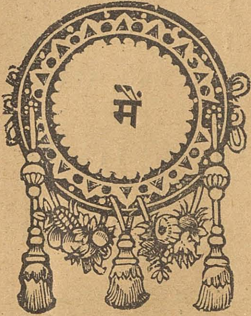
कलकत्ते के अन्ध-विद्या-
लय के प्रिन्सिपल—मि० ए० के०
शाह—आप अन्धों के सम्बन्ध
में होने वाले विश्व-सम्मेलन के
भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत
से अमेरिका गए हैं।



कैलिफ़ोर्निया (अमेरिका) का "हारमोसा बीच" नामक समुद्र-तट, जहाँ महिलाएँ सौन्दर्य-वृद्धि के उद्देश्य से एक विशेष प्रकार का स्नान करती हैं। शिक्षित एवं पालतू सूअर के बच्चों को पहिले बालू में दौड़ाया जाता है, जिसके पीछे उसकी स्वामिनी दौड़ती हैं और ख़ूब थक जाने के बाद समुद्र में कूद पड़ती हैं।

वेश्या का हृदय

[डॉ० धनीराम जी 'प्रेम', लन्दन]



एक पुजारी का पुत्र था। मेरे पिता पञ्जाब के एक छोटे से नगर के सबसे बड़े और प्रतिष्ठित मन्दिर के पुजारी थे। वह मन्दिर एक प्रकार से हमारे कुटुम्ब की गद्दी हो गई थी। पुश्तों से हमारे कुटुम्ब में से ही कोई न कोई उसका पुजारी हुआ था। मैं अपने पिता का एकमात्र पुत्र था। अतः यह स्वयं-सिद्ध बात थी कि पुजारी की गद्दी का उत्तराधिकारी, पिता जी की मृत्यु के बाद मैं ही बनूँ। यह पुश्तैनी अधिकार धार्मिक विचारों के कारण स्थिर न था, क्योंकि धर्म-पालन के अधिकार के लिए कितने कुटुम्ब या कितने व्यक्ति लड़ने-झगड़ने के लिए तैयार रहते हैं? उसका मुख्य कारण मन्दिर की आय और पुजारी के पद की प्रतिष्ठा का लोभ था। मन्दिर के निर्माता ने एक बड़ी ज़मींदारी मन्दिर के नाम लिख दी थी, अतः मन्दिर का पुजारी एक साधारण पुजारी नहीं, प्रत्युत एक ज़मींदार समझा जाता था। इन्हीं कारणों से पिता जी की यह महती आकांक्षा थी कि मैं उनका उत्तराधिकारी बनूँ। मन्दिर की ओर मेरा इतना झुकाव न था। मैं समझता था कि मैं उस व्यवसाय के लिए उत्पन्न नहीं हुआ था। परन्तु फिर भी मैं अपने पिता का पुत्र था। तब पुजारी होना ही पड़ेगा।

मेरी शिक्षा का पिता जी ने समुचित प्रबन्ध किया था, परन्तु वह प्रबन्ध केवल धार्मिक शिक्षा का था। बचपन से ही मुझे पूजा के मन्त्र और प्रार्थना के श्लोक रटवाए गए थे। मैं उनके अर्थ नहीं समझता था, परन्तु इसकी आवश्यकता नहीं थी। पिता जी कहा करते थे—यह मन्त्र तुम्हारे लिए नहीं हैं। यह परमात्मा के लिए हैं। और परमात्मा संस्कृत समझता है, तुम उसे समझो या न समझो।

मैं भी उसी प्रकार का पुजारी बनता, जैसे मेरे पिता थे। परन्तु एक घटना ने उस क्रम में परिवर्तन कर दिया। मेरे पिता के एक मित्र लाहौर के संस्कृत-महाविद्यालय में अध्यापक थे। वह नौकरी छोड़ कर हमारे नगर में ही आकर रहने लगे। उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। मेरे मुख से श्लोकों का उच्चारण सुन कर वह पिता जी से बोले—केशव को आप संस्कृत क्यों नहीं पढ़ाते?

"जितना उसने पढ़ा है, वह काफ़ी है।"

"काफ़ी है? परन्तु उसने पढ़ा ही क्या है?"

"पूजा के मन्त्र।"

"यह संस्कृत नहीं है। श्लोकों को रट लेना और उनका अशुद्ध उच्चारण करना एक पुजारी के लिए शोभा नहीं देता।"

"पुजारी का काम पूजा करना है, न कि संस्कृत का शुद्ध उच्चारण करना।"

पिता जी से सर मारना सरल बात न थी, परन्तु पण्डित जी ने किसी प्रकार पिता जी को मेरी शिक्षा के लिए राज़ी कर लिया। निश्चय यह हुआ था कि मैं पण्डित जी से संस्कृत पढ़ूँ और सारी पुस्तकें समाप्त करके छः मास के लिए लाहौर जाकर रहूँ।

२

लाहौर में मैं एक छोटे से मकान में एक कमरा लेकर रहने लगा। उस कमरे में हम दो थे, एक मेरे ही विद्यालय का विद्यार्थी मेरे ही साथ रहता था। मकान में दस कमरे थे, पीछे की ओर एक छोटा सा बाग़ था। एक सप्ताह तक हम लोगों का परिचय तक किसी पड़ोसी से न हुआ। बड़े नगरों की रीति ही यही है। अपने काम से काम, दूसरों की चिन्ता लोग बहुत कम करते हैं। फिर हम तो नवागन्तुक ही थे।

कुछ समय बीत जाने पर एक दिन मनोहर बोला—केशव, तुम यह जानते हो, पास वाले कमरे में कौन रहता है?

"नहीं।"—मैंने उत्तर दिया।

"कभी देखा है ?"

"नहीं।"

"रहे तुम गँवार ही। लाहौर में रहते हो और आँखें बन्द रखते हो।"

"मुझे पुजारी बनना है। पुजारी के लिए आँखें बन्द करके रहना ही ठीक है।"

"आओ, एक बार देख लो, फिर आँखें बन्द कर लेना, जी में आवे तो सदा के लिए।"

"ऐसी बात क्या है ? कोई स्त्री है ?"

"स्त्री नहीं है, लड़की।"

"विचित्र है ?"

"एक ही है।"

"तो मैं नहीं देखूँगा।"

"क्यों ?"

"तुम समझते हो, मनोहर।"

मनोहर ने कुछ नहीं कहा। हम दोनों शान्त थे। कुछ देर बाद मनोहर आप ही आप बड़बड़ाने लगा—"धर्म, धर्म, जब देखो तब धर्म। खाने में, पीने में, चलने में, बैठने में; धर्म ही धर्म। संस्कृत क्या पढ़ा, आफ़त हो गई। न कुछ देखो, न कुछ कहो, न कुछ सुनो!" वह बैठ गया। फिर उठ कर मेरे पास आया और बोला—"क्या संस्कृत पढ़ने का अर्थ संसार से विरक्ति है ?"

"नहीं।"—मैंने कहा।

"फिर ?"

"मेरा पद।"

"पुजारी ?"

"हाँ।"

"कितने पुजारी ऐसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं ? कितने मन्दिरों में केवल धर्म का ही राज्य है ? यह सब धोखे की टट्टी है।"

वह कुछ देर के लिए फिर शान्त हो गया। फिर वह उठा और पीछे का द्वार खोल कर चिल्ला उठा—यही तो है वह।

मेरी दृष्टि पीछे को फिरी। एक नवयुवती एक रेशमी साड़ी पहने पीछे बाग़ में खड़ी थी। मैंने कभी इतनी सुन्दरी बालिका नहीं देखी थी। अपने नगर में तो स्त्रियों का दर्शन होना ही कठिन था। मैं मनोहर से कहे हुए शब्दों को भूल गया था। धीरे-धीरे मैं द्वार तक पहुँच गया। मनोहर ने मेरी ओर देखा और हँस कर कहा—यहाँ किस लिए, पुजारी जी !

"कुछ नहीं, ज़रा स्वच्छ वायु लेने के लिए आ गया था।"—मैंने सिटपिटा कर कहा।

"लो, अब स्वच्छ वायु तो जा रही है।"—मनोहर ने कहा, क्योंकि वह सुन्दरी बाग़ से अपने कमरे की ओर चल दी थी।

"उस स्वच्छ वायु से मेरा अर्थ नहीं था।"—मैंने उसका भाव समझ कर कहा।

"मैं जानता हूँ, तुम मुझे न समझाओ।"—उसने व्यङ्गपूर्वक कहा।

कुछ देर तक फिर हम चुप रहे। मैं उसके विषय में सोच रहा था। मैंने पढ़ा था और सुना था कि पराई स्त्री का विचार करना पाप है, मैं स्वयं अपने मित्रों से यही कहा करता था। मनोहर से मैंने यही कहा था। परन्तु कहना सरल है, करना उतना सरल नहीं। मैं मनोहर से उसके विषय में कुछ पूछे बिना न रह सका।

"यह कौन है, मनोहर ?"

"स्वच्छ वायु।"—मनोहर ने कुछ देर मेरी ओर देख कर हँसते हुए कहा।

"मज़ाक़ न करो। मैं गम्भीरता से पूछ रहा हूँ।"

"यह पूछने की धुन क्यों सवार हो गई ? क्या पूजा करोगे ?"

"क्या पड़ोसी के विषय में पूछना भी पाप है ?"

"हाँ, यदि वह पड़ोसी एक सुन्दर स्त्री हो।"

"सुन्दरता पाप का चिन्ह नहीं है, न एक स्त्री ही पाप का चिन्ह है।"

"परन्तु यह है।"

"क्या ?"—मैंने आश्चर्य से पूछा।

"मैंने कहा, परन्तु यह है।"—मनोहर ने ठहर-ठहर कर कहा।

"इसका अर्थ ?"

"यह एक वेश्या है।"

"वेश्या ! तुम पागल हुए हो ?"—मैं ज़ोर से बोला। उसका मुख देखने से कोई न कह सकता था कि वह वेश्या थी।

"तुमने कोई वेश्या देखी है ?"—उसने पूछा।

"नहीं।"

"फिर क्यों आश्चर्य करते हो?"

"तुम्हें कैसे पता है कि यह वेश्या है?"

"दो-चार दिन तुम भी सब कुछ देखने का कष्ट करो तो तुम्हें भी पता चल जायगा।"

"वेश्या!" एक निःश्वास छोड़ कर स्वतः ही मैंने कहा, मानो कोई चीज़ पाकर मैंने खो दी हो।

"कुछ भी हो, लेकिन है अपूर्व सुन्दरी।"

"इस विषय में अधिक न कहो।"

"घृणा हो गई?"

"हाँ।"

"इसलिए कि वह वेश्या है?"

"जो कलङ्क की कालिमा मस्तक पर लगाए फिरती है, जो अपने सौन्दर्य का लालसा देकर निरपराध नवयुवकों को नष्ट कर रही है, उसका नाम लेना भी महापाप है। पता नहीं, इस मकान में किस प्रकार रहने की आज्ञा इसे मिल गई।"—मैंने उत्तेजित होकर कहा।

"शायद तुम भूल कर रहे हो, केशव! कौन कह सकता है कि इस कलङ्क-कालिमा, इस अपवित्र जीवन के पीछे एक दुखद कहानी, एक उज्ज्वल हृदय और एक दलित आत्मा न छिपी हो।"

"दलित आत्मा! उज्ज्वल हृदय! कलङ्क-कालिमा के पीछे? यह असम्भव है। वहाँ न आत्मा है और न हृदय!"

"यह तुम्हारा कहना असत्य है। उसी प्रकार, जिस प्रकार यह कहना कि प्रत्येक पुजारी, उपासक और उच्च-वर्ण पुरुष के जीवन के पीछे एक पावन हृदय और एक गौरवमयी आत्मा निहित होती है। परिस्थितियों की विचित्रता किसी की समझ में नहीं आ सकती। वे किसी के भी जीवन को रहस्यमय—भीतर कुछ और तथा बाहर कुछ और—बना सकती हैं। हम नित्य देखते हैं और सुनते हैं कि कितने ही लब्ध-प्रतिष्ठ पुरुष निम्नतम पतन को पहुँच गए। हम उनसे इतनी घृणा नहीं करते। हम उनसे सहानुभूति प्रकट करते हैं, उनकी सहायता करते हैं। केवल इसलिए कि वे पतन को प्राप्त होकर भी शक्तिशाली हैं—किसी के पास बल, किसी के पास धन और किसी के पास नाम है। परन्तु जब हम इन शक्तिहीन व्यक्तियों के पतन की ओर दृष्टि डालते हैं, तो हमारा मुख रक्त-वर्ण हो जाता है। हम उनकी ओर उसी प्रकार देखते हैं, जिस प्रकार वायुयान में चढ़ा हुआ एक धनिक एक कीचड़ में चलने वाले जीर्णकाय निर्धन की ओर देखता है—उपेक्षा से, घृणा से, सन्देह से। क्या कभी हम उस पतन के पीछे का दृश्य देखते हैं? कभी उन्हें समझने का उद्योग करते हैं? यह अन्याय है केशव! इस मनमाने धर्म का, इन मनगढ़न्त रूढ़ियों का और इस अहम्मन्य समाज का। मैं इनसे घृणा करना नहीं चाहता केशव, मैं इनका अध्ययन करना चाहता हूँ। मैं संस्कृत की उन मृत पुस्तकों से इन जीवित पुस्तकों का पाठ अधिक लाभदायक समझता हूँ। मैं इन चरित्रों को समझना चाहता हूँ, उन्हें घृणा से नहीं, प्रत्युत स्नेह और सहानुभूति से देखना चाहता हूँ। उन्हें यह बताना चाहता हूँ कि कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो उन्हें अब भी मनुष्य समझते हैं, न कि केवल नरक का कुचला हुआ कीड़ा या भोग-विलास की सामग्री।"

वह एक श्वास में यह सब कुछ कह गया। मैंने यह कभी कल्पना भी न की थी कि मनोहर के हृदय में ऐसे करुण विचार भरे होंगे। वह ठीक कह रहा था? मेरी आत्मा इसके उत्तर में 'हाँ' कह रही थी। मैंने मनोहर का हाथ पकड़ कर कहा—शायद तुम ठीक कहते हो, मनोहर! परन्तु तुम ऐसा करते क्यों नहीं?

"मुझमें इतना बल नहीं केशव, मैं उसके सामने ठहर नहीं सकता, उसके नेत्रों की ज्वाला मुझे कहीं और ही ले जायगी। परन्तु तुम ऐसा कर सकते हो। तुम्हें बचपन से धार्मिक शिक्षा मिली है। तुम्हारा मन इतना दृढ़ हो गया है कि तुम विचलित हुए बिना ऐसा कर सकते हो?"

क्या मैं ऐसा कर सकूँगा?

३

हमारे मकान के पास सड़क के दूसरी ओर एक मन्दिर था। मन्दिर में पूजा के लिए बड़े घरानों के पुरुष और स्त्रियाँ आया करती थीं। एक दिन दोपहर के समय कोई विशेष पूजा थी। सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्र पहन कर लोग मन्दिर को आए थे, मानो वहाँ कोई मेला था या भगवान की मूर्ति वस्त्राभरणों की नुमायश देखने वाली थी। मैं अपने नगर में, अपने मन्दिर में भी

इस प्रकार की प्रदर्शनियाँ देखा करता था, परन्तु वे इस प्रदर्शनी के आगे कुछ भी न थीं। पूजा समाप्त हुई। मैं और मनोहर अपनी खिड़की से सामने का दृश्य देख रहे थे; मैं पूजा देखने के लिए जाना चाहता था, परन्तु मनोहर के व्याख्यान ने ही मुझे रोक लिया था। मनोहर का प्रभाव मेरे ऊपर नित्य गहरा होता जाता था। मेरे हृदय में मन्दिर, पूजा और उनसे सम्बन्ध रखने वाली सारी बातों के प्रति जो विद्रोह की चिनगारी किसी प्रकार प्रकट हो गई थी, वह मनोहर की बातों से सुलगती जाती थी। वह संस्कृत का विद्यार्थी था, परन्तु फिर भी उसके विचार अङ्गरेज़ी पढ़े धर्म-विद्रोही के से थे। वह धर्म के सिद्धान्तों और शास्त्रों की मर्यादाओं से वास्तविक गुत्थियों को सुलझाना अच्छा समझता था। वह पापी को धिक्कारने से उसके पापी होने का कारण जानने और फिर उसे सहायता देने को अधिक पवित्र और श्रेयस्कर समझता था। मैं यदि उससे पूछता कि वह संस्कृत क्यों पढ़ रहा था, तो वह उत्तर देता—"मैं लकड़ियाँ आग जलाने के लिए एकत्रित कर रहा हूँ।" वह ठीक कहता था। वह जिन बातों को सीख रहा था, उन्हीं के बल से उनका खण्डन करता था।

कुछ देर तक मन्दिर से लोग निकल कर जाते रहे। पीछे से, जब सब चले गए, तो एक तिलक लगाए हुए धनिक ब्राह्मण निकल कर अपनी गाड़ी पर जा बैठे। एक छोटा सा बच्चा, मैले फटे हुए वस्त्र पहने, गाड़ी के सामने आकर पैसा माँगने लगा। पण्डित जी ने उसे पैसा तो न दिया, पर एक डाँट दे दी। लड़का हटा नहीं, हाथ फैलाए वहीं खड़ा रहा। गाड़ीवान को शायद यह असह्य था। उसने गाड़ी चला दी, बच्चा धक्का खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पण्डित जी ने पीछे फिर कर न देखा। वह तो मन्दिर में से पापों की क्षमा प्राप्त होने की सार्टीफ़िकेट ले आए थे। इतने व्यक्ति वहाँ खड़े थे, किसी ने बच्चे को उठाया नहीं। वह बेहोश था, परन्तु था एक भङ्गी। कोई उच्च वर्ण वाला उसे छूता कैसे? मनोहर ने उधर जाने का इरादा किया; परन्तु मैंने उसे रोक दिया। मुझे उन बातों पर लज्जा आती है, परन्तु उस समय तक मैं भङ्गी को एक रोग-सा समझता था। उसे अपने कमरे में क्योंकर लाने देता? उस कार्य से मेरे पुजारीपन की पावनता किस प्रकार अछूती रह जाती? यह करते हुए मैंने अपने हृदय में एक उथल-पुथल मचती हुई देखी, परन्तु फिर भी मनोहर को मैंने रोका। मनोहर कुछ न कह कर वहीं खड़ा रहा।

एक रास्तागीर ने बच्चे को देखा। मन्दिर का द्वार खुला हुआ था। वह बच्चे को लेकर उस ओर जाने लगा। अभी वह फाटक तक ही पहुँचा था कि एक लम्बी चोटी दौड़ी हुई आई और ज़ोर से चिल्लाने लगी—इधर कहाँ?

"यह बेहोश है। थोड़ा पानी।"

"यह मन्दिर है।" लम्बी चोटी दाँत निकाल कर बोली। उसके नेत्रों से घृणा की ज्वाला निकल रही थी।

"इसीलिए तो इसे मैं यहाँ लाना चाहता हूँ। भगवान के घर में...।"

"भगवान के घर के बाप, इस भङ्गी को मन्दिर में कैसे आने दें!"—लम्बी चोटी ने बात काट कर कहा।

"यह भङ्गी ही सही, परन्तु बेहोश है।"

लम्बी चोटी ने ध्यान न दिया और तेज़ी से फाटक बन्द करके बड़बड़ाती हुई भीतर चली गई।

पास ही दो मिनट पहले एक ताँगा आकर खड़ा हुआ था। रास्तागीर जब मन्दिर की ओर से फिरा तो उस ताँगे से एक स्त्री निकली। वह वेश्या थी। रास्तागीर की ओर देख कर उसने कहा—क्या बात है?

"किसी प्रकार यह बच्चा बेहोश हो गया है।"

"और यह भङ्गी है?"

"हाँ।"

"और इसीलिए इसे मन्दिर में स्थान नहीं मिला?"

"आजकल मन्दिरों में पापाचार, दुराचार, भ्रूण-हत्या आदि के लिए स्थान है, परन्तु दया, करुणा और दीनता के लिए स्थान नहीं।"

"अगर कष्ट न हो तो उसे मेरे कमरे में ले चलिए, मैं इसकी देख-रेख करूँगी।"

रास्तागीर ने धन्यवाद देकर बच्चे को वेश्या के कमरे में लिटा दिया। वह जब अपने कमरे में जाने लगी तो उसने एक बार हमारी ओर तीव्र दृष्टि डाल ही दी। मनोहर ने यह देखा। वह बोला—एक ओर पुजारी हैं और दूसरी ओर एक वेश्या है!

उसका कटाक्ष मेरी ओर था, परन्तु मैं चुप रहा।

मैं कह ही क्या सकता था। मनोहर फिर बोला—और इन वेश्याओं के लिए हम कहते हैं कि इनमें हृदय नहीं है, न आत्मा है। यह है हमारा अभिमान, हमारा दम्भ!

मुझसे न रहा गया। मैं मनोहर की ओर देख कर बोला—मनोहर, मुझे दुख है।

"तुम लोगों ने दुख करना भी सीखा है? तुम लोग अपनी उच्चता के अभिमान में इतने अन्धे हो कि तुम्हें अपने दोष और दूसरों के गुण दिखाई देते ही नहीं।"

मैं लज्जित होकर बोला—शायद भविष्य में मैं इतना अन्धा न रहूँ।

४

कुछ दिनों के अनन्तर हमारे सामने एक बड़ी समस्या आई। हम दोनों परीक्षा की तैयारी में रात को जगने के लिए चाय पिया करते थे। उस रात खाँड समाप्त हो गई। बाज़ार बन्द हो चुका था। चाय अवश्य पीनी थी और वह भी खाँड के साथ। पड़ोस के कमरों में अँधेरा था, सब सो गए थे। केवल उसके कमरे में प्रकाश था। मनोहर बोला—उसी से थोड़ी खाँड माँगनी चाहिए।

"जाओ, माँग लो।"

"तुम जाओ। तुमसे बातें करना आता है।"

डरते-डरते, धीरे-धीरे, इधर-उधर देख कर मैं उस ओर को चला। द्वार पर जाकर जिस समय मैंने खटका दिया, मेरा शरीर काँप रहा था, हृदय की गति बढ़ गई थी, श्वास ज़ोर से चल रहा था। द्वार खुला। वह निकली। मैंने उसकी ओर देखा, उसने मेरी ओर देखा। वास्तव में उसके नेत्रों में आकर्षण था। पहली बार ही मैं उसके नेत्रों की ओर देख रहा था। वह आश्चर्य से बोली—आप?

मैं कुछ घबरा कर, कुछ हँस कर बोला—हाँ! आपसे कुछ काम है।

"मेरे भाग्य!"

"थोड़ी सी खाँड चाहिए।"

"बस?"

"यह क्या कम है?"

वह भीतर गई और एक प्याला खाँड से भर कर ले आई। मैंने प्याले को देख कर कहा—यह तो बहुत है। कल तो बाज़ार से ले आवेंगे। दो चमचे काफ़ी होंगे।

"ले भी जाइए, शायद फिर कभी समाप्त हो जाय!"

"कल वापस भेज दूँगा।"

"वापस भेज देंगे या वापस कर देंगे?"

"देखिए!"

"लेकिन यह प्याला ख़ाली ही आवे।"

"ऐसा तो कभी नहीं होता।"

"मैं कोई चीज़ वापस नहीं लेती। कल या तो खाँड न लाइए या प्याला भी न लाइए।"

"अच्छा, खाँड नहीं लाऊँगा।"

वह वार्तालाप, पहली स्त्री से, पहली बार! उसने मेरे सारे शरीर में एक प्रकार की विद्युत उत्पन्न कर दी थी। मनोहर से मैंने इसके विषय में कुछ भी न कहा।

दूसरे दिन मैंने प्याले को पिस्तों से भरा और उसको रूमाल से ढाँक कर उसकी ओर ले गया। वह शायद प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देख कर बोली—आप प्रतिज्ञा भूल गए?

"क्यों?"

"यह प्याले में क्या छिपा है?"

"खाँड नहीं है।"

"यह क्या बदला है?"

"नहीं, केवल कृतज्ञता-प्रकाशन।"

"किस लिए?"

"कल की कृपा के लिए!"

"रूमाल कल भेजूँ तो ठीक होगा?"

"बिल्कुल।"

"चल दिए?" उसने पूछा, क्योंकि मैं पैर अपने कमरे की ओर को बढ़ाना चाहता था।

"पढ़ना है।"

"इस गर्मी में?"

"तुम भी तो भीतर ही रही आती हो।"

"बाहर बैठने के लिए कोई साथ नहीं।"

"मैं कुछ देर.........?"

"ख़ुशी से।"

उसने दो कुर्सी बाहर बाग़ में लाकर रख दीं। हम बैठे। कुछ देर शान्ति रही। फिर मैं बोला—तुम अकेली ही हो?

"नौकरानी है, वह कुछ दिनों को बाहर गई है।"

"हिन्दू हो ?"

"हाँ, हिन्दू थी, परन्तु अब कुछ नहीं हूँ।"

"क्यों ?"

"आप नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ?"

"जानता हूँ।"

"कि मैं वेश्या हूँ ?"

"हाँ।"

"और फिर भी आप मेरे पास आ सकते हैं ? मुझसे बातें कर सकते हैं—घृणा-भाव से नहीं, समानता के भाव से, सहृदयता के भाव से ?"

"क्या एक वेश्या के पास लोग नहीं आते ?"

"क्यों नहीं ! उसके पास समाज के सब प्रकार के सदस्य आते हैं, परन्तु उस भाव से नहीं, जिस भाव से आप आए हैं।"

"मैं तुम्हें समझना चाहता हूँ।"

"घृणा करने के लिए ?"

"कभी तुमसे घृणा करता था—शायद वह तुमसे नहीं, तुम्हारे नाम से ही। परन्तु उस दिन से, जब तुमने उस भङ्गी के बच्चे को शरण दी थी, तब से श्रद्धा ही हो गई है।"

"आप क्या करते हैं ?"

"मैं पुजारी का काम सीख रहा हूँ।"

"पुजारी ?"

"क्यों ?"

"कुछ नहीं, मैं यह सोच रही थी कि एक पुजारी और एक वेश्या की मित्रता कितनी विचित्र होगी।"

"तुम मुझे अपना मित्र समझती हो ?"

"कई सप्ताह से।"

"फिर बोली क्यों न थीं ?"

"वेश्या होने से।"

"परन्तु वेश्या तो दूसरों को फँसाने के लिए प्रसिद्ध हैं !"

"परन्तु उनके पास भी तो हृदय होता है।"

"है ?"—मैंने उसके हृदय की ओर उँगली करके कहा।

"मालूम तो होता है।"—उसने हँस कर कहा।

"तुम बड़ी हँसोड़ हो......!" कह कर मैं उसके नाम के लिए उसकी ओर देखने लगा।

"......गुलाब मेरा नाम है।"

"......गुलाब !"

"आप भी तो बहुत हँसोड़ हैं, पुजारी जी !"

"केशव मेरा नाम है।"

"क्या मैं आपको नाम लेकर पुकार सकती हूँ ?"

"क्यों नहीं ?"

"हिम्मत नहीं होती।"

"भय लगता है ?"

"हाँ, पहली बार—जीवन में।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आप पहले व्यक्ति हैं, जो पुनीत विचारों से मुझसे बातें कर रहे हैं। मेरा जीवन कलुषित है। कलुषित व्यक्तियों से मुझे भय नहीं लगता, परन्तु पवित्रता से मुझे भय लगता है।"

"क्या यह सदा कलुषित था ?"

"नहीं, कुछ दिनों पहले यह जीवन भी पवित्र था, परन्तु.........ओह ! उन बातों से क्या लाभ, और बात कीजिए।"

"क्या इसके पीछे कोई मर्मान्तक कहानी छिपी है, गुलाब ?"

"प्रत्येक वेश्या के जीवन के पीछे और विशेषकर हिन्दू वेश्याओं के जीवन के पीछे एक मर्मान्तक कहानी अवश्य छिपी रहती है। परन्तु उसकी कौन चिन्ता करता है ? एक बार हम मार्ग से गिरीं, लोग और नीचे को ही गिराते चलते हैं। जो हमारे गिराने के कारण होते हैं, वही हम पर हँसते हैं। जो हमारे घरों में हमारे जूते साफ़ करते हैं, वही जनता में हमारा दर्शन भी अपवित्र समझते हैं। लोग कहते हैं—'वेश्या रुपए की यार हैं। रुपया समाप्त हुआ और ठोकर मार दी।' परन्तु वे उन पुरुषों के लिए कभी यह नहीं कहते कि 'वेश्याओं के यहाँ जाने वाले रूप के यार हैं। जब रूप समाप्त हुआ तो ठोकर मार दी।' यह है वेश्याओं की कहानी। तुमने संसार नहीं देखा, केशव, तुम क्या समझोगे ?"

"समझूँगा, गुलाब ?"—मैंने एक निःश्वास छोड़ कर कहा।

"वेश्या के नाते से ?"

"एक प्राणी के नाते से, मित्र के नाते से।"

५

मैं गुलाब से इस बीच में कई बार मिला। वह अपने जीवन से प्रसन्न न थी। उसने बार-बार यह चाहा था कि वह उस व्यवसाय को छोड़ कर, एक कुलीन स्त्री का जीवन व्यतीत करे, परन्तु हिन्दू-समाज ने एक बार पतित हुए प्राणी का उद्धार करना तो सीखा ही नहीं है। जिनसे वह सहायता की आशा करती, वही उसका सर्वनाश करने के लिए तैयार थे। कुछ दिनों साथ-साथ बैठ कर बातचीत करने से हम दोनों में एक प्रकार की आत्मीयता पैदा हो गई थी। मैं उसे अपने व्यवसाय की बातें सुनाता, वह मुझे अपने व्यवसाय की। उसकी बातों में अधिक मनोरञ्जन तथा कौतूहल की सामग्री होती थी। वह जब उन सम्भ्रान्त नवयुवकों का हाल सुनाती, जो समाज में बड़ी श्रद्धा और बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे, परन्तु उसके यहाँ घण्टों केवल इसलिए व्यतीत करते कि वह एक बार उनकी ओर देख कर मुस्करा जाय, तो मुझे अपने आपसे ही ग्लानि होती थी।

मैं यह जानता था कि हम दोनों मित्रों की भाँति मिला करते थे, हमारे हृदयों में और किसी प्रकार का भाव न था। वह भी इस बात को जानती थी, परन्तु फिर भी हम एक-दूसरे को बहुत चाहते थे। उसे मेरे साथ में शान्ति प्राप्त होती थी, मुझे उसके साथ में सजीवता। भविष्य में इसका अन्त क्या होगा, इस पर मैंने कभी विचार न किया था। मैं इतना जानता था कि उसके लिए मेरे हृदय में एक विशेष स्थान हो गया था। उसे मैं प्रेम न कहूँगा। परन्तु यदि उसे कोई प्रेम कहे ही, तो वह प्रेम की आग न थी, केवल प्रेम की चिनगारी। परन्तु वह चिनगारी ही कभी-कभी सारे हृदय को आलोकित कर देती थी। रह-रह कर कभी मन में एक तरङ्ग उठती। मेरे नेत्र बन्द हो जाते और मैं उन बन्द नेत्रों के सामने एक अद्भुत सृष्टि को नाचता हुआ देखता। हृदय खिल उठता, मुख-आकृति दमक उठती और मुख उर्दू के उन गानों को, जो मैंने बचपन में सीखे थे, गाने लगता। वह गाना सुन कर बाग़ में निकल आती। मैं उसका शब्द सुन कर बाहर जाता तो वह चुपचाप, बिना मेरी ओर देखे हुए अपराधी की भाँति, अपने कमरे में भाग जाती।

"आप गाने बड़े अच्छे गाते हैं, पुजा......" वह एक दिन आकर कहने लगी। मैंने बीच ही में बात काट कर कहा—"केशव!"

"केशव!"—वह धीरे से हँस कर बोली।

"तुम्हें अच्छे लगते हैं?"

"बहुत ही।"

"तुम नहीं गाती हो?"

"यही एक मुझमें कमी है।"

"कभी गाने की कोशिश की है?"

"नहीं।"

"गला अच्छा नहीं है?"

"कोई सिखाने वाला नहीं है।"

मैं समझ गया। मैंने कुछ कहा नहीं। वह बोली—केशव ही मेरे मास्टर क्यों नहीं हो जाते?

"कब पाठ शुरू होगा?"

"जिस दिन कोई गाना लिखा हुआ मिल जाय।"

"परसों?"

"अच्छी बात है।"

कुछ देर बातें करके वह बोली—परसों तो बैसाखी है।

"हाँ।" मैंने याद करके कहा।

"घर तो नहीं जा रहे?"

"नहीं, यहीं रहूँगा। लाहौर की बैसाखी कभी देखी नहीं।"

मेरे यह कहने पर वह कुछ प्रसन्न हुई और फिर उसके मुख पर उदासीनता आ गई। मैंने उसके सर को ऊँचा करके कहा—गुलाब!

वह कुछ बोली नहीं, आँखें मेरी ओर को फिरा दीं।

"उदास क्यों हो?" मैंने उसकी आँखों की ओर देख कर पूछा।

"नहीं, उदास नहीं हूँ। मैं यह सोच रही थी कि मुझे बैसाखी का ख़याल कैसे आ गया।"

"बैसाखी मनाना तुम्हें अच्छा नहीं लगता?"

"हम लोगों की बैसाखी क्या?" उसने एक गहरी निःश्वास छोड़ कर कहा। मैं कुछ न बोला। वह करुण भावों से इस समय भरी हुई थी। मुझे डर था कि कहीं

उबल न पड़े। उसका हाथ थपथपा कर मैं धीरे से अपने कमरे को चला आया।

मैं उसकी इस लाचारी पर रात भर विचार करता रहा। अन्त में मैंने निश्चय किया कि उसे बैसाखी के अवसर पर यह कभी न सोचने दूँगा कि संसार में उसके साथ वास्तविक अपनापन दिखाने वाला कोई नहीं है। कुछ न कुछ प्रसन्नता की वह अधिकारिणी अवश्य थी। मैं अधिक नहीं करना चाहता था, क्योंकि उसका वह या और लोग कुछ और ही अर्थ लगा लेते। मैं उसके लिए एक बहुत बड़ा और सुगन्धमय गुलाब का फूल ले आया। मनोहर ने उसे देखा और कहा—यह किसके लिए है?

"कल देख लेना, किसके लिए है"—मैंने बात बनाते हुए उत्तर दिया। मैं उसका सामना नहीं करना चाहता था। कुछ भी हो, मेरे संस्कार तो पुराने ही थे, मैं भीतर ही भीतर अपने को अपराधी समझने लगा था।

"साफ़ क्यों नहीं कहते कि गुलाब के लिए है!" वह मेरे पास आकर बोला।

"यदि साफ़ सुनना चाहते हो तो हाँ, यह गुलाब के लिए है।"

"तुम जानते हो, तुम किधर जा रहे हो?"

"यह सब तुम्हारा दोष है, मनोहर।"

"मैं अब समझने लगा हूँ। परन्तु मेरा यह अर्थ नहीं था। तुम सीमा को उल्लङ्घन कर रहे हो। उसे बचाने गए थे, स्वयं डूब रहे हो।"

"यदि तुम ऐसा समझते हो तो समझो। मैं यहाँ तक पहुँच कर रुक नहीं सकता।"

"मैं रुकने के लिए नहीं कहता। केवल अपनी दिशा बदल दो।"

"तुम भय न करो, मनोहर! मैं कुछ भी अनुचित कार्य न करूँगा। तुम अपराधियों से सहानुभूति दिखाने की बातें करते रहे हो। गुलाब को समझने की तुम्हारे हृदय में तीव्र इच्छा है, परन्तु मुझे तुम नहीं समझना चाहते। मान लो कि मैं अपराधी ही हूँ, परन्तु तुम मुझे उसी प्रकार क्यों नहीं समझ सकते?"

"मैं तुम्हें समझता हूँ, इसीलिए ऐसा कह रहा हूँ, केशव! तुम एक पुजारी के पुत्र हो, पुजारी होने वाले हो। तुम्हारे विवाह की तिथि निश्चित हो चुकी है। शायद तुम उस दिशा से सरलतापूर्वक लौट सको। परन्तु गुलाब का क्या होगा? तुम उससे कभी भी विवाह करने को उद्यत न हो सकोगे!"

"नहीं।"—मैंने कुछ सोच कर कहा।

"फिर तुम समझ सकते हो कि उसके लिए इसका क्या अर्थ होगा। वह पहले से ही दुःखिनी है, इससे उसका सारा जीवन नष्ट हो जायगा। उसके टूटे हुए हृदय को जोड़ने के लिए कोई भी सामग्री न मिल सकेगी।"

"तुम ठीक कहते हो, मनोहर!" कह कर मैंने फूल एक ओर को पटक दिया और अपनी शय्या पर लेट गया। मनोहर चला गया। मैंने पीछे का द्वार बन्द कर दिया, ताकि बाग़ में आने पर गुलाब दिखाई न दे जाय। कुछ देर बाद ही पिछले द्वार पर धक्के का शब्द हुआ। मैं समझ गया। वह गुलाब होगी, यह जान कर मैं चुपचाप पड़ा रहा। कुछ देर बाद गुलाब का स्वर सुनाई दिया—"केशव!" उसने पुकारा।

उसका शब्द सुन कर मुझसे नहीं रहा गया। मैंने जाकर द्वार खोला। वह सामने खड़ी मुस्करा ही रही थी। मुझे देख कर—उदासी की दशा में—वह अपने मुख को भी उदास करके बोली—आज द्वार क्यों बन्द था?

"यों ही।"—मैंने धीरे से कहा।

"तबियत ख़राब है?" उसने चिन्ताजन्य विकलता से पूछा।

"नहीं, सो रहा था। तुम उदास न होओ। हँसो एक बार!"—कह कर मैं हँसने लगा।

"रात को इतना न जगा करो।"

वह यह कह रही थी और मेरी दृष्टि उसके हाथों पर पड़ी। वह हाथों में कोई वस्तु रेशमी रूमाल से ढँके हुए खड़ी थी।

"यह क्या है?"—मैंने पूछा।

"ओह, यह तो मैं भूल ही गई थी। आज बैसाखी है न?"

"हाँ।"

"आज मैंने अपने हाथ से कुछ खीर और कुछ कड़ाह (हलवा) बनाए हैं।"—कह कर उसने रूमाल बर्तन पर से उठा लिया।

"क्या तुम भी खाना बना लेती हो?"

कर्त्तव्य-पालन

नीचे है मरुभूमि भयावह, ऊपर है जलता आकाश,
फिर भी बद्ध किए है मन को, सुकर्त्तव्य का सुन्दर पाश !

— आ० प्र० श्री०



"आज कोशिश की है। कड़ाह अच्छा लगता है ?"

"बहुत अच्छा लगता है, और खीर भी।"

"यह तुम्हारे लिए लाई हूँ ?"

"मेरे लिए ?"

"हाँ, तुम्हारे लिए। अच्छे तो होंगे नहीं, परन्तु बैसाखी का प्रसाद समझ लेना। देखो न, बनाते हुए मेरी उँगलियाँ भी जल गईं।"—कह कर उसने अपने हाथ की उँगलियाँ मेरी ओर कर दीं। मैंने उँगलियों को अपने हाथ से पकड़ कर मुख से फूँक कर कहा—तुमने इतना कष्ट क्यों किया, गुलाब ?

"बस, बातें मत करो, सब चीज़ें ठण्डी हो जायँगी। इन्हें ले जाकर द्वार बन्द कर लो और खा डालो, फिर पूछना।"

मैं बड़े असमञ्जस में पड़ गया। मैंने कभी इस प्रकार के व्यक्तियों के हाथ की बनी हुई चीज़ें न खाई थीं। मैं उस कड़ाह को और उस खीर को किस प्रकार खाऊँगा ? और यदि न स्वीकार करूँ तो उसके हृदय को धक्का पहुँचेगा। मुझे असमञ्जस में पड़ा हुआ देख कर वह बोली—क्या बात है ? नहीं खाओगे ?

"यह बात नहीं है, परन्तु.........।" मैं इतना ही कह कर उसकी ओर देखने लगा। वह कुछ देर मेरी ओर और कुछ देर उस बर्तन की ओर देखती रही और फिर बोली—"अब मैं समझी। यह वेश्या का बनाया हुआ भोजन है।"

यह कह कर उसने बर्तन को रूमाल से ढँका और अपने कमरे की ओर जाने को मुख फेरा। मैं उसके हृदय को इतना व्यथित नहीं देख सकता था। मैंने पराजय स्वीकार की। मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"गुलाब, तुम्हारा विचार ठीक नहीं है। मैं तुमसे कुछ और कहना चाहता था। यदि तुम्हें विश्वास नहीं, तो तुम्हारे सामने ही कड़ाई में से एक ग्रास खाए लेता हूँ।" मैंने एक ग्रास कड़ाई में से उठा कर खा लिया। वह मुस्करा दी और बोली—"तुम तो मुझे व्यर्थ ही डरा देते हो।"

बर्तन उसके हाथ से लेकर मैंने भीतर रख दिया। और गुलाब के फूल को लेकर उसके पास आया।

"तुम्हारे लिए मैं एक बहुत ही छोटी, परन्तु बहुत ही प्यारी वस्तु लाया हूँ।"—मैंने फूल को उसे न दिखा कर कहा।

"क्या है ?"

"यह !"—कह कर मैंने फूल उसके हाथों में दे दिया।

"फूल !"—उसने प्रसन्न होकर कहा।

"गुलाब !"—मैंने हँस कर कहा।

"यह तुम क्यों लाए, केशव ?"

"तुम्हें यह दिखाने के लिए कि बैसाखी जिस प्रकार और स्त्रियों के लिए है, उसी प्रकार तुम्हारे लिए। मैं चाहता हूँ, गुलाब कि तुम इस बैसाखी के अवसर पर तो कम से कम यह समझो कि तुम्हें भी बैसाखी मनाने का अधिकार है।"

"तुम इसे ऐसा समझते हो न, केशव ! परन्तु तुम देवता हो। संसार तो इसे अनधिकार चेष्टा समझेगा।"

"संसार को भूल जाओ गुलाब, कम से कम एक दिन के लिए। केवल तीन शब्द याद रक्खो, तुम, मैं और बैसाखी।"

"तुम बड़े दयालु हो, केशव ! परन्तु मैं इस मान की अधिकारिणी भी नहीं हूँ।"

वह फूल को लेकर सूँघने लगी। मैंने विषय को बदल कर कहा—बताओ, इन दो गुलाबों में कौन अधिक सुन्दर है ?

"हम दोनों में तुलना नहीं हो सकती। यह गुलाब तुम्हारा दिया हुआ है, पवित्र है। मैं गुलाब वास्तविक गुलाब नहीं हूँ, उसकी छाया-मात्र हूँ, पतिता हूँ।"

वह चुप रही, मैं चुप रहा। कुछ देर बाद, एकाएक उसने मेरी ओर देखा और 'केशव !' कह कर मेरा हाथ पकड़ा। धीरे-धीरे वह मेरे हाथ को अपने होठों की ओर ले जाने लगी। परन्तु होठों तक उसे न ले जाकर ठहर गई, हाथ की ओर कुछ देर देखा और धीरे-धीरे उसे नीचे गिरा कर वह विह्वल होकर बोली—क्षमा करना !

"किसलिए ?"

"मैं पागल हो गई थी।"

"यह तुम्हारा दोष नहीं है, गुलाब !"

"एक बात मैं पूछना चाहती हूँ।"

"क्या ?"

"मैं तुम्हें इतना क्यों चाहती हूँ ?"

"तुम्हारे पास इसका उत्तर नहीं है ?"

"नहीं ! कई बार मैंने अपने हृदय से पूछा है कि तुम्हीं को मैं इतना क्यों चाहती हूँ, परन्तु कोई उत्तर

नहीं मिला। मैंने सभी प्रकार के मनुष्य देखे हैं; धनिक, रूपवान, बलवान, परन्तु कभी मेरा हृदय उनके लिए व्याकुल नहीं हुआ। इस बार बात कुछ और ही है। शायद ऐसी भावना प्रत्येक स्त्री के हृदय में होती है—पवित्र प्रेम की पुकार; फिर चाहे वह कुलीन स्त्री हो, चाहे वेश्या। अन्तर केवल इतना ही है कि वेश्या के लिए यह अधिक दुखदाई है, क्योंकि उसके लिए पवित्र प्रेम का द्वार बन्द है। लोग उसको भी वेश्या-चरित्र समझ लेते हैं। केशव, तुम तो ऐसा नहीं समझते ?"

"नहीं, गुलाब ! मैं तुम्हारे हृदय को समझता हूँ। क्योंकि........"

"तुम भी ?"

"हाँ।"

"ओह, इसका अन्त क्या होगा ?"

"शायद, वियोग।"

"वियोग ?"

"मैं इस स्थान को छोड़ दूँगा।"

"मेरे कारण ?"

"नहीं, अपने कारण। मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। न मुझमें इतना नैतिक बल है कि साहसपूर्वक अन्त तक इसी प्रकार चला चलूँ। मैं चाहता था तुम्हें बचाना, तुम्हारी रक्षा करना; परन्तु अब मुझे विदित हुआ कि हम कितने असमर्थ हैं।"

"तुम्हारा कहना ठीक है। जब तक हम केवल मित्र थे, तब तक बात कुछ और थी। अब हमारा साथ रहना ठीक नहीं है—विशेषकर तुम्हारे लिए। परन्तु तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं ही इस मकान को छोड़ दूँगी।"

"मेरे लिए इतना त्याग ?"

"यह कुछ नहीं है, यदि मैं अपना जीवन भी तुम्हारे लिए दे सकूँ तो मैं तैयार रहूँगी।"

वह उठने लगी। उठते-उठते कहा—भूल जाना।

वह वहाँ से चली जायगी, सदा के लिए, मेरे कारण ! नहीं, मैं इतना अत्याचार न करूँगा। मैंने उसे रोक कर कहा—गुलाब, तुम इस मकान को नहीं छोड़ रही हो !

"शिथिलता न दिखाओ।"

"मुझे लाहौर थोड़े ही दिन रहना है। हम उसी प्रकार मित्र की भाँति उन दिनों को व्यतीत कर सकते हैं, यदि तुम यह स्वीकार करो कि हम दिन में एक बार से अधिक न मिला करेंगे।"

"स्वीकार है !"

६

हम दोनों अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर न रह सके। यह बड़ी कठिन बात थी। मैं यह समझ गया था कि उसके बिना जीवन मुझे कितना नीरस प्रतीत होता था। वह भी यह जानती थी कि वह मेरे बिना नहीं रह सकती थी। हम दोनों नित्य मिलते थे, पहले से भी अधिक। घण्टों बातें करते। उसके जीवन पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा था। वह अपना व्यवसाय छोड़ चुकी थी। उसकी रहन-सहन साधारण हो गई थी। वह यह समझती थी कि मुझे पाना उसके लिए असम्भव था, फिर भी वह प्रायश्चित्त कर रही थी, उन पापों के लिए, जिनका कारण कोई और ही था। केवल इसलिए कि वह प्रायश्चित्त यदि और कुछ न करेगा तो उसे मेरी मित्रता के योग्य बना देगा।

कुछ दिनों बाद, जिस घटना का मुझे डर था, वह घट ही गई। मनोहर की परीक्षा शीघ्र समाप्त हो गई थी, वह लाहौर छोड़ कर चला गया था। शायद उसके द्वारा, शायद किसी और स्रोत से, मेरे पिता को गुलाब और मेरे विषय में कुछ पता चल गया था। इसी कारण उन्होंने मेरे पास एक पत्र लिख भेजा :—

"प्रिय केशव,

कुछ घटनाएँ यहाँ ऐसी हो गई हैं कि तुम्हारा यहाँ शीघ्र ही आना आवश्यक है। तुम परीक्षा की चिन्ता न करो, वह उतनी आवश्यक नहीं है। रुग्ण रहने के कारण मेरा शरीर काम नहीं देता और मुझसे मन्दिर का कार्य नहीं सम्हाला जाता। तुम्हें दो दिन बाद ही पुजारी की गद्दी पर बिठाने का निश्चय हो गया है। साथ ही तुम्हारे विवाह की तिथि भी बदल कर इसी मास में कर दी गई है। अतः तुम इस पत्र के मिलते ही लाहौर से चल दो।"

पत्र को पढ़ कर मेरे सामने एक बड़ी भारी समस्या उपस्थित हो गई। एक ओर कर्तव्य था और दूसरी ओर था प्रेम। यह प्रेम भी एक साधारण प्रेम न था, इसमें कर्तव्य का भी सम्मिश्रण था। गुलाब ने मेरे लिए

बहुत-कुछ किया था। वह अब कुछ महीनों पहले की गुलाब न रही थी। उसने मानो एक नया जीवन पा लिया था। मैं अपने हृदय में प्रतिज्ञा कर चुका था कि अन्त तक उसका साथ दूँगा। पत्र पढ़ कर मैंने अपने इस निश्चय को और भी दृढ़ बना लिया।

इस विषय में गुलाब से मैंने पहले कुछ भी भेद न बताया था। अब यह आवश्यक था, अतः मैं गुलाब के पास पहुँचा।

"घर से पत्र आया है, गुलाब !"—मैंने कहा।

"बुलाते हैं ?"

"हाँ।"

"पूजा के लिए ?"

"हाँ, और......"

"और ?"

"तुम समझ सकती हो !"

"विवाह ?"

"हाँ !"

"जा रहे हो ?"

"नहीं।"

"नहीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"यह क्यों पूछती हो, गुलाब ? तुम जानती हो।"

"मेरे लिए ? एक वेश्या के लिए ?"

"वेश्या के लिए नहीं, गुलाब के लिए; उस गुलाब के लिए, जो मुझे संसार में प्राणों से प्यारी है !"

"केशव ! मेरी ओर देखो।"

मैंने देखा।

"तुम जानते हो, तुम क्या कह रहे हो ?"

"मैं वही कह रहा हूँ, जो मुझे कहना चाहिए।"

"यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। तुम्हारा कर्तव्य है, पिता की आज्ञा का पालन करना।"

"तुम्हें छोड़ कर ? फिर उसी गर्त में गिराने के लिए ?"

"मेरी चिन्ता न करो, केशव ! मैं क्या हूँ ?"

"सर्वस्व, मेरे लिए।"

"फिर क्या करोगे ?"

"कहीं तुम्हारे साथ जाकर रहूँगा, जहाँ नया जीवन प्रारम्भ कर सकूँ।"

"और यदि मैं साथ न जाऊँ ?"

"तुम ऐसा नहीं कर सकतीं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कौन सा स्थान है। तुम मेरे साथ अवश्य जाओगी। मेरी प्रसन्नता के लिए, अपनी प्रसन्नता के लिए। यदि यह बात कुछ सप्ताह पूर्व होती तो कुछ नहीं था। परन्तु अब हम बहुत दूर जा पहुँचे हैं। वहाँ से अब लौटना असम्भव है। हमारा कर्तव्य यही है कि अन्त तक चले चलें।"

"दृढ़ निश्चय है ?"

"हाँ !"

"यदि मैं साथ न जाऊँ तो घर जाओगे ?"

"न घर जाऊँगा, न तुम्हें छोड़ूँगा।"

वह कुछ देर चुप रही, फिर बोली—अच्छा, कल प्रातःकाल हम लोग यहाँ से चल रहे हैं।

"चलो, तुम्हारा सामान बँधवा दूँ।"—मैंने प्रसन्न होकर कहा।

"नहीं, तुम अपना सामान ठीक करके सोओ। मैं अपना सामान बाँध लूँगी।"—वह बोली।

"प्रातःकाल मैं स्वयं तुम्हें जगाऊँगा।"

"रात को नींद भर सोना, नहीं तबीयत ख़राब हो जायगी।"

"सो तो न सकूँगा, हाँ स्वप्न अवश्य देखूँगा। यह जीवन के प्रथम भाग की अन्तिम रात्रि है।"

"हाँ, यह अन्तिम रात्रि है !"—उसने आह भर कर कहा।

"परन्तु कल हमारे लिए एक नवीन प्रातःकाल होगा। नवीन जीवन, नवीन सूर्य, नवीन केशव, नवीन गुलाब। पुरानी रात्रि के अन्धकार के बाद वह नूतन दिवस का प्रकाश कितना उज्ज्वल, कितना शुभ्र, कितना पवित्र होगा ?"

"कौन कह सकता है, रात्रि के अन्धकार के बाद दिन निकले ही न।"—उसने उदासी से कहा।

"इसकी चिन्ता न करो। इस अन्तिम रात्रि की कुछ मिनटें तो कम से कम हम साथ-साथ हँसते हुए व्यतीत कर लें !"

वह मेरे पास आ गई और अपने शिर को मेरे वक्षस्थल पर रख कर बोली—केशव, तुम्हें विश्वास है कि मैं तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ?

"क्यों पूछती हो यह गुलाब?"

"तुम्हारे मुख से एक बार सुनना चाहती हूँ।"

"मुझे पूर्ण विश्वास है!"

"तो आज, प्रथम बार, मुझे पूरी भावुकता के साथ प्यार कर लो।"—उसने आर्त होकर कहा और मेरे गले से लिपट गई।

* * *

रात्रि समाप्त हुई, प्रातःकाल आया। मैं उठ कर सब से पहिले गुलाब के कमरे की ओर दौड़ा गया। मेरे आश्चर्य का कुछ ठिकाना न था, जब कि मैंने उसके द्वार को कुछ खुला हुआ पाया। काँपते हुए हाथों से मैंने द्वार खोला। कमरा ख़ाली था। गुलाब वहाँ न थी, न उसका सामान था। एक ओर केवल एक लिफ़ाफ़ा पड़ा हुआ था। मैंने लिफ़ाफ़ा खोला। उसमें मेरे लिए एक पत्र रक्खा हुआ था। मैंने आँसू बहाती हुई आँखों से उस पत्र को पढ़ा—

"केशव,

मैंने रात को कहा था—'रात्रि के अन्धकार के बाद दिन निकले ही न।' उस समय मैं जानती थी कि मेरे लिए जीवन अब एक बड़ी रात्रि हो जायगा, जिसमें प्रातःकाल के आने की कोई आशा नहीं। तुम्हें स्वयं इसका अर्थ न समझा सकी थी। समझाने का साहस ही न हुआ था, इसी कारण यह पत्र लिख रही हूँ।

मैं जा रही हूँ, सदा के लिए। तुमसे अब इस जीवन में कभी मिलाप न होगा, न तुम मेरे विषय में कोई समाचार ही सुनोगे। यह बताने के लिए कि मैंने यह क्यों किया, मैं तुम्हें रात की बातों की याद दिलाना चाहती हूँ, जब तुमने कहा था कि तुम मेरे प्रेम में विश्वास करते हो। क्योंकि मैंने जो कुछ भी किया है, वह तुम्हारे लिए और तुम्हारे प्रेम के लिए किया है। मैं तुम्हें जितना प्यार करती हूँ, शायद ही उससे अधिक कोई स्त्री किसी पुरुष को कर सके। और मैं यह जान कर भी अपने को बड़ी भाग्यशालिनी समझती हूँ कि तुम भी मुझे प्यार करते हो। यदि परिस्थिति कुछ और होती, तो हम दोनों मिल कर सुखी जीवन व्यतीत करते, परन्तु मैं तुम्हें पाकर भी खो रही हूँ। इस विचार से मेरा सारा हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है, मेरी आत्मा रक्त के आँसू रो रही है। परन्तु फिर भी मुझे यह करना पड़ा। तुम्हें पतन से बचाने के लिए, तुम्हारी रक्षा करने के लिए और कोई उपाय ही न था। यदि मैं तुमसे यही बातें कहती, तो तुम्हारा हृदय विदीर्ण हो जाता, जो मैं सहन न कर सकती।

तुम्हारे घर वालों के पत्र की शङ्का मुझे बहुत समय से थी और तुमसे इतना प्रेम होते हुए भी मैं अपना कर्तव्य निश्चित कर चुकी थी। बात इतनी कठिन न होती, यदि तुम दृढ़ रहे आते। परन्तु तुम मेरे पीछे सब कुछ ठुकराने के लिए तैयार हो। तुम मेरे लिए अपना कर्तव्य भी भूल गए। मैं यह सब कुछ सहन न कर सकती थी। तुम एक ब्राह्मण के पुत्र हो, समाज में तुम्हारा मान और स्थान है, तुम्हें पुजारी का पद लेना है। मैं एक वेश्या हूँ, कलङ्क की कालिमा मेरे मस्तक पर एक बार लग चुकी है। समाज में मेरे लिए कोई स्थान नहीं है। हम दोनों के मार्ग बिलकुल भिन्न हैं। परमात्मा ने हमको एक-दूसरे के लिए बनाया ही न था। तुम्हारा स्थान मन्दिर में है, न कि एक वेश्या के साथ। ऐसी दशा में मैं तुम्हें कर्तव्य और प्रतिष्ठा से गिराने का कारण नहीं बन सकती। हम दोनों के एक साथ रहने का अर्थ है तुम्हारे लिए एक महान त्याग। यह तुम्हारा साहस है कि तुम उस त्याग के लिए तैयार हो गए। परन्तु मैं इस योग्य नहीं हूँ, कि तुमसे इतना बड़ा त्याग कराऊँ। इसीलिए मैं ऐसे स्थान पर जा रही हूँ, जहाँ तुम मुझे कभी न प्राप्त कर सको। मेरा जीवन तो पतित हो ही गया, तुम्हारा जीवन भी क्यों पतित हो!

मुझे भूल जाना। हँसी-ख़ुशी घर जाना, विवाह करना और मन्दिर में जो अपना कर्तव्य है, उसे निभाना। मैं जानती हूँ कि इससे तुम्हारे हृदय पर भारी आघात पहुँचेगा, परन्तु तुम पुरुष हो, इस दुर्बलता पर विजय प्राप्त करने का उद्योग करना। याद रक्खो, संसार में मनुष्य को अपने जीवन के अतिरिक्त दूसरों का भी ध्यान रखना पड़ता है और कभी-कभी स्वयं दुख उठा कर भी कोई कार्य केवल वाह्य जगत के लिए करना पड़ता है।

मेरी ओर से तुम चिन्तित न होना। मैंने जो प्रायश्चित्त का जीवन अपनाया है, उसे निभाऊँगी, जब तक कि मेरा नाम इस योग्य न हो जाय कि तुम उसे बिना सङ्कोच के याद कर सको। लिखना नहीं चाहती थी, फिर भी हृदय यह लिखने के लिए विवश कर रहा है कि मैं...तुम्हें...जन्म-भर...इसी प्रकार...प्रेम करती रहूँगी। मेरे आँसू बहने लगे हैं, अधिक लिखा नहीं जाता। केवल इतना याद रखना कि यह केवल काग़ज़ का टुकड़ा नहीं, बल्कि एक वेश्या का हृदय है, जिसे मैं तुम्हारे लिए छोड़े जा रही हूँ। शायद कभी गुलाब की तुम्हें याद आ जाया करे।

बस, विदा, केशव—प्यारे केशव!

तुम्हारी कोई—
पतिता गुलाब"

* * *

अब मैं दो चीज़ों का पुजारी हूँ। मन्दिर में भगवान की मूर्ति की पूजा करता हूँ, घर पर गुलाब के उस अन्तिम पत्र की। मन्दिर की पूजा से मुझे उतना सन्तोष नहीं होता, जितना पत्र की पूजा से। क्योंकि मन्दिर की मूर्ति में मुझे अभी तक हृदय का पता नहीं लगा, परन्तु उस पत्र में छिपा हुआ है—वेश्या का हृदय!

मुरझाया फूल!

[श्रीमती गायत्री देवी "बिन्दु"]

कहाँ गई तव मन-मोहकता
ऐ बन-बन के प्राण सुमन,
कहाँ गए वह दिन जब तुमसे
हरा-भरा था बन-उपवन।

कहाँ गया वह रूप मनोहर—
कहाँ गन्ध कहँ हरियाली,
कहाँ गई वह छटा कि जिस पर,
था बलि-बलि जाता माली!

कहाँ गया वह रूप कि जिस पर
तुम प्यारे बल खाते थे,
जिस पर गर्वित हो मन में
इतराते थे, इठलाते थे!

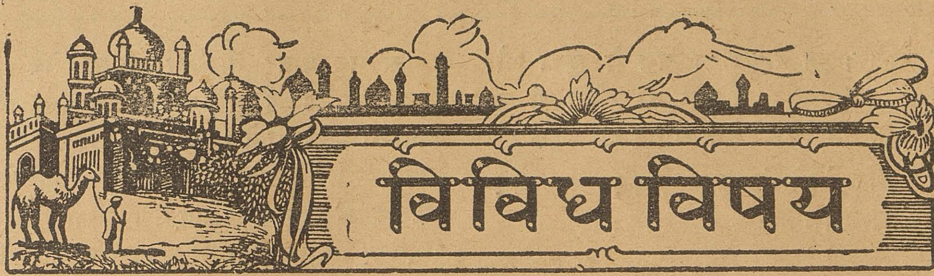
कहाँ गया वह मधुरस जिस पर
भ्रमर-भीर ललचाती थी,
कहाँ मृदुलता जिसे निरख कर
सुर-सुन्दरी सिहाती थी!

योगीजन जो मन को वश कर
ध्यान अखण्ड लगाते हैं,
तृष्णा, माया, मोह, वासना
मन से दूर भगाते हैं!

उनका मन भी तेरी शोभा
लख कर विचलित होता था,
उनका मन भी तुझे देख कर
धैर्य हृदय का खोता था!

वह भी तुझे देख कर बारम्बार
मुदित हो जाते थे,
प्रेम-विवश हो तुझे तोड़ कर
सादर हृदय लगाते थे!

कहाँ गया वह रूप मनोहर
कहाँ गुलाबी पङ्खड़ियाँ,
जिन्हें देखते खड़े-खड़े हमको—
लग जाती थीं घड़ियाँ!!



परदे की समस्या

फ़र्ज़ औरत पर नहीं है चारदीवारी की क़ैद,
हो अगर ज़ब्ते नज़र की और ख़ुद्दारी की क़ैद।
—महाकवि अकबर

आजकल इस सामाजिक उन्नति के युग में परदे को लेकर बड़ा हो-हल्ला हो रहा है। कुछ इसे प्राचीन सिद्ध करने पर तुले हुए हैं और कुछ इसे नई एवम् मुसलमानों के समय की प्रथा बतलाते हैं। परन्तु चाहे कुछ भी सत्य क्यों न हो, पुराने विचार वाले इसे नवयुवकों की उच्छृङ्खलता और अनुकरण-प्रियता बतलाते हैं। अस्तु, हम पहले इसी की विवेचना करना चाहते हैं कि वे दरअसल क्या हैं।

उन लोगों को जब कोई पुष्ट प्रमाण इस विषय को प्राचीन सिद्ध करने को नहीं मिलता, तो वे वाल्मीकीय रामायण के कुछ श्लोकों के अर्थ का अनर्थ करके अपने पक्ष को पुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

इसके लिए सब से पहले जो श्लोक वे उपस्थित करते हैं, वह उस समय का है, जब कि ऋष्यमूक पर्वत पर श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी को सीता जी के कुछ आभूषण दिखा कर उनसे पूछा था कि क्या ये सीता के हैं, तो लक्ष्मण जी ने उत्तर दिया कि :—

नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले;
नूपुरे त्वभि जानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्।

अर्थात्—"न तो मैं भुजबन्द को पहचानता हूँ और न कुण्डल को। मैं तो केवल नूपुर को पहचानता हूँ, जिन्हें उनकी पद-वन्दना करते समय देखता था।"

अब देखिए, इसमें परदे का कहीं ज़िक्र भी नहीं है, यदि लक्ष्मण जी उपर्युक्त आभूषणों को नहीं पहिचान सके, तो इसका यह तात्पर्य नहीं, कि परदे के कारण नहीं पहचान सके। क्योंकि अगर यह परदे के कारण होता तो पाद-वन्दना किस प्रकार करते। इसका स्पष्ट कारण तो यह है कि रामायण-काल में स्त्री के स्त्रीत्व का आजकल के समान नक़ली सम्मान न था। प्रत्युत उस समय सच्चे मातृत्व का आदर था। और जहाँ मातृत्व सरीखी उच्च भावनाएँ हृदय में हों, वहाँ तो दृष्टि स्वयं ही नीची रहती है।

अब दूसरा प्रमाण देखिए। रावण के मारे जाने पर उसकी सारी स्त्रियाँ उसके शव पर युद्ध-भूमि में विलाप करती हैं, और मन्दोदरी उस शव को सम्बोधन करके कहती है :—

दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो, मामिहानवगुण्ठताम्;
निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो।
पश्येष्टदार दारास्ते, भ्रष्टलज्जावगुण्ठतान्;
बहिर्निष्पतितान्सर्वान्कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि।
—वा० रा० लं०

अर्थात्—"हे स्वामी! मैं अवगुण्ठन के बिना नगर के दरवाज़ों को लाँघ कर पैदल यहाँ आई हूँ। तुम इसके लिए मुझसे नाराज़ क्यों नहीं होते! देखो, मैं अकेली ही नहीं हूँ, वरन् तुम्हारी सब प्यारी स्त्रियाँ लज्जा छोड़ कर अवगुण्ठन के बिना बाहर निकल आई हैं, इनको देख कर तुम क्रोध क्यों नहीं करते?"

अब देखिए, इसमें परदे का कोई ज़िक्र नहीं है। इसमें तो साफ़ यह मालूम हो रहा है कि जब रावण की सब रानियाँ शोक-मग्न हो रही थीं तो कहती थीं कि 'हम शहर के बाहर पैदल चली आईं' और 'लज्जा से भ्रष्ट होकर' अर्थात् हमारे कपड़े अस्त-व्यस्त हो गए हैं। तात्पर्य यह कि जब हम तुम जैसे पराक्रमी राजा की स्त्रियाँ होकर यहाँ युद्ध-भूमि में इस तरह राज-सम्मान-हीन होकर आ गई हैं, तो भी तुम नाराज़ क्यों नहीं होते?

और देखिए; जब रावण का वध हो चुका और विभीषण को राज-तिलक हो गया, तो सीता जी को लेकर वे श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में गए।

आरोप्य शिविकां दीप्तां, परार्घ्याम्बर संवृताम्,
रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः।

—वा० रा० ल०

अर्थात्—"विभीषण सीता जी को एक सुन्दर और कपड़ों से सजी हुई पालकी में आसीन करा कर राज-सम्मान तथा पहरे आदि सहित श्रीरामचन्द्र जी के पास ले गए।"

अब इसके विरुद्ध सर्व-प्रथम वाल्मीकीय रामायण के प्रमाण लीजिए।

पति सम्मानिता सीता, भर्तारमसितेक्षणा;
आद्वार मनु वव्राज, मङ्गलान्याभिदध्युषी।

—वा० रा० बा०

अर्थात्—"जब रामचन्द्र जी सुमन्त सहित, दशरथ जी के पास जाने को चले, तो सीता जी दोनों को पहुँ-चाने को दरवाज़े तक गईं।"

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने;
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया।

—वा० रा० ल०

रावण के मारे जाने पर मन्दोदरी विलाप करती हुई कहती है कि—"हे रावण, मैं आपके साथ कैलाश, मन्दराचल, मेरु, चैत्ररथवन, और भी देवताओं के उद्यानों में घूमा करती थी।"

इसी तरह जब विभीषण वानर आदि सेनाओं को सीता जी के लाने के लिए हटाने लगा तो रामचन्द्र जी कहते हैं—

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः।

—वा० रा० ल०

अर्थात्—"स्त्रियों के लिए न तो घर, न कपड़ों का घूँघट, न चहारदीवारी, न चिक और इस प्रकार का राज-सत्कार भी आड़ करने वाला नहीं है।"

देखा, परदे का किन स्पष्ट शब्दों में बहिष्कार किया गया है।

सीता-स्वयम्बर में सीता जी का सब राजाओं के सामने उपस्थित होना। जब रावण सीता जी को हर लाया तो मन्दोदरी ने रावण को समझाया और उसके न मानने पर उसने सभा में जाकर रावण को सचेत किया। मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री सुलोचना श्री० रामचन्द्र जी की सेना में अपने पति का शीश माँगने गई। राम-राज्यारोहण के समय सीता जी सिंहासन पर श्री० रामचन्द्र जी के साथ वाम भाग में खुले मुँह आसीन हुईं। यज्ञ के अन्त में जब सीता जी ने माता पृथ्वी की आराधना की, तो पृथ्वी सब उपस्थित जनवृन्द के सामने सीता जी को लेकर अन्तर्धान हो गईं।

ये तो हुए परदे के विषय में रामायण के प्रमाण। अब वेदों का अवलोकन कीजिए।

सुमङ्गलीरियं वधुरिमा पश्यत सौभाग्य
मस्यैदत्वा याथास्तं विपरेतन।

—ऋ० मं० १०, अ० ७, सू० ८५, म० ३३

अर्थात्—"जब वर वधू को विवाह कर लाता है, तो वह उपस्थित पुरुषों से कहता है—मेरी इस मङ्गल-रूपा वधू को देखो और इसे आशीर्वाद देकर घर जाओ।"

यं पितरो वधूदर्शा इमं वहन्तु मागमन्।

—ऋ० अ० १४, सू २, मं० ७३

इस मन्त्र में वधू को देखने वाले कह कर स्पष्ट सम्बोधन किया है।

ये तो हुए वेदों के प्रमाण। अब आधुनिक काल के प्रमाण लीजिए। देवी भारती का मण्डन मिश्र और शङ्कराचार्य के शास्त्रार्थ में मध्यस्था बनना और मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ में हार जाने पर स्वयम् शास्त्रार्थ करना क्या परदे का द्योतक है?

इसी प्रकार रानी अहिल्याबाई का युद्ध में लड़ना तथा महारानी लक्ष्मीबाई का अङ्गरेज़ों से मुक़ाबला करना आदि घटनाएँ क्या सिद्ध करती हैं?

उपरोक्त उदाहरणों से पाठकों ने यह तो जान ही लिया होगा कि परदा-प्रथा प्राचीन नहीं है, वरन् यह पिछले मुसलमानी काल अथवा पौराणिक काल की प्रथा है।

सम्भव है, मुसलमानी काल में इस प्रथा के प्रचलित होने के कारण कुछ लाभ भी हुआ हो और हमारी

मनोवृत्तियाँ, जो पहले से हमारे अज्ञानान्धकार के कारण आचरणहीनता की ओर झुक रही थीं और उस समय की विलासमय संस्कृति के कारण और अधिक उच्छृङ्खल हो गई थीं, उनसे तथा तत्कालीन अत्याचारों से स्त्रियों को बचाने का यह एक अच्छा उपाय रहा हो, परन्तु इसके साथ ही हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि उस समय जीवनोपयोगी सब सामान सुलभ थे, जिससे कि हम उदर-पूर्ति से काफ़ी समय बचा कर स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रत्येक काम को सुविधापूर्वक कर सकते थे। उस समय हमारे मकान काफ़ी हवादार, बड़े और प्रकाश वाले थे, जिससे कि हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य परदे की परिस्थिति में भी ठीक बना रहता था। परन्तु आजकल जब हम इस नवीन पश्चिमीय सभ्यता तथा उन्नति के युग में अपनी पेट-पूजा ही बड़ी कठिनता से कर सकते हैं, तो ऐसे समय में हम स्वास्थ्य पर कहाँ तक ध्यान दे सकते हैं ? फलतः ऐसी परिस्थिति में हमें यह देखना है कि वर्तमान काल में परदे का भूत हमारी स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य-जीवन के लिए सब वस्तुओं में, यहाँ तक कि अन्न और पानी की अपेक्षा भी, वायु अत्यावश्यक है। सम्भव है कि अन्न और जल के बग़ैर हम कुछ दिन व्यतीत कर सकें, परन्तु वायु के बग़ैर कुछ दिन तो क्या, कुछ घण्टे भी व्यतीत करना नितान्त कठिन है। श्वास लेने के लिए प्रति क्षण हमें स्वच्छ वायु की आवश्यकता है। यदि वायु स्वच्छ न मिली, तो हमारे स्वास्थ्य में एक ऐसी कमी होती चली जावेगी कि सम्भव है, तत्क्षण उसे हम न समझ सकें, परन्तु उसके अवश्यम्भावी हानिकर प्रभाव से हम किसी भी दशा में बच नहीं सकते। परन्तु परदे में रहने वाली बहिनों के हिस्से में मानो वह है ही नहीं। प्रकाश और स्वच्छ वायु के कारण अनेक रोगों के कीटाणुओं का नाश होता है। सील आदि के कारण उत्पन्न हुई दुर्गन्धि का भी नाश होता है। परन्तु आजकल एक तो हमारे मकान ही परदे के कारण इस प्रकार के बने हुए होते हैं, जिनमें स्वच्छ वायु एवं निर्मल प्रकाश का पहुँचना कठिन होता है, दूसरे यदि घर में थोड़ी-बहुत जगह में प्रकाश और वायु पहुँचती भी है, तो हम पुरुष लोग उस स्थान पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लेते हैं। इसलिए स्त्रियाँ तो उस जगह का यत्किञ्चित भी लाभ नहीं उठा सकतीं, बल्कि हम लोगों के आने-जाने के कारण इन्हें घर की ऐसी अँधेरी कोठरियों में बन्द रहना पड़ता है, जहाँ स्वच्छ वायु और निर्मल प्रकाश का तो काम ही क्या, नमी के कारण दुर्गन्धि आदि ने अवश्य अपना स्थायी अड्डा जमा लिया होता है, जिसके कारण उन्हें अपने स्वास्थ्य से हाथ धोकर अनेक रोगों का शिकार होना पड़ता है।

स्वास्थ्य के लिए व्यायाम एक आवश्यक एवं लाभदायक चीज़ है, इससे शरीर सुगठित एवं नीरोग रहता है, हृदय उल्लसित रहता है और यौवन चिरस्थायी होता है, परन्तु परदा-प्रथा के कारण स्त्रियों को इतनी स्वतन्त्रता ही कहाँ, जो वे व्यायाम कर सकें। यदि हम नवविवाहिता आदि छोटी वय वाली स्त्रियों से इस विषय में कहते हैं, तो वे शरमा कर सिर झुका लेती हैं; नवयौवनाओं से यदि चर्चा करते हैं तो वे मुस्करा कर हमारा मज़ाक़ उड़ाती हैं, और यदि कहीं भूल-चूक से या साहस करके बड़ी-बूढ़ियों के सामने इसका ज़िक्र कर बैठते हैं, तो हमको ऐसी-ऐसी बातें सुननी पड़ती हैं कि तबियत ख़ुश हो जाती है। परन्तु इसमें उन स्त्रियों का दोष ही क्या है ? उनके हृदय में तो हम स्वार्थी पुरुषों ने ये भावनाएँ दृढ़ कर रक्खी हैं, कि स्त्रियों के लिए परदा एक आवश्यक वस्तु है और वे केवल पुरुषों की विलास-सामग्री मात्र हैं। ऐसी दुर्बल भावनाओं के कारण ही आज हमारे स्त्री-समाज पर भयङ्कर अत्याचार किए जा रहे हैं और ये उस समय तक जारी रहेंगे, जब तक कि स्त्रियाँ स्वयं अपनी रक्षा करने योग्य न होंगी। यह ठीक है कि उनके संरक्षण का बहुत-कुछ भार पुरुष-जाति पर है, परन्तु जब तक वे स्वयम् अपनी हिफ़ाज़त करने में समर्थ न हो सकें, तब तक केवल हमारा संरक्षण उनके लिए नाकाफ़ी है। क्योंकि जब रक्षक ही भक्षक बना है, तो स्वयम् तैयार हुए बिना रक्षा कैसे सम्भव है ? अङ्गरेज़ी की एक कहावत है कि 'ईश्वर उनकी सहायता करता है, जो स्वयम् अपनी सहायता करते हैं।'

आजकल स्त्री-समाज पर परदे के कारण जिन भयङ्कर रोगों का आक्रमण हो रहा है, उनमें से मुख्य दो हैं:—एक प्रदर और दूसरा यक्ष्मा।

आजकल प्रदर-रोग की जैसी अधिकता है, उसे देखते हुए यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि ६६ प्रतिशत स्त्रियाँ इस रोग का शिकार हो रही हैं। इस रोग में हमारे सभी साधारण काम होते हैं। यहाँ तक कि प्रजनन कार्य भी होता रहता है। परन्तु इसके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है, सुस्ती उनमें घर कर लेती है, पिण्डलियों और पेडुओं आदि में सदा दर्द बना रहता है, लेटे रहने की इच्छा होती है और मुख के सौन्दर्य तथा कान्ति का नाश हो जाता है। अच्छे-अच्छे डॉक्टरों तथा सद्वैद्यों का कहना है कि इसका कारण अधिकांश रूप में परदा है।

दूसरा भयङ्कर रोग यक्ष्मा है। इस रोग का प्रभाव अधिक होने का कारण यह है कि परदे के कारण स्त्रियाँ आलसी और निकम्मी हो जाती हैं और उनका मेदा कमज़ोर हो जाता है। अपचन आरम्भ हो जाता है। और इसके साथ ही साथ काम-लालसा भी बढ़ जाती है। वासना की पूर्ति और सन्तानोत्पादन के सिवाय उन्हें दूसरा काम ही नहीं रहता, जिसके कारण व्यभिचार बढ़ता है और वे इस संक्रामक रोग का शिकार बन जाती हैं। इसका सब से अच्छा इलाज यही है कि औषधि के साथ ही साथ स्वच्छ वायु का अधिक से अधिक सेवन कराया जावे—ऑक्सिज़न (प्राणप्रद वायु) अधिक प्राप्त की जावे। किन्तु यह परदे के कारण असम्भव ही नहीं, नितान्त कठिन और व्यय-साध्य है। पहिले तो शर्म के कारण हमें यह रोग मालूम ही नहीं होता और अगर मालूम भी पड़ता है, तो अपेक्षित वायु के अभाव के कारण असाध्य होता जाता है और एक दिन हम अपने निर्दय हाथों द्वारा अपनी प्यारी बहिनों और स्त्रियों को कराल काल के गाल में समर्पित कर देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही गया कि परदा-प्रथा न तो प्राचीन ही है और न लाभदायक। परन्तु इस प्रथा को दूर कर देने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम पश्चिमी रङ्ग में रँग जावें। क्योंकि हमारे स्त्री-समाज के लिए जिस तरह परदा-प्रथा दूषण है, उसी प्रकार लज्जाशीलता उसका भूषण है। मतलब तो केवल यह है कि आजकल परदे की जिस ग़ुलामी के कारण हम अपने स्त्री-समाज का ह्रास देख रहे हैं, वह न होकर वे संसार के स्त्री-समाज के साथ, पूर्वीय सभ्यताभिमानिनी होकर कन्धे से कन्धा भिड़ा कर चल सकें। देवी सरोजिनी नायडू और श्री० कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि महिलाएँ, जो हमारे स्त्री-समाज की उज्ज्वल रत्न हैं, उन्हीं का अनुकरण करना अन्यान्य स्त्रियों का भी कर्तव्य है।

फिर क्यों न बहिनों से निवेदन किया जावे कि बहिनो, अब सोने का समय गया। उठो, और देखो कि संसार का स्त्री-समाज उन्नति के पथ पर कितना अग्रसर हो गया है, फ़ैशन के भाव से प्रेरित होकर नहीं, प्रत्युत यह ध्यान में रख कर कि हम प्रारम्भ से ही भारतवर्ष की उन्नति में भाग लिया करती थीं, तो आज किसी अच्छे कार्य में क्यों पीछे रहें। इस परदे रूपी बेड़ियों को तोड़ कर फेंक दो।

इसी तरह पुरुषों से प्रार्थना है, कि भाइयो, यदि स्वाधीन होना चाहते हो, तो पहले इस सुकार्य में अपनी बहिनों को सहयोग दो, और ज़बर्दस्ती नहीं, वरन् समझा कर उन्हें इस हानिकर और ग़ुलामी की प्रथा से मुक्त करो।

ईश्वर सामाजिक क्रान्ति को चिरजीवी करे।

—वृन्दावनदास बजाज़

* * *

मारवाड़ी महिलाओं का वेष-भूषा

सारे भारतवर्ष में हलचल मच रही है। प्रत्येक जाति या समुदाय सुधार में लगा हुआ है। कुछ जातियों ने तो आशातीत सफलता भी प्राप्त की है, पर हमारा मारवाड़ी-समाज उसी स्थान पर ठहरा हुआ है, जिस पर आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व था। समाज की महिलाओं की वही दशा है, जो पहिले थी। कलकत्ता और बम्बई आदि की कुछ इनी-गिनी मारवाड़ी महिलाओं को छोड़ कर शेष की ओर देखिए, तो मालूम होगा कि उनकी अवस्था पहिले से भी ख़राब हो गई है। पुरुषों के वेष-भूषा और रहन-सहन में तो, नाना प्रदेशों में व्यापार के लिए जाने-आने से और भिन्न प्रकार के मनुष्यों के संसर्ग से, समयोचित अन्तर आ गया है। लम्बी अँगरखी का पहनना प्रायः सबने छोड़

दिया है! पगड़ी के बदले भी टोपी नज़र आती है। विवाह-शादी एवं त्योहारों के अवसरों पर सोने-चाँदी के गहनों से शरीर को लादना भी परित्याग कर दिया है। परन्तु स्त्रियों की ओर देखिए। उनका वही बाबा-आदम के ज़माने का अठारह-गज़ा घाँघरा, वही किनारी-गोटे की ओढ़नी और वही पुराने ढङ्ग की बेहूदी चोली! विचारना यह है कि क्या आजकल के सुधार के ज़माने में उनका यह वेष-भूषा उपयुक्त और समयानुकूल है?

विवाह-शादियों में ऐसी साड़ियाँ तैयार कराई जाती हैं, जिन पर सैकड़ों रुपए का गोटा-किनारी लग जाता है। बड़े-बड़े दो-दो, तीन-तीन थानों के काले घाँघरे बनवाए जाते हैं, जो एक बार बन जाने के बाद शायद ही कभी धुलने जाते हों। राजपूताने की बेहद गरमी में भी जब स्त्रियाँ उनको पहिन कर विवाह-शादी के अवसरों पर निकलती हैं, तो वे पसीने से तर-बतर हो जाते हैं। वे धोए जा नहीं सकते; क्योंकि धुलने से उन पर लगे हुए सलमे-सितारे तथा किनारी के नष्ट हो जाने का डर रहता है। नतीजा यह होता है कि वे उसी गन्दी हालत में पेटी के अन्दर रख दिए जाते हैं और फिर आवश्यकता पड़ने पर दूसरी दफ़ा पहने जाते हैं। इससे शरीर पर कितना बुरा असर पड़ता है, इसका पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। घाँघरे के विरुद्ध जब कभी आवाज़ उठाई जाती है, तभी यह उत्तर मिलता है कि धोती से स्त्री के अङ्गों की रक्षा नहीं हो सकती। ऐसे लोगों से हमारा यह कहना है कि लज्जा-निवारण के लिए धोती के नीचे भाटिया स्त्रियों की तरह साया (Underwear) या मोटी धोती भी तो पहनी जा सकती है। कहा जाता है कि मोटी धोती पहिनने वाली स्त्रियों को घूँघट काढ़ने में असुविधा होती है, परन्तु यह धारणा भी ग़लत है, क्योंकि मोटी धोती पहनने वाली अन्य जातियों की स्त्रियाँ भी परदानशीन हैं और आसानी से घूँघट काढ़ सकती हैं। इसके सिवा ये असुविधाएँ अब थोड़े दिन की हैं, क्योंकि परदा-प्रथा उठ रही है। हमारी राय में कपड़ों पर इतने रुपए ख़र्च करना अर्थ का अपव्यय और मूर्खता है। यदि वस्त्रों को मूल्यवान ही बनाना है, तो किनारे आदि में रुपए ख़र्च न करके पारसी और भाटिया स्त्रियों की तरह अच्छी स्वदेशी साड़ियाँ व्यवहार में लाई जायँ, जिनको चाहे जितनी बार धोबी से धुलवा भी सकते हैं। प्रत्येक धुलाई में कपड़े की सुन्दरता नष्ट न होकर दुगुनी ही बढ़ जाती है। 'काँचली' पहिनने की प्रथा हमारे स्त्री-समाज में बहुत उत्तम है। पञ्जाबी और बङ्गाली स्त्रियाँ ऐसा कोई वस्त्र नहीं पहिनतीं। इसीलिए एक-दो सन्तान हो जाने के बाद स्तनों की अत्यधिक वृद्धि होने से उनका शरीर बेडौल दिखाई देने लग जाता है। परन्तु काँचली के ऊपर कोई ऐसा वस्त्र पहनना भी आवश्यक है, जिससे पेट ढँका रहे।

हमारी स्त्रियों में माथा गूँथने की प्रथा बहुत बुरी है। एक तो माथा गूँथा हुआ होने से तीन-चार गहनों का बोझ ढोना पड़ता है और दूसरे वह सात-सात दिन तक धोया नहीं जाता। आटी और डोरों से सिर बुरी तरह कसा हुआ होने से वायु का स्पर्श बालों की जड़ों तक नहीं पहुँचता। इससे सिर से बदबू आने लग जाती है और बालों में जुएँ पड़ जाती हैं। स्त्रियों का बाल एक श्रृङ्गार है। उन्हें चाहिए कि अपने बालों को ख़ूब साफ़ रक्खें। हो सके तो नित्य धोकर साफ़ कर लें। लभ्य हो तो सुन्दर फूलों के हार से अपने शीश को सुशोभित करें, ताकि उनका मस्तिष्क ठण्ढा रहे और शोभा की भी वृद्धि हो।

भारतवर्ष के कतिपय अन्य समाजों की तरह हमारी स्त्रियाँ भी परदे की क़ैद में हैं। वास्तव में परदा किसी की लज्जा या शर्म की रक्षा नहीं करता, वरन् उनकी स्वाभाविक सुन्दरता को नष्ट कर देता है। प्रायः देखा जाता है कि कन्याएँ माता-पिता के घरों में, जब तक परदे के जाल में नहीं जकड़ी जातीं, अत्यन्त लज्जाशीला होती हैं, परन्तु वे ही विवाह होने पर जब परदा धारण कर लेती हैं, तो बड़ी ही बेशर्म हो जाती हैं। इसका प्रमाण यह है कि विवाह-शादी के मौक़ों पर पुरुषों के सामने खड़ी होकर स्त्रियाँ कितने गन्दे गीत गाती हैं। जब जवाई (दामाद) ससुराल में जाता है और रात में सालियाँ और सालों की बहुएँ उसे बातचीत करने के लिए बुलाती हैं, तो घूँघट के अन्दर मुँह छिपा कर ऐसे अश्लील शब्दों का व्यवहार करती हैं, जो सभ्यता के नाम पर एक भयङ्कर कलङ्क है। प्रायः बीकानेरी समाज में तो यहाँ तक देखा जाता है कि मुँह को घूँघट से ढँक कर एक आँख पर से दो अँगुलियों के सहारे घूँघट हटा कर

स्त्रियाँ देखती रहती हैं। इसी को क्या लज्जा या परदा कहते हैं? हमारा ख़्याल है कि अगर स्त्री का घूँघट हटा दिया जाए, तो उसे उन गन्दे गीतों के गाने का और 'जवाई' के साथ अश्लील मज़ाक़ करने का साहस कभी भी नहीं होगा। स्त्री के लिए पिता, ससुर, भाई और जेठ का नाता बराबर ही होता है, परन्तु परदे की ओट में अपने ससुराल में ससुर और जेठ के सामने ही वे कितने अश्लील गीत गाया करती हैं। इसके विपरीत भाई के सामने घूँघट न रहने से एक अपशब्द भी बोलने का उन्हें साहस नहीं होता। यदि मान लिया जाय कि परदा स्त्री की लज्जा और शील की रक्षा करता है, तो वह पिता और पुत्री, भाई और बहिन के बीच में भी होना आवश्यक है। जब पुरुषों और स्त्रियों के बीच में परदा रखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती तो स्त्रियों में परस्पर परदे का क्या अर्थ होता है? यदि मान लें कि हमारी स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता को छिपाने के लिए परदा करती हैं, तो कम से कम परिचित पुरुषों में तो इसके रखने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, वे अनजान पुरुषों के सामने चाहे भले ही परदा कर लें। परन्तु इसके विपरीत हम देखते हैं कि स्त्रियाँ लम्बे-लम्बे घूँघट काढ़ कर ससुर और जेठ के सामने, चाहे वे किसी बीमारी की हालत में भी पड़े हों, औषधि तक देने जाने में लज्जा करती हैं और उन गुण्डे मुसलमान 'मोदियों' से, जो किनारी-गोटे बेचते फिरते हैं, खुल कर बातें करते नहीं हिचकिचाती हैं। क्या इसी को लज्जा कहते हैं? परदे के कारण स्त्रियों के स्वास्थ्य को जो भारी हानि पहुँचती है, उसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। उनके भारी कपड़ों की गन्दगी को यह परदा और भी बढ़ा देता है, जिससे उनका स्वास्थ्य सहज ही में नष्ट हो जाता है।

अब ज़रा हमारी स्त्रियों के ज़ेवरों की ओर ध्यान दीजिए। वे गिनती में इतने अधिक होते हैं कि यदि प्रत्येक पर विचार किया जाय तो एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो जाए। इसलिए यहाँ हम दो-चार ज़ेवरों का ही ज़िक्र करना चाहते हैं। गहने पहिनने की प्रथा संसार की किसी भी सभ्य जाति में नहीं पाई जाती। यह एक प्रकार से असभ्यता की निशानी है। गहने पहिनने की प्रथा धन होने का भी प्रमाण नहीं है। जब बड़ों को गहना कम कराने को कहते हैं, तो वे उत्तर देते हैं कि जैसे-जैसे जाति के पास धन कम होता जायगा, वैसे-वैसे गहने भी कम होते जायँगे। पर व्यवहार में यह बात नहीं पाई जाती। क्योंकि धनवानों की स्त्रियाँ सच्चे हीरे-मोतियों के ज़ेवर पहनती हैं तो ग़रीबों की औरतें नक़ली हीरे और इमीटेशन मोती के गहने पहनती हैं। हमारी औरतें सोने-चाँदी के आभूषण पहिनती हैं, तो नीच जाति वालों की स्त्रियाँ जर्मन-सिलवर और दूसरी सस्ती धातुओं के ज़ेवर बना कर पहनती हैं। इसलिए धन और आभूषणों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो एक बहुत बुरी प्रथा है। सब से ज़्यादा गहने भीलों और सन्थालों की स्त्रियाँ पहनती हैं।

दूसरी बात गहनों के पक्षपाती यह कहते हैं कि "गहना धनी का श्रृङ्गार भूखे का आधार" है। यह कहावत आज से कुछ दिन पहले चाहे सत्य रही हो, परन्तु आजकल तो सर्वथा इसके विपरीत ही देखा जाता है। प्रायः गहने इतने फ़ैन्सी और जड़ाऊ होते हैं कि आधे से अधिक मूल्य तो उनकी बनाई और जड़ाई में ही ख़र्च हो जाता है। आवश्यकता के समय बेचने जाने पर जब कोई लेने वाला नहीं मिलता, तो तुड़वाने पर एक रुपए के छः आने ही हाथ लगते हैं। और अगर तुड़वाए नहीं जाते हैं तो हमारी कुल-कामिनियों के अङ्गों को सुशोभित करने के पहले क़र्ज़ देने वाले सेठों की तिजोरियों को सुशोभित किया करते हैं।

कुछ दूर की कौड़ी लाने वाले यह भी कहते हैं कि गहने पहनने की आदत मनुष्य को मितव्ययी बनाती है। यह बात कुछ अंशों में ठीक है। क्योंकि कुछ मनुष्य फ़िजूल ख़र्च न करके समाज में अपना मान बढ़ाने के लिए और अपने को अधिक धनी प्रमाणित करने के लिए गहने बनवाने की धुन में लगे रहते हैं। परन्तु आजकल बीसवीं शताब्दी है। सञ्चय करने के अन्यान्य सुरक्षित साधनों के होते हुए यह आवश्यक नहीं कि वही प्राचीन साधन काम में लाए जाएँ, जो रक़म को बढ़ाने के बदले उसे तिहाई मूल्य तक घटा देते हैं। गहने पास रखने से हर समय चोर-डाकू का भय लगा रहता है। लड़के का जब विवाह होता है, तो लड़की वाला लड़की के लिए हज़ारों रुपए के गहने लड़के वाले से चाहता



'चाँद' की लेखिका और बम्बई की सुप्रसिद्ध बैरिस्टर—
कुमारी मीठाँ टाटा, एम० एस-सी०, बार-ऐट-लॉ
जो हाल ही में लॉ-कॉलेज की अध्यापिका नियुक्त हुई हैं।

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

है। इनमें से छोटे-मोटे ज़ेवर तो लड़की अपने पीहर और ससुराल में हर समय काम में लाती है, पर मूल्यवान गहने बहुधा लड़की के माता-पिता के ही पास पड़े रहते हैं और तब तक वापस नहीं लौटाए जाते, जब तक लड़का और लड़की सयाने नहीं हो जाते। इसमें लड़की वालों का कुछ ख़ास स्वार्थ रहता है। वे एक तो यह बात सोचते रहते हैं कि हमारे 'जवाई-भाई' अभी छोटे हैं, गहने वापस दे देंगे तो लड़के का बड़ा भाई या पिता उन्हें दाब कर बैठ जायँगे और हमारे जवाई के पास कुछ नहीं रह जाएगा। दूसरी बात वे यह सोचते हैं कि यदि हमारी लड़की दुर्भाग्य से विधवा हो गई तो कम से कम ये गहने तो उसके भरण-पोषण के लिए रह जायँगे। इन दोनों सन्देहों को दूर करने के लिए सब से उत्तम उपाय यह है कि लड़के के जीवन का बीमा करवा दिया जाय, ताकि लड़की के विधवा होने पर उसके भरण-पोषण के लिए कुछ धन मिल जाय और यदि दोनों जीते रहें तो बुढ़ापे में धन पाकर अपने अन्तिम दिन सुख से काटें।

अब स्वास्थ्य की दृष्टि से आभूषणों पर विचार कीजिए! वास्तव में यह गहने स्त्रियों के स्वास्थ्य को खाए डालते हैं। सिर पर रहने वाला वह "सर्च लाइट" (Search-light) अर्थात् बोर* इतना बड़ा होता है कि उसके कारण स्त्रियों के मस्तकों में गड्ढे पड़ जाते हैं। उसकी पीड़ा से बचने के लिए स्त्रियाँ 'बोर' के नीचे 'कई' (एक गद्दीदार पदार्थ) रखती हैं। वे अपने सिर को पूरी तरह ऊँचा भी नहीं करने पातीं, क्योंकि दरवाज़े और खिड़कियों से निकलते समय बोर की टक्कर लगने का डर हर समय लगा रहता है। कभी-कभी यहाँ तक देखने में आया है कि छत पर बैठी हुई स्त्रियों के चमकते हुए बोर पर चीलें झपट पड़ती हैं। हमारा तो यहाँ तक विचार है कि बोर बाँधने से स्त्रियों की बुद्धि मन्द पड़ जाती है। मस्तिष्क पर हर समय भार रहने से बुद्धि के परदों (Wisdom Layers) पर बुरा असर पड़ता है। बङ्गाली युवकों का मस्तिष्क तेज़ होता है; क्योंकि वे अपने सिर को नङ्गा रख कर अपने मस्तिष्क पर किसी तरह का बोझ नहीं रखते। हमारी महिलाएँ कहती हैं कि बोर कैसे हटाया जा सकता है? यह तो एक सुहाग का चिह्न है। परन्तु यह सुहाग का चिह्न सिर्फ़ मारवाड़ी महिलाओं में ही नज़र आता है। दूसरे प्रान्त की स्त्रियाँ तो अपने ललाट के ऊपरी भाग में सिन्दूर या कुङ्कुम के चिह्न को ही सुहाग का चिह्न मानती हैं और वही वास्तव में सुहाग का सच्चा चिह्न है भी।

अब हमारी महिलाओं के कर-कमलों की ओर दृष्टिपात कीजिए। सोने की बँगड़ी (कलशदार या तीखी) इस तरह से पहनी हुई होती है, मानो क़ैदियों के हाथों में बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। जब कभी वे रास्ते में चलती हैं तो अपने हाथों को सीधा नहीं कर सकतीं, क्योंकि 'उन गाड़ी के पहियों' के हर समय गिर जाने का भय लगा रहता है। यदि दुर्भाग्य से बँगड़ी तीखी हुई, तो छोटे बच्चों की शामत आ जाती है। उसकी तेज़ नोकें अक्सर बच्चों के शरीर में चुभ जाती हैं। इसी से अधिकांश स्त्रियाँ घर में बँगड़ियाँ नहीं पहनतीं। परन्तु प्रत्येक हाथ में चार-पाँच चूड़ियाँ अवश्य रखती हैं और उन्हें पहने ही झाड़ू देती हैं, जूठे बर्तन माँजतीं और रोटी बना देती हैं। बर्तन माँजने और झाड़ू देने के बाद स्त्रियाँ हाथ तो अवश्य धोती हैं, परन्तु क्या वे कभी चूड़ियों को साफ़ करने की भी आवश्यकता समझती हैं? उनमें फँसे हुए सैकड़ों ज़हरीले कीटाणु उनके हाथों से बनाए हुए भोजन में प्रवेश कर हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। कितनी ही फूहड़ स्त्रियाँ तो चूड़ी पहने ही बच्चे को सौंचा देती हैं, परन्तु उन्हें साफ़ करने की आवश्यकता नहीं समझतीं। स्त्रियाँ अपने हाथों को साफ़ रक्खें। यदि उन्हें हाथों में गहने पहिनने का शौक़ हो, तो घर के काम-काज से निवृत्त होकर सोने या चाँदी की पतली एवं हल्की सी दो चूड़ियाँ प्रत्येक हाथ में धारण कर लें। हो सके तो एक सुन्दर सी घड़ी अपनी कलाई पर बाँध लें, परन्तु वह भी शोभा के लिए नहीं, बल्कि समय के ज्ञान के लिए। समय को फ़ालतू बातों में ख़र्च न करके उसका सदुपयोग करें। परन्तु यदि शौक़ीनी और दिखावे के लिए ही घड़ी का उपयोग हो, तो वह उतना ही बुरा है जितना गाड़ी के पहियों का हाथ में धारण करना।

अब हमारी देवियों के चरण-कमलों की ओर

---

* एक प्रकार का गेंद-सा गोल गहना, जिसे मारवाड़ी-स्त्रियाँ सिर पर धारण करती हैं। —सम्पादक





आह ! वह पीड़ा का संसार !
किस अनन्त की ओर चल पड़ा लिए—
वेदना-भार !
छेड़ कर मेरे हृत्-तन्त्री के तारों को—
विकल उच्छ्वासों की आँधी में,
निर्दय उस निर्मम ने ।
कानों में पहुँची नहीं,
नीरव ध्वनि—मूक भाषा का
वह शून्य स्तब्ध स्वर !
हाय ! मैं पुकारता ही रह गया !!!

मेरा वह सोने का संसार !
शून्य कुटी में, जिसे सजाया था मैंने
आँसू की लड़ियों से ।
उसे उड़ा ले गया झञ्झावात !
अब मैं क्या करूँ ?
क्या खाऊँ, क्या पिऊँ,
क्या ले परदेश जाऊँ ?

—कविकुल-कुमुद-कलाधर
कविवर श्री० चोंचाकर !

निहारिए। कड़ी, कड़ले, जीमी, नेवर, जोड़ आदि गहनों से वे इतने जकड़े हुए रहते हैं कि स्त्रियों को थोड़ी दूर चलने-फिरने में कष्ट मालूम होता है। कई गहने तो चौबीसों घण्टे पड़े रहते हैं और स्नान करने के समय भी नहीं खोले जाते। उनके नीचे पैरों पर मैल जम जाता है और फोड़े-फुन्सियाँ हो जाने से स्त्रियाँ नाना प्रकार का कष्ट पाती हैं। जब वे रास्ते में चलती हैं, तो पैरों के गहनों से निकलती हुई झङ्कार लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और यही कारण है कि मारवाड़ी महिलाएँ जब कलकत्ता आदि बड़े शहरों की गलियों और बाज़ारों में गुज़रती हैं तो गुण्डों की आँखें उन पर गड़ जाती हैं और इसका परिणाम जो कुछ हो सकता है, वह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं।

मारवाड़ी स्त्रियों के और भी बहुत गहने होते हैं, जैसे मोरमीठी, नाथ, सुरलिया, मछलियाँ, कान की कम से कम एक दर्जन बालियाँ, गले के गहनों में गल-पटिया, तिमिखियाँ, ठुसी, साँकल, चन्द्रहार, बाँहों के गहनों में बाज़ूबन्द और टड्डे इत्यादि। इनमें से प्रत्येक पर विचार करने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि उप-र्युक्त विवेचन से पाठक उसके दुष्परिणामों को समझ गए होंगे।

आख़िर इन आडम्बरों के अस्तित्व का कारण क्या है? इसका मूल कारण तो हमारी स्त्रियों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों की अज्ञानता है। निरक्षरा होने के कारण वे न तो स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें ही पढ़ सकती हैं और न पुरुष ही उन्हें उन नियमों को बत-लाने की कृपा करते हैं। पुरुष विवाह के अवसर पर की हुई सुन्दर प्रतिज्ञाओं को भूल जाते हैं और स्त्री को एकमात्र भोग की सामग्री समझ बैठते हैं। स्वार्थी पुरुष-समाज ने ही उनको गहनों से जकड़ दिया है, ताकि वे स्वतन्त्रता से कहीं आ-जा न सकें और सिर्फ़ बच्चे पैदा करने वाली मैशीनें बनी रहें।

पाठकों को मालूम होगा कि आजकल बूढ़े लोग तो आठ-दस हज़ार के गहने बनवा कर लड़की के माता-पिता को राज़ी करके अपना विवाह कर लेते हैं और समाज के नौजवान गहने के अभाव से क्वाँरे ही रह जाते हैं। ग़रीबों को इन गहने और ज़री के कपड़े बनाने में हज़ारों रुपए ख़र्च करना पड़ता है और फिर क़र्ज़ की नाना यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं।

हमारी समझ में इन बुराइयों को दूर करने का सबसे अच्छा तरीक़ा स्त्रियों को शिक्षा देना है। परन्तु शिक्षा का सिर्फ़ इतना ही अर्थ नहीं है कि टूटी-फूटी भाषा में पत्र लिखना आ जाय और जब पतिदेव कहीं परदेश में हों तो पत्नी पत्रों का उत्तर दे दे। उन्हें इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे वे जान जायँ कि देश और मारवाड़ी समाज की क्या दशा है और देश के अन्यान्य समाजों की महिलाएँ क्या कर रही हैं, कैसे रहती हैं और कैसे गहने-कपड़े आदि धारण करती हैं।

—गोपीकृष्ण मोहता, बी० कॉम०

* * *

हमारी सन्तान

आज भारतीय समाज की कैसी दशा है, वह उन्नति की ओर जा रहा है या अवनति की ओर, इसका उत्तर समाज की जीर्ण-शीर्ण दशा स्वयं दे रही है। आज हमारे समाज के नर-नारियों की क्या दशा है, वे कितने सुखी, हृष्ट-पुष्ट और नीरोग हैं; इस बात के विश्लेषण से समाज की दशा का पता अच्छी तरह चल जाता है। कहीं भी, किसी को देख लीजिए, सुख की बात नहीं, सुख का नाम-निशान नहीं। छिन्न-भिन्न, क्षीण-काय, म्लान-मुख, झुकी हुई कमर, धीमी-धीमी उत्साह-रहित चाल, यही समाज के मनुष्यों की दशा है। इससे प्रकट है कि समाज तीव्र गति से अव-नति के पथ की ओर अग्रसर हो रहा है, समाज के व्यक्ति मानसिक और शारीरिक शक्ति खो चुके हैं। बीमारी और रोग उनके स्वास्थ्य के पीछे बुरी तरह से लगे हुए हैं। पृथिवी की किसी भी जाति की अपेक्षा यहाँ की मृत्यु-संख्या बहुत अधिक है। हमारे यहाँ के शहरों में दो में से एक सन्तान जन्म लेते ही मर जाती है। सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार समूची मृत्यु-संख्या में से एक पाँचवाँ भाग बाल-मृत्यु का है और इसमें भी एक पाँचवाँ भाग ऐसी बाल-मृत्यु का है, जो इस धरातल पर एक वर्ष पूर्ण करने के पहले ही चल बसते हैं।

इङ्गलैण्ड की जनता की औसत आयु ४८, ऑस्ट्रेलिया की ५५ और जापान की ४४ वर्ष की है; किन्तु भारत की केवल २४ वर्ष की रह गई है। सुखपूर्वक दीर्घायु पाना बहुत कम भारतवासियों को नसीब होता है। ५० वर्ष के ऊपर हो जाने से धन्य मान लिया जाता है, और ४० वर्ष की आयु पाने पर बुढ़ापे में प्रवेश हो जाता है। मरना कोई दुःख की बात नहीं है, क्योंकि जो जन्म लेता है, उसे एक दिन मरना तो होगा ही। पर दुःख यह है कि यहाँ नवजात शिशु और नौजवान नर-नारी ही अधिक मरते हैं, यदि मृत्यु-संख्या की बात छोड़ दें और जीने वालों की दशा पर ही विचार करें, तो भी कुछ सन्तोष की बात नज़र नहीं आती। सभी जानते हैं कि हमारी शक्ति किस तरह क्षीण होती जा रही है। पूर्वजों की देह के वर्णन को चाहे हम पौराणिक गपोड़े समझें और दो-तीन सौ वर्ष पहले के शूर-वीरों की कथाएँ चाहे हमें कल्पित जान पड़ें, पर यह बात तो ध्रुव-सत्य है कि आगे की सन्तान पिछली पीढ़ी की समता नहीं कर सकती; क्योंकि जैसे हमारे दादा थे वैसे पिता नहीं, और जैसे पिता थे वैसे हम नहीं हैं। हमारी सन्तान तो और भी गई-बीती है। आज विशालकाय और पूर्ण बाहुबल वालों के वर्णन गुज़रे ज़माने की बातें हो गईं और अब हमारे वर्णन में पिचके हुए गाल, प्रभाहीन नेत्र, निकली हुई हड्डियाँ और सूखी लकड़ी के सदृश हाथ-पैरों के सिवा और क्या लिखा जा सकता है?

'पहला सुख नीरोग काया' का अर्थ केवल यही नहीं है कि सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए देह रोग-रहित हो। बल्कि कहा है—"धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए भी इसकी पूर्ण आवश्यकता है। इसीलिए अपने देशवासियों की शारीरिक दशा और स्वास्थ्य की बात विचारने पर बड़ी निराशा होती है।

कुछ लोग कहेंगे कि भारत में अगर मृत्यु-संख्या अधिक है, तो साथ ही जन्म-संख्या भी अधिक है। इधर का घाटा उधर पूरा हो जाता है, इसलिए कोई भय की बात नहीं है। इस तरह कहने वाला प्रमाण-स्वरूप यह भी कहेगा कि भारत की जन-संख्या सन् १८८१ से १९२१ के बीच, ३० वर्षों में, ३ करोड़ और १९२१ से १९३१ तक १० वर्षों में ४ करोड़ से अधिक बढ़ी है, फिर डर की कौन सी बात है? इस तरह का तर्क सुनने में भले ही सुन्दर जान पड़े, पर वास्तव में इसमें कुछ तथ्य नहीं है। क्योंकि पहले तो यह विचारना चाहिए कि एक देश ऐसा है, जहाँ मृत्यु-संख्या और जन्म-संख्या दोनों बहुत अधिक हैं, और एक देश ऐसा है, जहाँ दोनों कम हैं। पर यदि यह माना जाय कि दोनों की जनता में वृद्धि एक हिसाब से हुई है, तब दोनों देशों में कौन सा अच्छा समझा जायगा? उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि निश्चय ही कम मृत्यु और जन्म वाले देशों की दशा अच्छी मानी जायगी। अधिक जन्म-संख्या के कारण आबादी की संख्या ठीक रहने ही से सन्तोष की बात नहीं हो सकती; क्योंकि जब मृत्यु की और जन्म की संख्या दोनों ही अधिक हैं तो जनता अशक्त और कमज़ोर है, और आबादी की वृद्धि से देश की आर्थिक और शारीरिक परिस्थिति पर उसका बुरा परिणाम होता है।

केवल देश की जन-संख्या से देश की शक्ति को तौलना भूल से भरा हुआ है। भारत की जन-संख्या देखने में अवश्य बहुत बड़ी है, पर इससे यह निष्कर्ष निकालना कि देश उन्नति-पथ पर है, बड़ी भूल की बात होगी। संख्या में बड़े होने की अपेक्षा बुद्धि, बल और पौरुष में बड़ा होना ही प्रशंसनीय और वाञ्छनीय है। दुनिया के नक़शे में रोम और ग्रीस का आकार कितना था, पर उन्होंने साम्राज्य स्थापित किए। अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं, छोटे से देश जापान ने अभी हाल ही में क्या से क्या कर दिखाया है। इतिहास में ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण हैं कि जो जाति संख्या में छोटी है, पर गुणों में बड़ी है, उसे उस जाति की अपेक्षा, जो जाति संख्या में बड़ी है, पर गुणों में हीन है, उन्नत और भाग्यशाली होने का अधिक अवसर मिलता है। इसलिए हमें संख्या में बड़े बनने की अपेक्षा योग्यता में बड़े बनने का ध्येय रखना चाहिए। कहा भी है:—

जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै शूर।
नहिं तो रहिजे बाँझड़ी, मती गमावे नूर॥

इसलिए यदि जाति, समाज और देश की दशा

सुधारनी है, तो यह आवश्यक है कि नीरोग, हृष्ट-पुष्ट और दीर्घजीवी सन्तान ही पैदा हो। परन्तु ऐसा होना तभी सम्भव है, जब जन्मदाता माता-पिता सुयोग्य हों। सुयोग्य माता-पिता का अर्थ यह है कि केवल स्वस्थ, विद्वान्, सदाचारी, यौवन-प्राप्त स्त्री-पुरुष ही विवाह-बन्धन में बाँधे जायँ। इसके विरुद्ध विवाह बिलकुल रोक दिए जायँ। इस बात की ग़फ़लत ने हमारे समाज का भारी अहित किया है और इसी से आज समाज के व्यक्तियों की ऐसी जीर्ण-शीर्ण दशा है। जिनकी योग्यता या अयोग्यता का कुछ पता नहीं है, जिनमें सांसारिक निर्वाह के लिए कुछ भी क्षमता नहीं है, ऐसी अप्रस्फुटित कलियों—अबोध बालक-बालिकाओं—का सम्बन्ध जोड़ देना विवाह रूपी पवित्र और महत्वपूर्ण संस्कार का दुरुपयोग है। जब तक ऐसा होता रहेगा, तब तक समाज के व्यक्तियों की दशा का सुधार और समाज की उन्नति की आशा करना मूर्खता है। कितने दुःख की बात है कि इस आवश्यक विषय की इतनी अवहेलना की जाती है। सन्तान के उचित लालन-पालन और सँभाल की तो बात दूर रही, स्वयं अपने निर्वाह और उत्तरदायित्व के पालन को भी जिनमें क्षमता नहीं है, ऐसे माता-पिता भी अपनी सन्तान का विवाह करने ही में अपने उद्देश्य की पूर्ति समझते हैं। किसी भी तरह से लड़के-लड़कियों के विवाह हो जायँ, यही घर के बड़े-बूढ़े, माता-पिता, दादा-दादियों की इच्छा रहती है। अभी हाल ही की बात है। एक भले आदमी ने अपने लड़के का, जिसे मिर्गी आती है, विवाह किया है। लड़की लेखक के एक मित्र की है। विवाह हो जाने पर कन्या पक्ष वालों को मालूम हुआ कि लड़के को मिर्गी का रोग है। लड़के वाले ने यह कैसी हृदय-हीनता और स्वार्थपरता का परिचय दिया है। कितनी नीचता है कि उन्होंने ऐसे लड़के का भी, उसके रोग को छिपा कर, विवाह करना ही उचित समझा। लड़की वालों के यह पूछने पर कि—"दयानिधान! आपने यह क्या किया?" लड़के वाले कहते हैं—"पहले इसे इतना अधिक रोग न था, केवल एक-दो बार ही दौरा आया था।" कहाँ तक कहा जाय, लड़का चाहे जैसा क्यों न हो, उसके गले में बन्धन डाल कर बहू लाने ही का ध्येय हमारे यहाँ माता-पिताओं के आगे रहता है।

प्रत्येक नवजात शिशु अपने साथ अपने जन्मदाता माता-पिता के गुण-अवगुण और प्रकृति को साथ लाता है। रोगी और अशक्त माता-पिता की सन्तान कभी बलिष्ठ और आरोग्य नहीं हो सकती। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि माता-पिता के बल-वीर्य का प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। इस जगह यह तर्क उठ सकता है कि क्या कभी बड़े आदमियों के पुत्र साधारण या दुष्ट नहीं होते अथवा क्या कभी क़ुदरत का ऐसा खेल नहीं हो जाता कि एक सुयोग्य पुत्र का पिता परले सिरे का दुष्ट और दुराचारी हो? ठीक है, ऐसा होना असम्भव नहीं। पर ऐसे एक-दो उदाहरणों से "जैसा बीज वैसा पौधा" वाला सिद्धान्त मिथ्या नहीं हो सकता। इसलिए यदि समाज और देश की दशा सुधारनी है, तो विवाह-संस्कार में पूर्ण सुधार करना चाहिए। सब तरह से योग्य, सदाचारी और नीरोग जोड़ी ही विवाह-बन्धन में बाँधी जाय। माता-पिता के गुण-दोष और योग्यता-अयोग्यता के साथ सन्तान का सम्पूर्ण सम्बन्ध बना रहेगा, इसलिए विवाह-बन्धन में जो बाँधे जायँ या बँधें, उन्हें भविष्य-सन्तान तथा अपने समाज और देश के सम्बन्ध में ज़िम्मेदारी पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। यदि रोगी या अयोग्य सन्तान होगी, तो उसे औषध या अन्य साधनों से सुधार लेंगे, ऐसे विचार की अपेक्षा अयोग्य विवाह एवं अयोग्य जनन को रोकना ही श्रेष्ठ और उचित है। यहाँ यह कह देना उचित है कि दोनों हिस्सेदारों (स्त्री और पुरुष) की योग्यता पर ध्यान रखना होगा। केवल यही नहीं कि पुरुष की योग्यता और वयस्कता पर तो ध्यान रक्खा जाय और स्त्री को शास्त्रों की दुहाई देकर अबोध, अपक्वावस्था में ही विवाह-सूत्र में बाँध दिया जाय। ऐसा होने से इच्छित फल मिलना असम्भव है। जनन-विज्ञान के अनुसार सन्तान पर माता और पिता, दोनों का प्रभाव पड़ता है। पर विचारने से जान पड़ेगा कि माता का प्रभाव अधिक महत्व रखता है। यद्यपि जनन-क्रिया में स्त्री और पुरुष दोनों का सहयोग है, पर बच्चे का जन्म स्त्री की कोख में ही होता है और वहीं वह ९ महीने तक रहता है। इसी प्रकार गर्भ से निकलने पर भी, बहुत दिनों तक माता का दूध ही बच्चे का पालन करता है। सन्तान की प्रारम्भिक शिक्षा भी माता ही के द्वारा

होती है। इस प्रकार माता की योग्यता की बात सहज ही में समझ में आ सकती है, और यह आवश्यक है कि माताएँ मन और तन में पूर्णरूप से योग्य हों। माता ही देश और राष्ट्र की शक्ति या कमज़ोरी की जड़ है। भारत में भयङ्कर बाल-मृत्यु के साथ ही अल्पवयस्का माताओं की मृत्यु भी विचारणीय है। इन दुखिया माताओं की दुरवस्था का चित्र कहाँ तक खींचा जाय। अपनी देह और स्वास्थ्य का जिन्हें ज्ञान नहीं, वे गर्भ के भार से लद जाती हैं और वह भार लिए हुए ही या उसे किसी तरह इस पृथ्वी पर पटक कर मृत्यु-पथ की यात्री बन जाती हैं। हमारे यहाँ ६ से लेकर ११ वर्ष की बालिकाओं के विवाह हो जाते हैं। १२-१३ वर्ष की अवस्था तो अधिक से अधिक और उच्च से उच्च है। जिस मातृत्व के भार और उत्तरदायित्व को वे बिल्कुल ही नहीं जानतीं, उसी में वे पड़ जाती हैं या किसी तरह से उस घाटी से पार हो जाती हैं। यह बहुत कम देखा जाता है कि माता अपने प्रथम प्रसूति-काल को सुख से पार कर गई हो और उसके स्वास्थ्य में कुछ न कुछ बट्टा न लगा हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माताओं की गिरी हुई दशा ही देश की इतनी अधिक बाल-मृत्यु का कारण है। जिन पर प्रकृति ने जनन का भार डाला है, वही यदि निर्बल, अयोग्य और असहाया हैं और जीवन को इस तरह बिता रही हैं, मानो रोग और अशक्ति की चक्की में पीसी जा रही हैं, तो उनसे योग्य और बलवान सन्तान की आशा करना व्यर्थ है। क्योंकि बालू की नींव पर बड़ी इमारत नहीं खड़ी हो सकती। यह निश्चय समझना चाहिए कि देश में अयोग्य सन्तान की वृद्धि का कारण अयोग्य माता-पिता ही हैं और माता-पिताओं के अयोग्य होने का एकमात्र कारण अनुचित या अयोग्य विवाह है। विवाह कोई साधारण बात नहीं है। यह एक यन्त्र है, जहाँ से होने वाली सन्तान प्रस्फुटित होती है। जब यह यन्त्र शुद्ध और सुयोग्य होगा, तो कोई कारण नहीं कि भविष्य-सन्तान तन और मन से पूर्ण योग्य और बलिष्ठ न हो।

कोमल कलिका सदृश सुकुमार बालक-बालिकाओं के माता-पिताओ! अपनी सन्तान के लिए अन्तिम ध्येय उनका विवाहित होना ही न समझो। अपनी मनोऽभिलाषा, धुन या हवस की पूर्त्ति किसी तरह अपने लाड़ले कुँवर का विवाह कर, घर में छम-छम करती हुई नन्हीं बहू लाने ही में न समझो। बल्कि यह सोचो कि आपका प्यारा पुत्र किस प्रकार चमकता-दमकता हुआ एक सितारा ही नहीं, वरन् एक प्रकाश-पुञ्ज सूर्य निकलेगा, किस तरह उसका पूर्ण शारीरिक और मानसिक विकास होगा और किस तरह वह संसार-क्षेत्र में क्षमतापूर्वक जीवन निर्वाह करने योग्य बनेगा। यदि सन्तान सब तरह से योग्य और निपुण है, तो उसके लिए कोई कठिन समस्या नहीं रहेगी।

योग्य विवाह से ही कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विवाहितों को अपनी क्षमता और आर्थिक परिस्थिति के अनुसार ही सन्तानोत्पादन की बात सुझाई जाय। बिना विचारे अपरिमित या अनावश्यक सन्तानोत्पादन से समाज की महा हानि है। इसलिए माता-पिता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उनके उतनी ही सन्तान हो, जितनी की देख-भाल और लालन-पालन वे अच्छी तरह कर सकें। यदि सन्तान लायक़ है तो एक-दो ही काफ़ी है, अन्यथा भेड़ों की क़तार से देश या समाज का कुछ लाभ नहीं। हमारे यहाँ सुपुत्र के लिए चन्द्रमा की उपमा दी गई है। कहा है कि एक चाँद अन्धकार का नाश कर देता है, परन्तु असंख्य तारागण कुछ नहीं कर सकते। पहली सन्तान अभी चलने भी न पाई कि दूसरी की तैयारी हो गई। इस तरह की वार्षिक सन्तानोत्पत्ति सन्तान के प्रति ही अन्याय नहीं है, बल्कि इससे जन्म देने वाली माता की देह भी जर्जरित हो जाती है। और जब उसका जीवन ही सुखमय नहीं है, तो सन्तान कैसे सुखी रह सकती है? माता एक को रुला रही है, दूसरे पर खीझ रही है, और तीसरे को पीट रही है। यह दृश्य भला किसे सुन्दर लग सकता है? लेखक ने देखा है कि एक स्त्री के तीस वर्ष की आयु में ७ सन्तानें हैं, जिनमें से दो-एक को छोड़ कर बाक़ी सब, जहाँ वह जाती है, उसके सङ्ग हो लेती हैं। एक बार उसने कहा—"अरे यह सारी की सारी फ़ौज मेरे साथ कहाँ जायगी?" परन्तु उसने यह न सोचा कि यह फ़ौज बनी कैसे!

यहाँ एक बात यह उठती है कि सन्तान कम या इच्छानुसार हो, यह बात क्या अपने अधिकार या वश की है? किस प्रकार सन्तानोत्पत्ति में नीति-न्यायपूर्ण

रुकावट डाली जा सकती है, इस विषय के विवेचन के लिए इस लेख में स्थान नहीं है। पर यह अवश्य कहना पड़ता है कि आजकल पाश्चात्य देशों में इस विषय की चर्चा बड़े ज़ोरों पर है और ऐसी सैकड़ों पुस्तकें छप गई हैं, जिनमें इस विषय पर बड़ी गम्भीर और विशाल विवेचना की गई है। यदि सम्भव हुआ तो कभी इस विषय पर भी लिखने की चेष्टा की जायगी। यहाँ यह लिखना अनुचित न होगा कि अगर भारत अन्य बातों में पाश्चात्य देशों का अनुकरण कर रहा है, तो उसे इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए। जो व्यक्ति अर्थ-शास्त्र एवं प्राणि-विज्ञान के तत्वों को कुछ भी समझता है, उसे इस विषय की उपेक्षा करना उचित नहीं।

कुछ भी हो, योग्य सन्तान की कामना पर कोई तर्क नहीं हो सकता। समझ में नहीं आता कि जब हम अपने पालतू जानवरों (गाय, भैंस और कुत्ते) की नस्ल तक के लिए इतना ध्यान देते हैं, एक किसान खेती के समय बीज की उत्तमता पर ध्यान देता है, तो यह कितने आश्चर्य और दुःख की बात है कि मनुष्य अपनी नस्ल के बारे में इतनी उपेक्षा करता है। इसलिए हमें यदि अपने जीवन—मानव-जीवन में सुख, सौभाग्य, स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन की स्थापना करना है, तो अपनी सन्तान की उत्तमता और श्रेष्ठता पर भी हमें ध्यान देना चाहिए और इसके लिए आरम्भ से योग्य विवाह, योग्य दाम्पत्य जीवन और योग्य सन्तान-सृजन, ये तीन बातें ही मुख्य हैं।

—मोहनलाल बड़जात्या

* * *

हमदर्दी

—❀—

किसी दिन भारतीय रमणियाँ बड़े-बड़े रणबाँकुरों को भी लोहे के चने चबवा देती थीं, पुरुषों के अक्षम होते ही स्वयं बीड़ा उठा कर कार्य-भार सँभाल लेती थीं। अपनी निर्मल प्रतिभा से वे बड़े-बड़े मनीषियों को भी निष्प्रभ कर देती थीं। परन्तु उन्हीं के लिए इन दिनों नीतिकार कहते हैं कि 'पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।' यह किसी अंश में अभी सत्य भी हो रहा है। क्योंकि नारियों का हृदय परदे के भीतर दब गया है, पुरुष-मण्डली में जाने से अनभ्यस्त हो गया है, स्वाधीनता के वायु-मण्डल में विचरण करने के सौभाग्य-सुख से वञ्चित हो रहा है, तो वह रमणी-रत्न-लोभी पुरुषों के घृणित आक्रमण को अपने तईं स्वयं कैसे सहे, कैसे रोके? इसी से वह अपने किसी सगे की देख-रेख में रह कर जीवन की शेष घड़ियाँ किसी प्रकार काट रही हैं।

स्वतन्त्रता की छत्र-छाया में जो निरतिशय आनन्द प्राणियों को प्राप्त है, वह क्या परतन्त्रता की शृङ्खला में निगडित होने पर कभी नसीब हो सकता है? भारत ग़ुलाम है सही, पर इस ग़ुलामी को दूर करने के लिए उसे हर एक पहलू पर दृष्टि-प्रक्षेप करना होगा। जिसके हृदय में स्वतन्त्रता-प्राप्ति का उत्साह टकरा रहा है, वह सर्व-प्रथम उस मूक व्यक्ति को मुक्त करने का प्रयास करे, जिसके कम्बु-कण्ठ में वह अभी भी पैशाचिक शासन का पाश फाँसे हुए है।

हाँ, अविचारित कार्य का महत्व नहीं रहता है। जन्म-दरिद्र को सहसा स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाना भी भारी भूल है। पुरुषों के बर्बरतापूर्ण व्यवहार को दृष्टि-कोण में रखते हुए ही स्त्रियों को स्वातन्त्र्य-साम्राज्य में विचरण करने का अवकाश प्रदान करना चाहिए। अभी तो वे विद्या-विहीन हैं, अतः विवेक-वियुक्त स्वतन्त्रता से लाभ होने की आशा नहीं रक्खी जाती। पूर्ण स्वतन्त्र होते ही युवतियाँ आपे से बाहर हो जायँगी, कर्तव्य की सुध-बुध खो बैठेंगी। इसलिए समय की मर्यादा को रक्षित कर, अवसर के अनुकूल स्त्रियों को सार्वजनीन जगत में जाने देना चाहिए। नहीं तो विद्या की बू-बास से दूर भगी स्त्रियों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता या घर की चहारदीवारी के भीतर एकान्त अवगुण्ठन, दोनों ही बराबर सर्वनाश की राह होंगे।

घर से बाहर निकलते समय स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य की रक्षा भी एक प्रतिबन्धक है। धर्म-शास्त्र द्वारा निर्णीत पुराने समय का पातिव्रत्य कुछ और है, उसको इन दिनों उसी रूप में बर्तना ज़रा टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह बहुशः निष्फल आदेश के पुट द्वारा ही परिपक्व है। अभी तो समय और अवस्था को सम्मुख रख कर हमें पातिव्रत्य धर्म बनाना होगा। इस परिवर्तनशील संसार में वह पातिव्रत्य धर्म किसी दिन अच्छी दशा में और

अच्छा अवश्य होगा। परन्तु उसका स्वरूप तो अब इतना विकृत हो गया है कि उसमें अब थोड़ा सा भी तथ्य अवशिष्ट नहीं है। मेरी समझ में तो इसका अर्थ होना चाहिए दम्पति का एक-दूसरे पर विश्वास और वशवर्तिता।

घर के भीतर ही जब स्त्रियों का स्वत्व इतना विनष्ट हो गया है, तो वह बाहर क्या कर सकती हैं? एक रेल-यात्रा की बात सुनें—"मैं दरभङ्गा से आ रहा था। राह के किसी स्टेशन पर एक अवगुण्ठनवती रमणी के सङ्ग दो पुरुष भी मेरे डिब्बे में चढ़ आए। एक बेञ्च पर मैं ही अकेला था। दोनों पुरुषों ने मुझको हट जाने को कहा। मेरे हटते ही उन्होंने एक चादर का परदा समूचे बेञ्च पर डाल दिया और लगे खिड़कियाँ बन्द करने। जिस-तिस प्रकार सब सामान ठीक करके वे दोनों पान खाने चले गए। इधर परदे के भीतर से 'चों-चों' की आवाज़ आने लगी। मैंने समझा कि इसके पास कोई कुत्ता होगा। पर वह अपने शागिर्द को बुला रही थी, जो कि उसके सगे भाई थे और मैंने उन्हें कुत्ता समझा था।"

ईश्वर के घर से जिसका डील-डौल जैसा है, वह तो वैसा ही सदा के लिए रहेगा। अब कृत्रिम उपाय से नई बहुओं में अनोखापन लाने का विचार बड़ी-बूढ़ियों के ही योग्य है। लम्बी बहू को सतत गर्दन झुकाए रहने का उपदेश और काली बहुओं को सज्जी-चूने का उबटन और मित मात्रा में भोजन प्रदान बड़ा ही बेढब व्यापार है। ब्याह करते समय इनकी आँखें रुपए पर रहती हैं, पर पीछे बहुओं में बड़प्पन ढूँढ़ती हैं, नहीं तो अपनी शान क़ायम रखने की नियत से उस निरीह को सता-सता कर समाज का मान जुगाती हैं।

रोटी दोनों हाथों से पकती है और प्रेम या कलह भी दो व्यक्तियों के बीच ही उपजता है। जहाँ स्त्रियाँ पति के लिए अपने चिर-लालित सुकुमार शरीर तक का मोह छोड़ देती हैं, विपत्ति की आँधी में आँखें खोले खड़ी रहती हैं, वहाँ उद्दण्ड और स्वार्थी पुरुष उन्हें साँस लेने की भी स्वतन्त्र जगह नहीं देते, बला से वह अपने हृदय की चिनगारी को गर्म आँसुओं से या कलेजे के बड़े से बड़े फफोले को फोड़ कर ही क्यों न बुझाए। पुरुष तो मनमाना करता ही रहेगा, भले ही उसके वे आचरण पत्नी के लिए ज़हरीले बिच्छू के डङ्क से हों, विषैली साँपिन की फुफकार से हों या गर्म आँच के तपाए लाल तवे से हों, पुरुषों के दिल पर कुछ भी सदमा नहीं आवेगा। वह तो अपनी पत्नी के प्रेम-कुसुम को मसल चुका है, उपहार-माला को मरोड़ चुका है। पुरुष तो अपनी शान में मस्त रहते हैं, औरों की कुछ सुनते ही नहीं। बेचारी स्त्रियाँ क्या करें, वे मन मसोसे अपने पति का मुँह ताकती रहती हैं।

—साहित्याचार्य 'मग'

* * *

आधुनिक शिक्षा पर दृष्टिपात

शिक्षा क्या है? 'बच्चों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास और उन्हें संसार में अपना जीवन सफल करने की युक्ति को शिक्षा कहते हैं।' शिक्षा वह वस्तु है, जिससे मानव, मानव कहाता है, वह सामाजिक प्राङ्गण में सभ्य समझा जाता है। शिक्षा का प्रयोजन सत्यासत्य का ज्ञान, मानसिक और शारीरिक प्रवृत्तियों की रक्षा तथा अन्तःकरण का सुधार है। जिस शिक्षा से मनुष्य उच्च चरित वाला, विकसित बुद्धि वाला, उच्च प्रवृत्ति तथा अवर्णनीय कार्य करने वाला बनता है, जिससे उसकी प्राकृतिक शक्तियों तथा रहस्य-मय इन्द्रियों का विकास होता है, और जिससे उसकी अन्तरात्मा पर अपने देश, समाज, जाति की सुन्दर मुहर अङ्कित हो जाती है और वह इन्हें उन्नतिशील बनाने की चिन्ताओं में अनवरत अवगाहन करता है—मेरी राय में वही शिक्षा आदर्श है और बड़े-बड़े राज-नीतिज्ञों ने भी वास्तविक शिक्षा को इसी प्रकार अवगत करने का प्रयत्न किया है।

प्राचीन समय से भारतीय मस्तिष्क का पोषण ऐसी ही शिक्षा से होता चला आ रहा है। इतिहास अन्वेषण करने से प्रतीत होता है कि हमारी शिक्षा आदर्श थी। और यही कारण था कि हमारे यहाँ के शिक्षित जन उत्साही, वीर, पराक्रमी, निडर, प्रतिभाशाली, पारङ्गत तथा परिमार्जित बुद्धि वाले होते थे! हमारी प्रशंसनीय शिक्षा के इस अजर-अमर प्रभाव को भला कौन नहीं जानता? यह उसी वास्तविक शिक्षा का प्रभाव था कि

राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म आदि आज भी नभ-मण्डल पर के सुन्दर सितारों की भाँति चमक रहे हैं। सचमुच भारतीय मस्तिष्क संसार की सब जातियों से अधिक ज्ञान, विज्ञान, तर्क आदि में योग्यता रखता था। इसकी प्रतियोगिता कोई नहीं कर सका। कहते हैं, यूनान विचक्षणता में अद्वितीय था, पर विचारक-दृष्टि ने भारत को ही शिक्षा-सागर बताया है। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस साम्प्रतिक शिक्षा ने हमें अन्ध-कूप में ढकेल दिया है, हमें परावलम्बी करने में कुछ उठा नहीं रक्खा है। इस शिक्षा के उत्पादक आज भी सात समुद्र पार खड़े, हम पर हँसते हैं और हमें पागल कहने में ही नहीं, वरन् बनाने में भी अपनी उच्च, पर यथार्थ में (विद्वानों द्वारा) प्रतिषेधित, सभ्यता का महत्त्व समझते हैं।

भारतवर्ष में आधुनिक शिक्षा की नींव सन् १८३५ में पड़ी। इस शिक्षा का ही कारण है कि आज हम नहीं पनप पाते। इसने हमारा ऐसा पतन किया कि हमारे स्वाधीनता के विचार हमारे हृदयों में ही दबे रहे। हमारा आत्म-विश्वास लुप्त हो गया और पश्चिमी विद्वानों ने उसे अपना कर शान्ति एवम् आध्यात्मिक निकेतन बना कर गर्व से कहा—"भारतवर्ष में ये बातें कहाँ ?" इस जाति ने इस शिक्षा का तात्पर्य हमारा विकास नहीं रक्खा है, वरन् इसका हेतु हमें क़ुली बनाने का है। यहाँ की सरकार को अङ्गरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की आवश्यकता पड़ी। इसी के निमित्त यह शिक्षा आरम्भ हुई और सीधे-सादे भारतीय युवकों को क़ुली बनाने में उसे बहुत दिनों तक कठिनाइयों का सामना न करना पड़ा।

यथार्थ में यूनिवर्सिटियों की स्थापना का तात्पर्य देश को शिक्षित बनाना न था, वरन् उद्देश्य था राज्य-रक्षा और उसके लिए क्लर्क तैयार करना। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो शिक्षा का माध्यम 'अङ्गरेज़ी' क्यों रक्खी जाती ? क्या भारतवर्ष ऐसा मूर्ख और अज्ञानी देश है कि यहाँ शिक्षा का बीज बोने के लिए भूमि अर्थात् भाषा सात समुद्र पार से लानी पड़े ? एक विद्वान का कहना है—"भाषा जाति के हृदय में छिपी हुई विद्या की निर्मल आकृति का प्रतिबिम्ब होती है। किसी जाति के ज्ञान-विज्ञान की उन्नति और प्रचार इसी पर निर्भर है।" शिक्षा से किसी देश की भाषा को हटाना, उसकी राष्ट्रीयता का नाश करना है। शिक्षा का यह अप्राकृतिक ढङ्ग आज भारत की कितनी हानि कर रहा है, कौन नहीं जानता ? हमारी मानसिक शक्ति दूसरी भाषा से अपना उतना विकास नहीं कर सकती, जितना कि वह अपनी भाषा द्वारा कर सकती है।

सच्चरित्रता, जो संसार में सब से अधिक आवश्यक वस्तु है, आधुनिक शिक्षा में इस पर ध्यान ही नहीं दिया जाता है। यही कारण है कि आजकल के शिक्षितों का चरित्र बहुधा दृढ़ नहीं होता। अपनी मानसिक वृत्तियों को क़ाबू में रखना, अपनी बुरी आदतों को सुधारना और वासनाओं पर विजयी होना, ये उत्तम चरित्र बनाने के उपाय हैं, परन्तु आधुनिक यूनिवर्सिटियाँ इधर ध्यान नहीं देतीं। वे अध्यापक के क्लास में आने पर लड़कों के खड़े हो जाने भर में ही सुशीलता की इति मानती हैं। आज भारतवर्ष दिनोंदिन अवनति की ओर बढ़ रहा है, उसका एक कारण यह भी है कि आजकल इस पहलू पर क़तई ध्यान नहीं दिया जाता।

एक विद्वान का कहना है—"मानव-हृदय सृष्टि और मनुष्यता के आदि से काल-चक्र के साथ घूमता हुआ और समय के साथ पलटे खाता हुआ, एक विशेष स्थान तक पहुँचा है। पूर्वीय जातियाँ भी एक विशेष मार्ग पर अपने विश्राम-स्थान की ओर बढ़ रही थीं। केवल यही क्यों, संसार की हर वस्तु अपनी कामना के अनुसार किसी विशेष और शान्तिमय स्थान की ओर खिंची जा रही थी। और यह भी भली-भाँति विदित है कि इन जातियों की रुचि पश्चिमीय जातियों के ठीक विरुद्ध थी और विशेषकर भारतवर्ष में रहने-सहने का ढङ्ग यूरोप के आदर्शों से बिलकुल उलटा था। किन्तु आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में उस हृदय की रुचि, उसकी प्रकृति और उसके विद्योपार्जन के स्थान को, जो सैकड़ों वर्षों के अनुभवों और खोज का फल था, धूलि में मिला दिया गया और इस बात की कुछ भी चिन्ता न की गई कि यह शिक्षा, जिसका आदर्श पूर्वीय जातियों के धर्म और फ़िलॉसफ़ी के ठीक विरुद्ध है, एक ऐसे स्वाभाविक और वैज्ञानिक विनाश का भय दिलाती है, जिसका परिणाम न केवल सरकार के लिए ही लज्जा

का कारण होगा, वरन् सारे संसार के लिए भी हानिकारक होगा।"

आजकल शिक्षा बिना शुल्क के प्राप्त नहीं हो सकती। देश में यथेष्ट शिक्षा का यथोचित प्रचार उसी समय हो सकता है, जब वह अनिवार्य और निःशुल्क कर दी जाय। सरकार ने अभी तक तो इस ओर ध्यान नहीं दिया और पता नहीं कि वह इसे विचारणीय समझती है या नहीं।

इस अप्राचीन शिक्षा ने हमारी सामाजिक रीतियों, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान को इस प्रकार ठुकरा दिया है कि मानो हमारा उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। यदि इतना ही होता तो विशेष चिन्ता न थी, पर यहाँ तो इस स्थान में विदेशी रीतियाँ काम में लाई गई हैं। क्या इससे हमारी जड़ नहीं काटी जा रही है? क्या किसी जाति को उसकी जातीय विशेषताओं से अलग कर देना, उसे नष्ट कर देने की चेष्टा नहीं है?

इन्हीं कारणों से श्री० रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

"भारतवर्ष के आदि से अन्त तक किसी कोने में एक भी ऐसा विद्यापीठ नहीं, जो किसी भारतीय अथवा विदेशीय विद्यार्थी को अपने यहाँ की उपज भेंट कर सके, इसके लिए हमें फ्रान्स और जर्मनी वालों के ही द्वार खटखटाने होते हैं।"

—श्यामनारायण बैजल

* * *

आर्थिक उथल-पुथल का समाज पर प्रभाव

गत बारह महीनों से भारत नित्य नए-नए परिवर्तनों के बीच होकर आँधी के वेग से गुज़र रहा है। इस बीच में भारत में ऐसी अनेक अतर्कित घटनाएँ सङ्घटित हुई हैं, जिनको देख कर न केवल भारत के दक़ियानूसी विचार वाले, वरन् पूर्ण सभ्यताभिमानी अप-टू-डेट विदेशी भी आश्चर्य में पड़ गए हैं। देशव्यापी महान सत्याग्रह आन्दोलन के कारण से जो आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक परिवर्तन हुए हैं, उन्हें विश्वव्यापी व्यापारिक उथल-पुथल ने और भी महत्वपूर्ण कर दिया है। यह अघटित-घटना-पटीयसी प्रकृति की लीला-चातुरी का एक प्रदर्शन मात्र है। मनुष्य सोचता है कुछ और, और होकर रहता है कुछ और। फलतः उसका बनाया हुआ प्रोग्राम सर्वथा कार्य में परिणत नहीं होने पाता। भारत की विदेशी नौकरशाही अपने को सर्व-शक्तिमान ईश्वर से कम शक्तिशालिनी नहीं समझती। इसे इस बात का पूर्णविश्वास था कि गाँधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन बात की बात में दबाया जा सकता है। इसी दिर्प में आकर इसने गत वर्ष के आरम्भ में महात्मा गाँधी के नमक-सत्याग्रह को "मूर्खतापूर्ण" कह कर उसकी उपेक्षा की थी। परन्तु इसका परिणाम क्या हुआ, यह विज्ञ पाठकों से छिपा नहीं है। दुर्दान्त नौकरशाही महात्मा गाँधी से सन्धि के लिए कितनी बेचैन थी, यह गाँधी-इर्विन समझौते के दौरान की प्रकाशित बातों से स्पष्टतया प्रकट हो चुका है।

गत बारह महीनों में अन्न की सस्ती और साथ ही साथ रुपए की मँहगी बेहद बढ़ गई है। इसको भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोग भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखते हैं। जिन्हें अन्न की बिक्री से रुपए की आमदनी होती थी, वे बहुत ही बेचैन हो रहे हैं और इसके लिए सत्याग्रहियों को कोसा करते हैं, वस्तुतः यही दशा अधिकतर ज़मींदारों और बड़े-बड़े काश्तकारों की है। नक़दी आमदनी वाले ज़मींदारों की हालत इससे बिलकुल निराली है। एक तरह से तो वे बड़े मौज में हैं; आधे रुपए से ही उनका ख़र्च चल जाता है। परन्तु लगान की वसूली में उन्हें भी दिक़्क़तें हो रही हैं। क्योंकि किसानों का हाथ ख़ाली है। खेती की पैदावारों में हर चीज़ का बाज़ार मन्दा है। किसी भी दर में गाहक पास नहीं फटक रहा है।

इधर गत पन्द्रह वर्षों से साधारण किसानों की आमदनी अपेक्षाकृत इतनी बढ़ गई थी कि उनके रहन-सहन बड़े आदमियों की तरह ख़र्चीले हो चले थे। जिन किसानों के बाप-दादे घुटने तक गाढ़े की धोती और दो गज़ की गमछी से अपने को भलामानस समझते थे, उनके बेटे-पोते घुटी-सोहार महीन धोती, बनियाइन, कुर्ता और चादर को नितान्त आवश्यक समझने लग गए। भैंस-गाय के चरवाहे भी सदा एक बनियाइन अथवा कुर्त्ता पहने ही रहने लगे, जीवन के हर काम में ख़र्च बढ़ गया। पर्व-त्योहार और ब्याह-शादी

में भी व्यय का अत्यधिक विस्तार कर दिया गया। जिन समाजों में तिलक-दहेज का रिवाज़ है, उनमें तो इस दुर्गुण की वृद्धि नित्य-प्रति आश्चर्यजनक रूप से होने लग गई और साथ ही साथ तिलक-दहेज के रुपए को नाच-रङ्ग आदि नाना भाँति के व्यर्थ के कामों में उड़ाने की चाल चल गई। चाँदी तथा सोने के गहनों का रिवाज़ भी ख़ूब ही बढ़ गया। जिन परिवारों में पहले चाँदी का गहना भी दुर्लभ था, उनमें धड़ल्ले के साथ सोने का भी प्रवेश हो चला और जिनमें चाँदी-सोने का सम्मिश्रण था, उनमें चाँदी का स्थान सोने ने ले लिया। सब से ग़ज़ब की बात तो यह हुई कि रुपए के सस्तेपन से मुक़-दमेबाज़ी का व्यसन भी बड़े वेग से बढ़ चला। तनिक-तनिक सी बात के लिए, तुच्छ स्वत्वों के लिए भी कचहरी की ओर दौड़ पड़ना साधारण-वित्त के गृहस्थों के लिए भी दैनिक कार्य का एक अङ्ग सा हो चला। हर कचहरी में हाकिमों की तादाद इन १०-१५ वर्षों में बढ़ा दी गई है। वकील-मुख़्तारों की तादाद तो यहाँ तक बढ़ गई है कि संयुक्त-प्रान्त की सरकार को कई वर्षों के लिए मुख़्तारशिप की परीक्षा स्थगित कर देनी पड़ी है।

हमारी समझ में शहरों की अभिवृद्धि का भी एक कारण रुपए का सस्तापन है। इधर १०-१५ वर्षों में बहुतेरे शहरों की जन-संख्या तथा क्षेत्रफल कई गुना बढ़ गया है। शहरों की जन-संख्या की वृद्धि तो पिछली जन-गणना से स्पष्ट रूप से विदित होती है और उनमें नए-नए आलीशान मकानों का ताँता सा लग गया है। बात यह है कि शहरों में अधिकतर दूकानदार, कचहरी के अमले और विद्यार्थी रहते हैं। जनता में जीवन की आवश्यकता की वृद्धि से दूकानों का बढ़ना, मुक़दमे-बाज़ी के बढ़ने से कचहरी के भूतों का बढ़ना तथा शिक्षा की अभिरुचि की वृद्धि से शिक्षार्थियों की संख्या की वृद्धि होना स्वाभाविक है। रुपए के सस्तेपन से साधा-रण गृहस्थों में भी ख़र्चीली अङ्गरेज़ी शिक्षा की ओर प्रवृत्ति बढ़ चली।

रुपए की सस्ती और खाद्य पदार्थों की महँगी के कारण ज़मीन की क़ीमत बेहद बढ़ चली। १०-१५ वर्ष पूर्व जिस ज़मीन का दाम १००) बीघा था, इधर उसका दाम ५००) हो गया। देश का कोई स्थान, जहाँ मनुष्य की पहुँच सम्भव थी, खेती से बाक़ी नहीं रह गया। स्मरणातीत काल से जो जङ्गल और चरागाह थे, उन पर भी भूमि-पिपासुओं की कुल्हाड़ी और कुदाली जा धमकी। सब पेशे के लोग ज़मीन की खोज में व्यस्त हो गए। साहूकार—देशी तथा मारवाड़ी—वकील-बैरिस्टर, शिक्षक, डॉक्टर-वैद्य तथा पण्डित और मौलवी—सभी ज़मीन पर फ़िदा होने लगे। उनके कारकुन रुपए की थैलियाँ बाँध-बाँध कर जङ्गलों और पहाड़ियों की ख़ाक छानने लगे। बेचारे पशुओं के मुँह का आहार छीना जाने लगा। बित्ता-बित्ता करके ग़ैर-आबाद ज़मीन आबाद हो गई। सड़क और डगर भी काट कर खेत बना लिए गए। गायों के मुँह में 'जाबी' लगा कर तङ्ग रास्तों से उन्हें हाँका जाने लगा। ग़रीबों के लिए एक गाय का पालना असम्भव हो चला। फलतः १०-१५ वर्षों से गोवंश का तीव्र वेग से ह्रास हो चला और गाय का विशुद्ध दुग्ध, घृत अलभ्य हो गया।

उपर्युक्त विवेचन से पाठक यह न समझें कि उस समय भारतीय समुदाय के सभी लोग धन-कुबेर हो गए थे और भारत से दरिद्रता सदा के लिए विदा हो चली थी। बात यह है कि रुपए की सस्ती के ज़माने में भी उन्हीं को रुपया मिला, जिनके पास उसे प्राप्त करने का पर्याप्त साधन था, जैसा कि धनोपार्जन का सदा नियम है। साधनहीन अधिकांश जनता तो उस दिन भी भूखों मरती थी, आज भी मरती है और आगे भी मरेगी। हाँ, रुपए की वृद्धि से यह बुरा परिणाम अवश्य हुआ कि पश्चिमीय सभ्यता की अन्धाधुन्ध नक़ल की धुन में मूर्ख भारतीय जनता पौष्टिक भोजन, शिक्षा-प्राप्ति आदि स्थायी लाभ के कामों पर व्यय न करके वाह्याडम्बर की ओर बह चली। उसे यह ध्यान ही नहीं रहा कि पश्चि-मीय देशों के लोग पहले भरपेट खा लेते हैं, तब अपने ठण्ढे देश के अनुकूल चुस्त पोशाक से लैस होते हैं, सिगरेट पीते हैं और मोटर या वायुयान से सैर करते हैं। भारत में तो यह एक साधारण दृश्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है कि पौष्टिक भोजनाभाव से अस्थि-पञ्जरावशिष्ट लोग भी भड़कीले पोशाक से सज कर, सिगरेट पीकर अपने को महान पुरुष समझते हैं। अस्तु।

गत बारह महीनों से शनैः-शनैः सारे संसार में और विशेषतः भारत में—कृषि तथा व्यापार की जैसी दशा हो गई है, उससे भारतीय जनता अथाह समुद्र में

पड़ गई है। अर्थ-शास्त्र-विशारद इस अननुभूतपूर्व आर्थिक स्थिति के कतिपय कारण बतला रहे हैं। परन्तु कारण चाहे जो भी हों, हमें तो इस लेख में समाज पर इस आर्थिक उथल पुथल के परिणाम का दिग्दर्शन कराना है। समाज के भिन्न-भिन्न अङ्गों पर इसका असर भिन्न-भिन्न रूप से पड़ा है। परन्तु इतना तो सबके ऊपर बीता है कि भावी आय-व्यय (बजट) का ब्योरा सबों का फ़ेल कर गया है। न केवल भारतीय तथा प्रान्तीय सरकारें ही बजट को हाथ में लेकर सहानुभूति-शून्य वर्तमान धारा-सभाओं में अरण्य-रोदन कर रही हैं और भुक्खड़ पागल कुत्तों की तरह पहले से ही कर-भार से लदी हुई दीन जनता का मांस नोचने के लिए नए-नए टैक्सों के तेज़ दाँत अपने पुराने मुँह में जड़वा रही हैं; परन्तु सामान्य गृहस्थों का भी अपने आमद-ख़र्च का अनुमान बिलकुल ग़लत हो गया। छोटे-छोटे किसानों ने अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष की फ़सल की उम्मीद पर जो क़र्ज़ ले रक्खा था, वह इस वर्ष फ़सल की क़ीमत एकबारगी गिर जाने से अंशतः भी अदा नहीं हो सका और उनको अपनी ज़मीन को महाजन के हाथ मिट्टी के मोल रेहन या क़बाला कर देने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं रह गया। ज़मीन का गाहक तो इस साल खोजने से भी नहीं मिलता है। जो बेगर्ज़ आदमी गाहक के रूप में मिलता भी है, वह ५००) रुपए की चीज़ २००) रुपए में ही लेना चाहता है। बिहार में भागलपुर ज़िले के सुदूर पूर्वीय भागों के जङ्गलों जैसी ग़ैर-आबाद ज़मीनों को जिन भू-विस्तर बुभुक्षितों ने ऊँची शरह पर ले रक्खा था और रुपए में पाँच सेर चावल की दर से पैदावार की आमदनी का हिसाब लगा कर हवाई क़िले की रचना की थी, वे उन ज़मीनों को छोड़-छोड़ कर घर भाग रहे हैं। और जगहों में भी ज़मींदारों ने अपनी ज़िरात ज़मीन को जहाँ ५०-६० रुपए बीघे की दर पर रय्यतों के साथ बन्दोबस्त कर रक्खा था, इस मन्दी के साल में आधी दर पर भी वे उन्हें लेने को राज़ी नहीं हो रहे हैं। इस विकट समय में भी कुछ मद-मत्त मालिक ऐसे हैं, जो बाक़ी मालगुज़ारी की वसूली के लिए इज़ाफ़ा के साथ रय्यतों पर अदालतों में नालिशें ठोंक रहे हैं और आँख के अन्धे ऐसे फ़र्माबरदार हाकिमों की भी कमी नहीं है, जो इज़ाफ़ा के साथ डिग्री दे रहे हैं।

जहाँ लाल मिर्च की खेती बहुतायत से होती है, वहाँ इस साल मिर्च का दाम एक तिहाई भी नहीं मिल रहा है और मिर्च को खेतों से तोड़ कर बटोरने के लिए मज़दूर भी काफ़ी तादाद में नहीं मिल रहे हैं, क्योंकि अन्य वर्ष इस काम से उन्हें पूरा पैसा मिलता था, जो इस वर्ष नहीं के बराबर मिलता है।

गोरखपुर, बलिया और बिहार के कतिपय ज़िलों से मज़दूर पूर्णिया और बङ्गाल के जूट धोने, समेटने के लिए बड़ी संख्या में जाया करते थे, सो इस वर्ष कोई बिरले ही गए, और जो गए भी सो पैसे की कमी से पैदल ही भीख माँग कर खाते-पीते लौट कर घर आए। दूसरे वर्ष उनके घर लौटने के समय की शान-शौक़त और इस वर्ष की दीन दशा अतीव करुणाजनक है।

विचार करके देखा जाय तो अधिकांश जनता को रुपए के दुर्भिक्ष और अन्न के सुभिक्ष से हानि की अपेक्षा अधिक लाभ ही हुआ है। रहन-सहन में वाञ्छनीय सादगी की ओर विवश होकर भी जनता का प्रवृत्त होना देश के लिए कल्याणकारक ही समझा जाना चाहिए। और सब से बड़ा लाभ तो यह हुआ है कि १५-२० वर्षों पहले देश में मुक़दमेबाज़ी की जो धूम मची हुई थी और दिनानुदिन इसमें वृद्धि हो रही थी, उसमें सहसा कमी हो गई है। आप किसी कचहरी में जाकर देखिए—हाईकोर्ट, ज़िलाकोर्ट अथवा सब-डिवीज़नल दीवानी या फ़ौजदारी कचहरी—सब जगह हाकिमों के इजलास, जो कुछ दिन पहले तक गुलज़ार रहा करते थे और अबा-चोग़ाधारी अजनबी जीव वकील मुख़्तार क़हक़हे लगा रहे थे—आज वहाँ मुर्दनी छाई हुई है। कुछ इजलास तो हफ़्तों बेकार ही बैठे रहते हैं और कुछ में दो-चार आदमी इधर-उधर करते रहते हैं। अधिकांश वकील-बैरिस्टर वकालतख़ानों में मातमी सूरत बनाए हुए इधर-उधर की गप्पों और सत्याग्रह की आलोचना प्रत्यालोचना में अपना समय बिता रहे हैं। भगवान करे, उनको ऐसे ही दिन नसीब होते रहें, जिससे ग़रीबों का धन-धर्म बचे।

—रामनिरीक्षणसिंह



कुमारी एलिन विलियम्स

आप अभी कुल १६ वर्ष की हैं। आपको बेला (वॉय-लिन) बजाने के लिए लण्डन के रॉयल एकाडमी के म्युज़िक बोर्ड ने छात्रवृत्ति दी है।



कुमारी कान ज़े लान

आप चीन की सुप्रसिद्ध कलाविद हैं, जो चित्रकारी और रङ्गसाज़ी के कार्य में अपना सानी नहीं रखतीं।



कुमारी ई० सी० विलियम्स

आप बरेली की इन्सपेक्ट्रेस ऑफ़ गर्ल्स स्कूल हैं। आपने हाल ही में नागपुर विश्व-विद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की है।



कुमारी डी० के० पट्टामल

आप कञ्जीवरम (मद्रास) के सरकारी स्त्री-विद्यालय की छात्री हैं। एक नाटक में यम का पार्ट करने तथा सुन्दर गाने के लिए आपने स्वर्ण-पदक प्राप्त किया है।



श्रीमती ए० पी० अडीसेशिया

आप वेलोर (मद्रास) की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और कई संस्थाओं की मन्त्रिणी तथा सभानेत्री आदि हैं।



श्रीमती काले

आप आन्ध्र राज्य की 'स्टेट एसेम्बली' की सदस्या हैं।



श्रीमती मैसी

आपको लन्दन के ट्रिनिटी सङ्गीत महा-विद्यालय ने उच्च सङ्गीत परीक्षा पास करने के लिए एक 'सिल्वर कप' प्रदान किया है।



गाँधी हस्पताल (हरचन्दराय-नगर, कराची) के प्रमुख कार्य-सञ्चालकगण



श्री० रामकुमार जी वर्मा, 'कुमार' एम० ए०

आप 'चाँद' और 'भविष्य' के हिन्दी कविता-सम्पादक और प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रतिभाशाली प्रोफ़ेसर हैं।



श्री० थु० थिन मौङ्ग

रङ्गून कॉरपोरेशन ने आपको सन् १९३१ के लिए अपना मेयर निर्वाचित किया है।

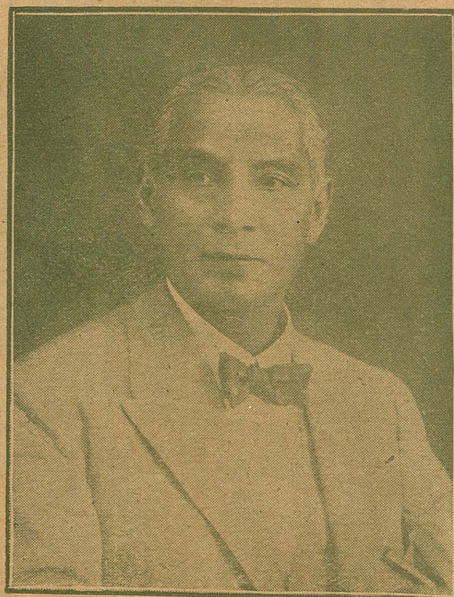


, गाँधी हस्पताल (हरचन्दराय-नगर, कराची) के आयुर्वेदिक विभाग के कुछ प्रधान कार्यकर्ता



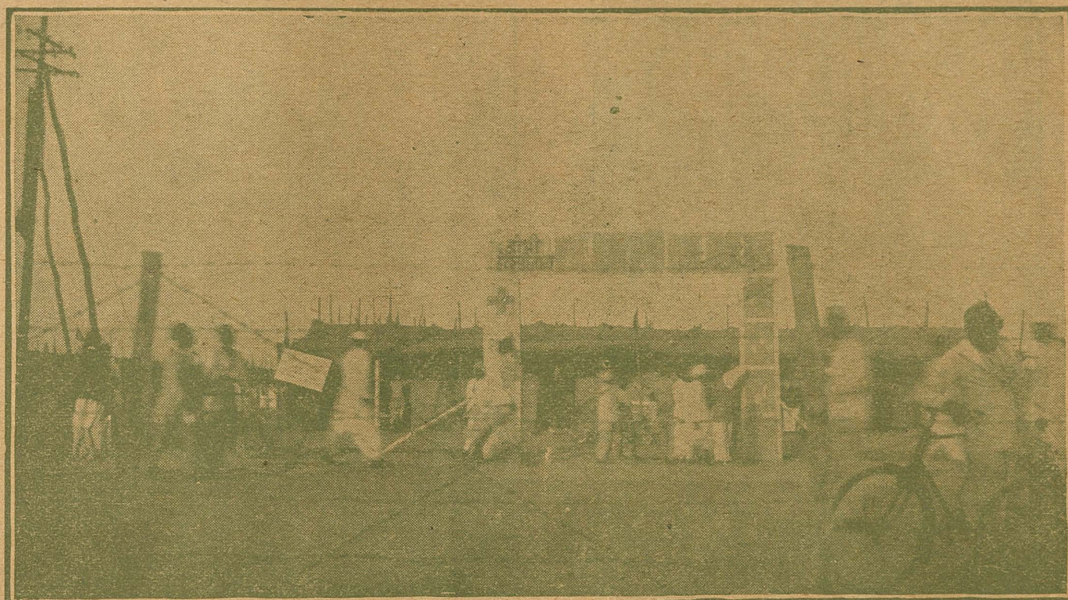
श्री० रामेश्वरप्रसाद बागला, एम० एल० ए०

आप कानपुर के विख्यात व्यवसायी हैं। सरकार ने आपको जनेवा के अन्तर्जातीय मज़दूर-सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि चुना है।



स्वर्गीय प्रिन्सिपल एस० सी० साहनी भूतपूर्व एम० एल० सी०

आप सिन्ध-प्रान्त के विख्यात सुधारक और कार्यकर्ता थे।



गाँधी हस्पताल (हरचन्दराय-नगर, कराची) का बाहरी दृश्य



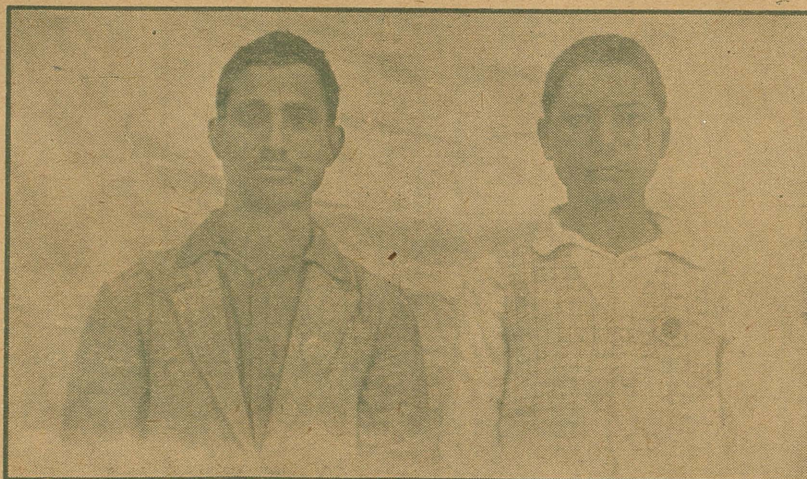
गाँधी हस्पताल (हरचन्दराय-नगर, कराची) का आयुर्वैदिक विभाग



श्री० एस० वी० पुनतम्बेकर, एम० ए०
(ऑक्सन) बार-एट-लॉ
आप काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के
प्रधान हैं और आगामी जुलाई में होने वाले
ब्रिटिश एम्पायर युनिवर्सिटी कॉङ्ग्रेस
के प्रतिनिधि चुने गए हैं।



लाला श्रीराम जी
आप भारतीय चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स के प्रधान हैं और
दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा-भवन बनवाने
के लिए आपने वहाँ की म्युनिसिपैलिटी
को १ लाख रुपए दिया है।

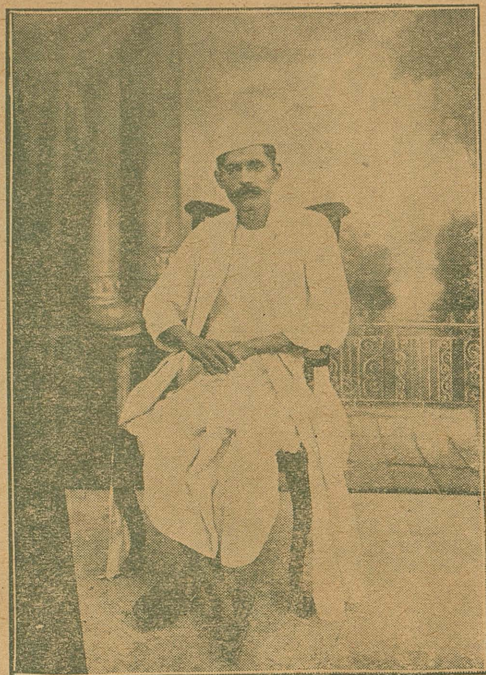


दाहिने, कॉमरेड रिछपालसिंह और बाएँ, ब्रह्मचारी कृष्णचन्द्र त्यागी—ये दोनों युवक मेरठ ज़िले के उत्साही कार्यकर्ता हैं। देश-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप जेल-यात्रा भी कर चुके हैं।



श्री० शङ्करस्वरूप भटनागर

आप आगरे के प्रमुख राष्ट्र-सेवक हैं और ६ मास का कारावास दण्ड भुगत कर हाल ही में जेल से छूटे हैं।



मुन्शी सुखदेवप्रसाद सिन्हा 'बिस्मिल'

आप उर्दू के प्रसिद्ध शायर और 'चाँद' के 'केसर की क्यारी' स्तम्भ के सम्पादक हैं।



श्री० गजानन बो० माथरे, ए० आर० आई०, बी० ए० (लन्दन)

आप माथरे क्षत्रिय जाति के एक होनहार नवयुवक हैं, जो १४वीं मई को विलायत से निर्माण-कला के विशेषज्ञ होकर लौटे हैं।



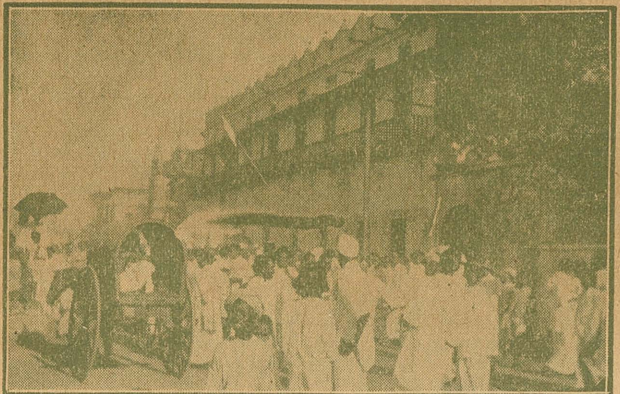
श्री० गोपाल डी० दुयूस्कर

आप बम्बई के जे० जे० स्कूल ऑफ़ आर्ट के सुप्रसिद्ध कलाविद हैं।

आगरे की स्वदेशी बीमा कम्पनी के डायरेक्टरगण। बाँई ओर से—श्री० श्रीचन्द्र जी, पं० विश्वेश्वरदयाल चतुर्वेदी, सेठ अचलसिंह जी, बाबू रामेश्वरनाथ टण्डन, पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, बाबू रामकिशोर, पं० सुशीलचन्द्र चतुर्वेदी। (इस कम्पनी ने अपना सारा काम यथासाध्य हिन्दी में ही करने का निश्चय किया है)



त्रिचनापल्ली (मद्रास) के अखिल भारतवर्षीय खादी-प्रदर्शिनी का स्वागत-समारोह।



त्रिचनापल्ली (मद्रास) के अखिल भारतवर्षीय खादी प्रदर्शिनी के उद्घाटनकर्ता आचार्य पी० सी० राय का स्वागत-समारोह।

तूतू-मैंमैं

[कविवर श्री० रामचरित जी उपाध्याय]

तू विश्व-वन्द्य गुरु है, मैं दास एक तेरा,
मैं भिक्षु हूँ विनय का, तू कल्पवृक्ष मेरा !
तू सो रहा अभी है, मैं जग गया कभी का,
तू रात देखता है, मैं देखता सवेरा ॥

❀

तू धर्म का निलय है, मैं धर्म का भिखारी,
तू कर्म का ककच[1] है, मैं कर्म का पुजारी।
तू भ्रान्ति को भगा दे, मैं क्रान्ति को भगा दूँ,
तू है निदेश-दाता, मैं हूँ निदेशकारी ॥

❀

तू है कमल-सरोवर, मैं भी रसिक भ्रमर हूँ,
तू है अजय अजर तो, मैं भी अभय अमर हूँ।
तू सत्य को दिखा दे, मैं स्वत्व को दिखा दूँ,
तू जानता विजय है, मैं जानता समर हूँ ॥

❀

तू स्वर्ण-श्रृङ्ग है तो, मैं स्वर्ण का धराधर,
तू सिंह का शिशुक तो मैं व्याघ्र के बराबर।
तू ताज राज का है, मैं साज काज का हूँ,
मैं व्याल हूँ खलों को, तू यम उन्हें सरासर ॥

❀

मैं हूँ मनोज्ञ माली, तरु, पत्र, फूल तू है,
जिस मन्त्र को जपूँ मैं, वह मन्त्र-मूल तू है।
तू प्राण-तुल्य मेरे, मैं त्राण-दण्ड तेरा,
तेरा त्रिशूल मैं हूँ, हर का त्रिशूल तू है ॥

❀

तू बन जहाँ पसीना, मैं रक्त हूँ वहीं का,
अनुरक्त तू जहाँ का, मैं भक्त हूँ वहीं का।
आधार-वेश तू है, आधेय देश मैं हूँ।
स्फुट वाक्य है जहाँ तू, मैं शक्त हूँ वहीं का ॥

❀

तू ज्योति-पुञ्ज बन जा, मैं ज्योति को जगा दूँ,
तू क्लैब्य छोड़ तन जा, मैं ज़ोर को लगा दूँ।
मैं हाथ को उठा दूँ, तू पैर को अड़ा दे,
तू भूल को भगा दे, मैं भीति को भगा दूँ ॥

❀

होगा अमर तभी तू, जब आप ही मरूँ मैं,
होगा जबर तभी तू, पर से न जब डरूँ मैं।
तू हाथ रख बनाए, मैं साथ में बना हूँ
क्या-क्या नहीं करे तू, क्या-क्या नहीं करूँ मैं ?

❀

अवलोक जो तनिक तू, मैं लोक को हिला दूँ,
तू रह खिला, खलों को—मैं धूल में मिला दूँ !
तू खोल दे दृगों को, मैं खोल दूँ हृदय को,
चाहे तू स्वत्व यदि तो, मैं स्वत्व को दिला दूँ ॥

❀

तू धर्मधीर रह तो, मैं कर्मवीर होऊँ,
तू अट्टहास कर तो, मैं दास्य-दाग़ धोऊँ।
संस्कृति न भूल निज तू, मैं भी तुझे न भूलूँ,
सोना न फिर कभी तू, मैं फिर तुझे न खोऊँ ॥

❀

तू ही मही-मुकुट है, तेरा लकुट प्रबल मैं,
तू नेम का नृपाकर, हूँ नेम पर अटल मैं।
तू शूर-सङ्घ-शासक, मैं क्रूर-सङ्घ-नाशक,
रण-केलि में कुशल तू, अन्याय को अनल मैं ॥

[1] —आरा



अनासक्त

[श्री० ऋषभचरण जी जैन]



पहले मेरी बात सुनिए !

हिन्दुस्तान में दुनिया-भर से ज़्यादा योगी-तपस्वी या भिखारी क्यों हैं ?

अर्थ-शास्त्री कह सकते हैं, अर्थ-कष्ट है ; धर्म-भीरु कह सकते हैं, इस अध्यात्म-भूमि का प्रभाव है ; अन्ध-श्रद्धालु कह सकते हैं, भारत पर भगवान का विशेष अनुग्रह है !

यह सब ठीक है या ग़लत, मैं यह नहीं कहता। मैं जो कहता हूँ, वह यह है कि एक बड़ा कारण और भी है। भारतवासियों की पारिवारिक अवस्था सबके लिए एक खुला पृष्ठ है। स्त्रियों की अशिक्षा और पुरुषों की असहिष्णुता के फल-स्वरूप जो वीभत्स कलह हर जगह, हर रोज़ देखा जाता है, वह मजबूर कर देता है, अधीर और स्वतन्त्र पुरुषों को, कि वे घर-बार छोड़ दें। फिर घर-बार छोड़ देने के बाद गेरुए कपड़ों के साथ पूजा, शान्ति, मुक्ति का जो सहज, सान्निध्य दिखाई देता है, वह योगी-तपस्वी-भिखारीपन की तरफ़ सीधा रास्ता दिखाता है।

मैं भी ऐसा ही योगी, तपस्वी या भिखारी था। तीर्थ घूमे, नदियाँ लाँघीं, जटा-जूट-धारियों के दर्शन किए, दिग्गज विद्वानों से भेंट की; योग, प्राणायाम, समाधि—सभी का उपयोग किया; पर न ब्रह्म में लय होने का उपाय सूझा, न भगवान के दर्शन हुए, न चित्त को शान्ति मिली। यह सब कुछ क्यों न हुआ, इसका कारण भी समझ में नहीं आया।

जब कोई मेरे मर्ज़ की दवा न कर सका, तो चलता-चलता मैं एक गाँव में पहुँचा।

एक हाथ में कमण्डल, दूसरे में लाठी, दाढ़ी बालिश्त भर की, जटा गज़ भर की, कपड़े गेरुए और पैर नङ्गे !

गाँव में जाकर एक दर पर अलख जगाई।

मेरी बात ख़त्म होती है।

अब आगे की बात सुनिए।

२

गाँव में स्वामी जी की चर्चा सुनी, तो सीधा चल दिया। कोस-भर पर एक कुआँ, शिवालय और कुटिया थी। इसी कुटिया में स्वामी जी थे।

स्वामी जी को देख कर आप अचरज करते या न करते, पर मैंने ज़रूर किया। न जटा थी, न मृगछाला, न गेरुए कपड़े थे, न कमण्डल, न धूनी थी, न चिमटा था।

गाढ़े का फटा-सा कुर्ता था, जाँघों पर अँगौछा लिपटा हुआ था, ज़मीन पर टाट पड़ा था और आलथी-पालथी मारे, बैठे गुनगुना रहे थे।

मैंने नमस्कार किया और बैठ गया।

स्वामी जी ने हँस कर कहा—कहो भाई, किधर से आ रहे हो ?

जिधर से आया था, बता दिया।

"आजकल तो परभी के दिन हैं, तीर्थों पर ख़ूब रौनक़ होगी, ख़ूब भीड़-भड़क्का रहता होगा ?"

स्वामी जी की बातों में योग की बू न थी, तो भी वे मुझे भा गईं।

थोड़ी-थोड़ी धर्म-चर्चा चली और मैंने कह दिया—महाराज, मुझे शान्ति नहीं मिलती। मैंने वर्षों योग की कठिन क्रियाओं का अनुष्ठान किया है, हफ़्तों भूखे-प्यासे रह कर निर्जन बनों में तपस्या की है, माघ-पौष की रातों में ठण्डे पानी में घुस कर इस अधम शरीर को कष्ट दिया है, पर फिर भी मुझे भगवान तक पहुँचने का रास्ता दिखाई न दिया।

मैंने स्वामी जी को सारी गाथा सुना दी।

सब कुछ सुन कर स्वामी जी ने कहा—भाई, तुम तो ख़ुद विद्वान हो, मैं तुम्हें क्या बताऊँ ?

मैंने हठ किया तो उन्होंने शिर झुका कर कहा—भाई, मेरी राय में तो सेवा और श्रद्धा ही मुक्ति की तरफ़ ले जाती है !

यह ज़रा सी बात जैसे दिल को छू गई और मैं वहीं रहने लगा।

३

सेवा का पाठ पढ़ने लगा। सुबह होती और गाँवों की तरफ़ भीख माँगने निकल जाता। दिन में स्वामी जी के पास बैठता और रामायण सुनता। बस, यह रामायण ही हमारी धर्म-चर्चा या अध्ययन का विषय थी। इससे आगे, मैंने न कभी स्वामी जी को सांख्य की बात बोलते सुना, न वेदान्त की, न दर्शन की, न उपनिषद की। कभी मैंने कुछ पूछा भी, तो उन्होंने बताया नहीं।

मेरा पापी मन! कुछ दिन रहते-रहते शङ्का होने लगी, स्वामी जी का अध्ययन कुछ नहीं है।

एक दिन मेरे मुँह से निकल गया—स्वामी जी, उपनिषद कै होते हैं?

स्वामी जी ने स्थिर नेत्रों से मुझे ताका और फिर मेरी पीठ सहलाते हुए खिलखिला कर हँस पड़े।

आपको कैसे बताऊँ—मैं कितना लज्जित हुआ।

भीख माँग कर एक दिन लौट रहा था। रास्ते में क्या देखता हूँ कि दो क़साई एक गाय को मारते हुए ले जा रहे हैं।

मैंने उन्हें ललकारा। वे ठहर गए। गाय दयार्द्र नेत्रों से मेरी तरफ़ ताकने लगी। मेरी आँखों में आँसू भर आए। मैंने क़साइयों से कहा—इसे कहाँ ले जाते हो?

मैं अकेला था, वे दो थे। एक ने अकड़ कर कहा—ले जाते हैं—जहाँ ले जाया करते हैं!

मेरा रक्त खौल उठा और मैंने लाठी उठा कर कहा—अरे दुष्टो! देखें, कहाँ ले जाते हो।

पास ही एक चरवाहा बकरियाँ चरा रहा था। वह झट भागा हुआ आया और मुझे पहचान कर उसने हाथ जोड़े।

सब माजरा सुना तो उसने कहा—महाराज, आप गाय ले जायँ। मेरे रहते कोई आप पर आँख नहीं उठा सकता!

गाय का रस्सा मैंने थाम लिया, तो उसने क़साइयों से कहा—जाओ, यह मेरा रेवड़ चर रहा है, छाँट लो, चार बकरियाँ।

मैं गाय को लेकर कुटी में आया। स्वामी जी ने पूछा तो ख़ुशी-ख़ुशी सारा क़िस्सा सुनाया।

सुनते ही स्वामी जी उदास हो गए और भीतर जाकर चटाई पर लेट गए।

उस दिन उन्होंने न कुछ खाया न पिया, न बोले और न रामायण का पाठ किया।

स्वामी जी के इस भाव का अर्थ मेरी समझ में ख़ाक न आया।

४

स्वामी जी अँधेरे मुँह ही नित्य-कर्म से छुट्टी पाकर आ जाते थे। अगले दिन जब वे आए तो बोले—भाई, गाय भूखी होगी, कुछ प्रबन्ध करो।

मैंने सिर झुका कर कहा—महाराज, रात को ही गाँव से दाना ले आया था।

सुन कर स्वामी जी चुप हो गए, तो मैंने कहा—महाराज, मुझसे क्या अपराध हुआ?

स्वामी जी ने हँस कर पूछा—कैसा अपराध भाई?

"महाराज, आपने कल अन्न-जल ग्रहण न किया, पाठ......।"

स्वामी जी सहसा गम्भीर हो गए और टाट पर बैठ कर बोले—देखो भाई, तुमने तीन भूलें कीं।

मैंने हाथ जोड़ कर पूछा—क्या महाराज?

स्वामी जी बोले—देखो भाई, गाय के लिए तुम्हें क्रोध क्यों हुआ?

"महाराज, वे उसका वध कर देते!"

"क्यों भाई, तुम तो विद्वान हो, तुम यह नहीं जानते कि गाय का वध नहीं हो सकता था!"

स्वामी जी की बात सुन कर मैं सिहर उठा। बोला—हाँ, महाराज, आत्मा अमर है।

"यह समझ कर भी तुमने भगवान के काम में हस्त-क्षेप क्यों किया? तुम तो विरक्त हो, तुम्हें इन बातों से क्या प्रयोजन?"

मैं बोल न सका।

"फिर दूसरी भूल की! एक गाय के बदले चार निर्दोष बकरियों की बलि देने का तुम्हें क्या अधिकार था? तुम्हें गाय का इतना मोह कैसे हो गया? तुम तो संन्यासी हो, प्राणि-मात्र से प्रेम करना तुम्हारा धर्म है;

तुमने क्यों उन बकरियों पर ऐसी निर्दयता का परिचय दिया?"

जैसे किसी ने अज्ञान का पर्दा फाड़ दिया।

"फिर देखो भाई, तीसरी भूल तुमने और की। तुम तो संसार को त्याग चुके हो, तुम्हें गाय-भैंस रखने से क्या प्रयोजन? यह तो गृहस्थों का काम है, तुम तो भीख माँग सकते हो, उपदेश दे सकते हो और तपस्या कर सकते हो। तुम्हें क्या ज़रूरत है दूध की और गोबर की—और तुम क्यों अपना समय गाय की परिचर्या में नष्ट करोगे?"

मैंने स्वामी जी के एक नए रूप का दर्शन पाया। आँखों में आँसू भर कर बोला—प्रभो! मुझसे बड़ा अपराध हुआ? मुझे क्षमा करो।

स्वामी जी हँस पड़े और बोले—भाई, मैं इस सम्बोधन के उपयुक्त नहीं हूँ, न तुमने मेरा कोई अपराध किया है, जिसके लिए मैं तुम्हें क्षमा करूँ। तुमने जो भूलें की हैं, उनका फल तुम्हीं भोगोगे, मैं किसलिए क्षमा करूँ।

मैंने कहा—महाराज, भला आपने किसलिए कष्ट भोगा?

"कैसा कष्ट?"

"आपके कल के मानसिक कष्ट का मैं अनुमान कर सकता हूँ।"

स्वामी जी क्षण भर को चुप हुए, फिर मुस्कुरा कर बोले—मैंने भी एक भूल की थी, उसी का फल था।

"क्या भूल महाराज?"

उन्होंने हँस कर कहा—तुम्हें यहाँ ठहराया था।

* * *

थोड़ी देर बाद मैंने कहा—महाराज, गाय को चरवाहे के घर छोड़ आता हूँ।

स्वामी जी ने संक्षेप में कहा—नहीं।

५

उनके ज्ञान पर मेरे पापी मन में जो शङ्का होने लगी थी, उस दिन की घटना से वह दूर हो गई और मैंने अधिक श्रद्धा और विश्वास के साथ स्वामी जी की सेवा में समय बिताना शुरू किया।

गाय हमारे पास ही रहती रही। मैं तो सुबह उठते ही भीख माँगने निकल जाता था, इसलिए सानी करने और दाना वग़ैरा भिगोने का काम स्वामी जी ने अपने ज़िम्मे लिया। बड़े प्रेम के साथ, हँसते-हँसते स्वामी जी अपना काम करते थे।

कुछ दिनों में गाय ने एक बछड़े को जन्म दिया।

इस बछड़े और गाय पर स्वामी जी का इतना स्नेह हुआ कि उनके जङ्गल से लौट आने तक स्वयं भोजन ग्रहण न करते। सुबह-शाम अपने सामने बछड़ा खोल कर चारों थनों का दूध पिलाते और सन्ध्या-समय कभी-कभी घण्टों गाय-बछड़े का शरीर सहलाते रहते।

एक दिन मैं भीख लेकर दोपहर को लौटा। स्वामी जी टाट पर नङ्गे बदन बैठे थे। हाथ में वही फटा कुर्ता था और सीवन में से ढूँढ़-ढूँढ़ कर वे जुएँ मार रहे थे।

स्वामी जी का काम मुझे पसन्द न आया और मुँह फेर कर भिक्षा की झोली मैंने कोने में रख दी।

अपना काम ख़त्म कर, स्वामी जी ने मिट्टी मल कर हाथ धोए और निर्विकार भाव से हँस कर बोले—भाई, आज तो देर हो गई।

मैंने कुछ कुढ़ कर कहा—जी हाँ, महाराज!

दिन भर मेरा मन ख़राब रहा। आख़िर रह न सका और सन्ध्या-समय पूछ ही बैठा—स्वामी जी, आप क्षमा करें तो एक प्रश्न पूछूँ?

स्वामी जी हँस कर बोले—पूछो भाई!

"आप आज जुएँ......जुओं की हत्या कर रहे थे, क्या यह उचित था?"

स्वामी जी ने कहा—उचित ही था।

"महाराज, मुझे क्षमा करें।"—मैंने कहा—"संन्यासियों को तो जीव-मात्र पर अपार दया करनी चाहिए, आप तो स्वयम् सब कुछ जानते हैं, मैं मूर्ख आपको क्या बताऊँ। यदि कोई जीव संन्यासी का अहित भी करे तो संन्यासी उसके उपकार का ध्यान रक्खे।"

स्वामी जी हँसे और कहने लगे—मैंने भी तो जुओं के उपकार का ही ध्यान रक्खा!

मैं समझा, स्वामी जी उपहास कर रहे हैं। पर उपहास करते तो यह पहला मौक़ा होता। अतएव मैंने हाथ जोड़ कर संशयात्मक स्वर में कहा—मैंने नहीं समझा महाराज!

"देखो भाई, अगर जुओं को मार न देता, तो

धरती पर फेंकता और धरती पर उनको तड़प-तड़प कर और कष्ट पाकर मरना पड़ता।"

मैंने रुकते हुए कहा—तो धरती पर ही क्यों फेंकते?

स्वामी जी 'हा! हा!' कर हँस पड़े और बोले—तो क्या उन्हें अपना रक्त पिला-पिला कर पालता?

मैंने कुछ सहम कर कहा—महाराज! अगर वस्त्र उतार कर अलग रख दिया जाता?

"नहीं भाई, तो और भी अनर्थ होता। अधिक जुएँ पैदा होतीं, और अब जो मेरे हाथों पाँच जुओं को इस योनि से छुटकारा मिला है, तब पचास जीव तड़प-तड़प कर मरते।"

मेरा संशय तब भी न मिटा, तो उन्होंने कहा—देखो भाई, तुम्हारा संशय न मिटे तो आश्चर्य नहीं। बात यह है कि जिस शरीर का अपनी या दूसरी आत्मा के लिए कोई उपयोग नहीं, मैं उसे व्यर्थ समझता हूँ, और उसकी उस योनि को समाप्त कर देने में कोई पाप नहीं देखता हूँ। एक साधु की कहानी तुमने भी सुनी होगी कि उसने दीपक में गिरे हुए भौंरे की बार-बार रक्षा की और भौंरे ने बार-बार उसे काट खाया। पर भौंरे का उपयोग कम से कम उसके लिए तो था ही। दीपक से निकल कर वह उड़ तो सकता ही था, अपनी रक्षा करने की कुछ शक्ति तो उसमें थी ही, पर जुएँ में वैसी कोई बात नहीं है, इसीलिए मेरा मन उसे मार देने से नहीं हिचकता। हाँ, उसे मारते वक्त मैंने यह सब विवेचना नहीं की थी, पर मेरा तो यह विश्वास है कि आदमी का मस्तिष्क, बिना विवेचना के ही—क्षण-मात्र में—कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान करा देता है। सो भाई, मुझे तो अपने काम में कुछ पाप दिखाई नहीं देता।

स्वामी जी की बातों से मेरे पापी मन को पूरा सन्तोष न हुआ, तो भी मैं चुप हो गया।

६

स्वामी जी के पास रहते-रहते मुझे एक बरस हो गया, तो भी चित्त को शान्ति न मिली। मैं कितनी बार अपने पापी मन को धिक्कार दूँ कि मुझे स्वामी जी के ज्ञान पर पुनः संशय होने लगा।

एक दिन एक अहीर के घर में भिक्षा लेने गया। उसकी स्त्री होती थी, तो भिक्षा सदा ही मिल जाती थी। उस दिन स्त्री तो गई थी मैके—अहीर का जवान लड़का घर में बैठा था। मैंने भिक्षा का सवाल किया।

लड़के ने कहा—साधु जी, क्या बनाओगे—भिक्षा का?

"बाबा, पेट भरेंगे।"

"तो आ जाओ, रोटी तैयार है, लगाओ भोग।"

"ना बाबा, स्वामी जी जब तक न खाएँगे, तब तक मैं कैसे खा सकता हूँ?"

"कौन स्वामी जी?—सिवाले वाले?"

"हाँ, बाबा!"

लड़का 'हो! हो!' करके हँस पड़ा और बोला—अरे बाबा, क्यों उस पाखण्डी के चक्कर में पड़े हो! आओ, भोग लगाओ और अपना रास्ता लो।

"बाबा, क्यों किसी को गाली देते हो?"

"अरे साधु जी, वह तो पूरा पाखण्डी है, आज सारी पोल खुल गई।"

मैंने चकित होकर पूछा—कैसी पोल बाबा? साधु लोगों को पोल से क्या काम?

"ओहो! सुनो तो साधु जी, तुम कब से निकले हो?"

"सवेरे से निकला हूँ।"

"कहाँ-कहाँ होकर आए हो?"

मैंने गाँवों के नाम बता दिए।

"ओहो! तभी! देखो, सुनो बाबा, अभी घण्टे भर पहले की बात है, मैं उधर जा निकला।"

मैंने जिज्ञासु नेत्रों से उसे ताका।

"वहाँ झोपड़ी में स्वामी जी के पास एक सुन्दर सी छोकरी बैठी थी। स्वामी जी हँस-हँस कर उससे बातें कर रहे थे। मैंने आस-पास से कई आदमियों को बुला कर वह तमाशा दिखा दिया।"

मेरा अचरज और बढ़ा।

"लोगों ने देखा। मैंने कहा—'इसकी मरम्मत होनी चाहिए', पर किसी की हिम्मत न पड़ी। कहने लगे—'आज पञ्चायत में फ़ैसला किया जायगा कि कोई इसको भीख न दे!' सो बाबा, अब तुम जाओ, क्या लोगे पाखण्डी के पास जाकर! तुम भोले हो,

तुम्हें भी उसने फँसाया जान पड़ता है। जाओ, अब तुम्हें कल से भीख भी नहीं मिलेगी !"

मैं संशय में डूबा हुआ वापस लौटा।

७

कुटी पर वापस आकर देखा—अहीर के लड़के की बात सच थी। स्वामी जी बैठे हुए एक नवयुवती को रामायण सुना रहे थे। युवती फटी धोती पहने, टाट पर उकड़ूँ बैठी, भक्ति-भाव से रामायण सुन रही थी।

मुझे देखते ही स्वामी जी ने पोथी बन्द कर दी और युवती की तरफ़ देख कर कहा—रमा ! ले भाई आ गए ! अब दोनों मिल कर झटपट भोजन तैयार कर लो।

युवती का रङ्ग साँवला था, बाल घुँघराले थे और आँखें बड़ी-बड़ी थीं। उम्र कोई बीस वर्ष की होगी।

हम दोनों ने मिल कर चुपचाप रसोई तैयार की। दोनों ने क्यों कहूँ, उसी बेचारी ने सब कुछ किया। मैंने तो मन ही मन अचरज करने, बार-बार उसे देखने और रह-रह कर बाहर-भीतर आने-जाने में ही सारा समय बिता दिया।

साँझ को युवती गई गाय-बछड़े की देख-रेख में, और नत-मस्तक, विस्मय-विमुग्ध, मैं बैठा, स्वामी जी के पास !

सहसा उन्होंने पूछा—क्यों भाई, आज चुप कैसे हो ?

मैं बोला—महाराज, यह कन्या कौन है ?

"कन्या नहीं है भाई"—स्वामी जी ने मुस्कुरा कर कहा, और तीन अचरज की बातें मुझे बताईं।

"यह भङ्गी की छोकरी है। यह वेश्या-वृत्ति कर चुकी है ! मैंने इससे ब्याह कर लिया है !"

और उन्होंने संक्षेप में वह कथा भी सुनाई, कि कैसे वह दर-बदर मारी-मारी फिरती उन तक पहुँची।

मैं कुछ देर सिर झुकाए बैठा रहा, फिर सहसा बोला—स्वामी जी ! स्वामी जी !!

"हाँ भाई !"

"आपने मेरा धर्म भ्रष्ट कर दिया !"

"क्या ? धर्म-भ्रष्ट ? कैसे भाई ?"

"भङ्गिन के हाथ का भोजन खिला कर !"

स्वामी जी हँसे और बोले—भाई, तुम यह क्या कहते हो ? तुम्हारा धर्म कैसे भ्रष्ट हो गया ? अरे मेरे भाई, तुम प्रभु की एक सन्तान से ऐसी घृणा क्यों करते हो ? उसमें क्या नहीं है, जो तुममें है ? अरे भाई, तुम्हारा धर्म कितना निर्बल है, जो भङ्गिन के हाथ का भोजन ग्रहण करने से भ्रष्ट हो गया ! देखो, इस भङ्गिन में कोई बुराई नहीं है, बुराई तुम्हारे मन में है ! भाई, मैं तुम्हें समझाता हूँ। देखो, जब तक तुम्हें पता नहीं था कि यह भङ्गिन है, तब तक क्यों नहीं तुम्हें ग्लानि हुई ? क्यों नहीं तुम्हें धर्म-भ्रष्ट होने की आशङ्का हुई ? क्यों नहीं तुम्हारे धर्म ने या तुम्हारे मन ने तुम्हें सचेत कर दिया ? हे मेरे भाई, तुम अभी भगवान से कितनी दूर हो !

स्वामी जी की बात मन में लगती सी मालूम हुई।

"देखो भाई", वे कहते रहे—"यह वर्ण-व्यवस्था का झञ्झट तो गृहस्थों तक ही क्षम्य है, हम तो साधु हैं, संन्यासी हैं, हमने तो अपने आपको जाति-सम्प्रदायों के जञ्जाल से परे कर लिया है, हमारे लिए तो बनिया, ब्राह्मण, भङ्गी, चमार, सभी एक हैं, हमारे निकट तो सभी एक प्रभु की सन्तान हैं। यह छूत-छात का धर्म तो गृहस्थों तक ही सम्भव है—हमें तो उसकी कल्पना भी न करनी चाहिए। हमारे धर्म से उसका कुछ भी सम्पर्क नहीं है। हे भाई, अगर तुम्हारे मन में ऐसा भाव पैदा हुआ है, तो तुम अपने आपको धिक्कारो। तुम्हारी आत्मा अभी उज्ज्वल नहीं हो सकी है, तुम साधु बनने के उपयुक्त नहीं हो, तुम कदापि भगवान के प्यारे नहीं बन सकते। यह तुम्हारी सब से बड़ी दुर्बलता है भाई, इसे निकाल डालो।"

स्वामी जी की बातों ने मेरा मन जैसे साफ़ कर दिया। मुँह से मेरे कुछ न निकल सका और मैं केवल झुक कर रह गया।

८

अगले दिन सुबह मैं भीख माँगने न गया। दस बजे स्वामी जी जप करके उठे, तो मुझे देख कर बोले—कहो भाई, आज पेट की चिन्ता नहीं है क्या ?

मैं असली बात न कह कर कुछ अण्ट-शण्ट जवाब देना चाहता था, कि कई आदमी झोपड़ी में घुस आए।

ये लोग आस-पास के गाँवों के प्रमुख पुरुष थे। आकर सबने स्वामी जी को नमस्कार किया, और बैठ गए।

रमा कुएँ पर थी, इस भीड़ को देखा, तो झोपड़ी के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई।

जब सब बैठ गए, तो स्वामी जी हँस कर बोले—कहो भाइयो, कैसे कृपा की?

आगन्तुक एक-दूसरे को ताकने लगे, तब एक ने हिम्मत बाँध कर कहा—देखिए स्वामी जी...

"हाँ भाई!"

"आपसे कुछ कहना है!"

"कहो भाई!"

उसने एक बार रमा को और दूसरी बार मुझे दिखा और कहा—अगर अकेले में...

स्वामी जी बोले—कहो भाई, अकेले-दुकेले क्या—साधु को किसका छिपाव? साधु को किसका डर? कहो, साधु का सब काम जग-ज़ाहिर होता है।

उन आठों आदमियों की वज़ा और चेष्टा अलग-अलग थी। दो तो जैसे स्वामी जी के दुश्मन ही बन कर आए थे, दो जैसे उनके समर्थक और भक्त थे, दो मानो ज़बर्दस्ती चले आए थे, और एक-दो ऐसे जान पड़ते थे, जो बहुमत के साथ अपनी राय मिला देने को तैयार थे।

जो दो भक्त जान पड़ते थे, उनमें से एक का नाम न्यादर था और दूसरे का लालचन्द। स्वामी जी की बात सुन कर दोनों ने एक दूसरे को, और फिर बाक़ी सबको देखा, और दोनों मानो प्रसन्न हो गए।

मैं तो बैठा रहा, पर अपनी चर्चा चलती देख रमा खड़ी न रह सकी और चुपचाप कुएँ की तरफ़ चल दी।

उन आठों में से जब किसी की जीभ न खुली, तो स्वामी जी बोले—हाँ, भाइयो, बोलो, क्या आज्ञा है?

वह जो दो दुश्मन बन कर आए थे, उनमें से एक ने कहा—देखिए स्वामी जी, आप साधू हैं, तो साधू की तरह रहिए!

"साधू क्या—और साधू की तरह क्या भाई, मैं तो जैसा हूँ, उसी तरह रहता हूँ।"

उसने शायद ठीक अभिप्राय नहीं समझा, बोला—"हाँ, यहाँ तो—आप इस तरह रहने नहीं पाएँगे!"

"कैसे रहता हूँ मैं भाई?—कैसे मुझे रहना चाहिए?"

उसके साथी ने कहा—अजी मैं कहता हूँ साफ़! सुनिए, देखिए, आप इस लड़की को क्यों टिकाए हुए हैं? हम यह पूछते हैं।

"भाई, मैं उसे टिकाना चाहता था, वह टिकना चाहती थी, इसी से तो।"

"हाँ तो, आप इसे टिका नहीं सकेंगे!"

लालचन्द और न्यादर के मुँह पर इस अशिष्ट बोल-चाल को सुन कर, क्रोध और ग्लानि का भाव उदय हो आया और बाक़ी सब कौतूहल प्रकट करने लगे।

स्वामी जी उसी भाव से बोले—क्यों नहीं टिका सकूँगा भाई? प्रभु का एक प्राणी मेरे आश्रय में आता है, मुझे क्या अधिकार है, उसे दुतकारने का?

न्यादर और लालचन्द भक्तिमय हो उठे।

"तो आप तो साधू ठहरे; आपको तो औरतों से अलग ही रहना चाहिए। आपने इसे क्यों ठहराया?"

"अरे भाई, सभी उस प्रभु के खिलौने हैं, क्या औरत, क्या मर्द। साधु इस बात की तमीज़ करे तो उसकी कमज़ोरी है। मेरे लिए औरत-मर्द का सवाल तो पागलपन है।"

अब दूसरे ने कहा—देखिए स्वामी जी, आप चाहे साधू हों, चाहे महात्मा—आपको लोक-लाज का डर ज़रूर रखना होगा। कल दस गाँवों के पञ्चों ने मिल कर यह फ़ैसला किया है कि आप इस लड़की को हटा दें।

"अरे भाई लोगो, तुम कैसी बात करते हो! साधू की लोक-लाज तुम्हारी लाज जैसी तो नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ अपनी लोक-लाज का भय उसे दिखाते हो? उसे तो लाज भगवान की है, या अपनी आत्मा की! जब दोनों की प्रेरणा है, तो उसे किस का डर?"

लालचन्द और न्यादर प्रसन्न हो उठे। दोनों विरोधी एक साथ बोले—स्वामी जी, ये बातें आपकी फ़िज़ूल हैं, आपको पञ्चों का कहा मानना ही पड़ेगा!

जो दो बहुमत के साथ थे, अब मौक़ा देख कर बोले—जी हाँ, पञ्चों का कहा तो मानना ही पड़ेगा।

जो दो ज़बर्दस्ती आ गए थे, उन्होंने भी क़रीब-क़रीब ऐसा ही कहा।

लालचन्द क्रुद्ध हुआ, न्यादर संशय में पड़ गया।

स्वामी जी हँस कर बोले—भाई, साधू को क्या लेना है पञ्चों से ! क्या ग़रज़ है पञ्चायत से ? उसे तुम क्यों बेकार को भयभीत करना चाहते हो ?

"तो फिर पञ्चों का कहा नहीं करोगे ?"

"कैसे करूँ भाई ? प्रभु का कहा करूँगा—पञ्चों का कैसे ? प्रभु की प्रेरणा से—अन्तरात्मा की आज्ञा से ही मैंने उसे ग्रहण किया है।"

"क्या किया है ?"

"ग्रहण किया है भाई, मैंने उससे ब्याह कर लिया है।"

विरोधियों में सनसनी फैल गई है। न्यादर चौंक पड़ा, लालचन्द अचरज में पड़ गया।

पूछा गया—ब्याह कर लिया है, जी ललचा गया...!

"ब्याह किया है, पर जी तो नहीं ललचाया भाई, साधू के मन ने जैसा कहा, उसने वैसा ही किया।"

"बस, अब 'साधू' नाम को कलङ्क न लगाओ—तुम दुष्ट हो—अधम हो !"

"यह शरीर तो अधम ही है भाई, जब तक यह आत्मा को स्वतन्त्र न करेगा, मैं अधम ही रहूँगा।"

लालचन्द का संशय दूर होने लगा !

विरोधियों ने कहा—बस, ज़्यादा ढोंग न फैला ! पापी कहीं का ! बोल, इसे छोड़ेगा ?

"तुम क्यों अपनी जीभ ख़राब करते हो भाई ?"

"अच्छा, बक मत ! बोल, छोड़ेगा ?"

"कैसे छोड़ सकता हूँ भाई ?"

"अच्छा रे पाखण्डी, मत छोड़ ! याद रख, तुझे किसी घर से भीख न मिलेगी !"

"प्रभु की इच्छा !"

"हम शिवाले का ताला बन्द कर देते हैं, शाम को पुजारी आ जायगा। शिवाले के चौतरे पर चढ़े तो जान से हाथ धोओगे !"

"भगवान तुम्हारा भला करें !"

सब उठे, लालचन्द भी उठा—पर जैसे भक्ति और दया से गद्गद हो रहा था ! स्वामी जी की तरफ़ एक बार देखा और उठ कर चला गया।

मैं बैठा रहा—स्वामी जी बैठे रहे।

९

शाम तक स्वामी जी चुपचाप बैठे रहे। न खाया न पिया ; न बोले, न हिले।

रमा और मैं भी चुपचाप उनके पास बैठे रहे।

शाम को स्वामी जी ने एक लम्बी साँस ली, और बोले—"हाँ ! साधू भूला ! यहाँ भूला !"

मुझसे बोले—"उस कोने में खोदो !"

मैंने निर्दिष्ट कोने में खोदा और एक फ़ुट के बाद एक घड़ा पाया।

ख़ूब ज़ोर लगा कर घड़ा निकाला, वह कन्नों तक रुपयों से भरा था।

स्वामी जी बोले—भाई, इस घड़े को नदी पर ले जाओ, और मँझधार में डुबा आओ !

मैं चौंक पड़ा ! रमा भी चौंकी।

मैं पूछ ही बैठा—यह क्यों महाराज, ऐसी आज्ञा क्यों ?

स्वामी जी मुस्कुरा कर बोले—साधू भूला भाई, ग़लती मिल गई।

मैं चकित होकर स्वामी जी का मुँह ताकने लगा। वे बोले—"देखो भाई, बरसों से यह धन मैंने गाड़ रक्खा है। और मुद्दत से मुझे इसकी याद भी न थी ! मेरे मन में इसका मोह भला क्यों रहा ? क्यों न मुझे याद रही ? साधू को धन रखने से क्या प्रयोजन ? साधू के शरीर की चिन्ता तो भगवान पर है, साधू तो सिर्फ़ आत्मा का ध्यान रख सकता है। उसके लेखे तो शरीर आज समाप्त हो जाय !......समझते हो ? इस धन के मोह के कारण ही आज मेरे भोजन में अन्तराय हुआ है।"

मैं स्तब्ध हो गया। यह देख कर स्वामी जी ने कहा—"देखो भाई, यह धन का मोह कैसी बुरी चीज़ है ! तुम्हारे मन में कैसा युद्ध हो रहा है ! इसीलिए तो भाई, तुम्हें भगवान् नहीं दीखते ! जाओ भाई, मोह छोड़ो, जाकर उसे नदी में छोड़ आओ !"

लज्जित होकर मैंने घड़ा उठा लिया और चला।

लौटा, तो रात हो गई थी। झोंपड़ी के पास पहुँचा तो अँधेरे में देखा, दो आदमी आगे-आगे जा रहे हैं।

चलते-चलते वे दोनों झोंपड़ों में घुस गए।

मैं द्वार पर पहुँचा।

दीपक जल रहा था। स्वामी जी रमा से धर्म-चर्चा कर रहे थे। दोनों आदमी हाथ जोड़ कर उनके पास जा बैठे।

मैंने पहचाना—एक लालचन्द था, दूसरा उसका बेटा।

बेटे के हाथ में पीतल का एक बड़ा कटोरदान था।

स्वामी जी बोले—कहो भाई, इस समय कैसे आए?

लालचन्द ने हाथ जोड़ कर कहा—स्वामी जी, आपके लिए भोजन लाया हूँ।

स्वामी जी ने हँस कर कहा—तुमने इतना कष्ट क्यों किया भाई?

लालचन्द रो पड़ा और बोला—महाराज, वे मूर्ख हैं, पापी हैं—जिन्होंने सुबह आपका अपमान किया! हम पापी जीव तो आपके पैरों का धोवन पीने के अधिकारी तक नहीं हैं। वे आपको नहीं पहचानते! स्वामी जी, इस पापी पर दया करो और भोजन ग्रहण करो!

स्वामी जी बोले—यह तुम क्या कहते हो भाई, उन बेचारों को क्यों दुर्वचन कहते हो? उनका क्या दोष है? ना भाई, तुम उन पर ऐसा क्रोध मत करो!

मैं भी अन्दर दाख़िल हुआ। मुझे देख कर स्वामी जी बोले—हाँ, भोजन की इच्छा तो मुझे इस समय नहीं है। तुम खाओ रमा, (मुझसे) तुम खाओ भाई!

हमने अनिच्छा प्रकट की, तो स्वामी जी ने हठपूर्वक हमें खिलाया।

ख़ुद उस दिन निराहार रहे।

आधी रात तक बेटे के साथ लालचन्द बैठा रामायण सुनता रहा। जब चलने लगा तो हाथ जोड़ कर बोला—स्वामी जी, मैं रोज़ के लिए भोजन भेज दूँगा।

स्वामी जी बोले—तुम क्यों कष्ट करोगे भाई, इनको (मुझे लक्ष्य करके) दो मुट्ठी अन्न दे दिया करना, रमा भोजन बना लेगी।

लालचन्द चला गया और मैं रात भर स्वामी जी के चमत्कार पर विचार करता रहा।

१०

इसके बाद एक बरस और बीता। रमा के गर्भ से एक लड़का पैदा हुआ।

जिस दिन प्रसव हुआ, स्वामी जी साधारण आदमी की तरह ख़ूब भागे-भागे फिरे, धर्म-चर्चा और रामायण की पोथी को भी भूल गए।

मैं अपने पापी मन की बात आपसे साफ़ कह दूँ। जिस दिन से मुझे रमा के गर्भवती होने का हाल मालूम हुआ था, मेरे मन में स्वामी जी पर सूक्ष्म-सा विरक्ति-भाव उत्पन्न हो गया था। स्वामी जी के आचरण में न तिल भर अन्तर आना था, न आया। हाय! मैं तब तक कैसा अधम था कि उनकी उच्चता का अनुमान न कर सका।

अस्तु, जिस समय प्रसव हुआ और स्वामी जी की व्यग्र अवस्था देखी, तो मेरा मन एक अद्भुत ग्लानि से भर उठा!

यह ग्लानि अथवा विरक्ति का भाव मिटा ही नहीं, दिन-दिन बढ़ता ही गया।

यह कैसे अचरज की बात है! जब किसी पर श्रद्धा होती है, उसके दोष एकदम दब जाते हैं, और जब विरक्ति होती है, तो वे दोष नए-नए रूप धर कर, भयानक बन कर सामने आते हैं!

स्वामी जी के वे मार्मिक उपदेश और उनका महत्वपूर्ण चरित्र बिलकुल छिप गया।

इस एक बरस में स्वामी जी आसपास ख़ूब बदनाम हो चुके थे। इतने कि उनका ज़िक्र भी कोई न करता था। बस दोनों वक़्त के लिए आटा मैं लालचन्द के घर से ले आता था, सब खाते थे।

इस प्रसव की घटना ने आसपास के गाँवों में फिर हलचल मचा दी। ग्रामीण छोकरों के लिए अच्छे मनोरञ्जन की सामग्री मिल गई और रमा जब तक सौरिगृह में रही, रोज़ झोंपड़ी पर भीड़ लगी रहती।

ऐसा नहीं था कि इस घटना का असर लालचन्द के घर न पहुँचा हो। कहीं अगर लालचन्द न होता तो आटे की जगह धक्का मिलता। बहुएँ आवाज़ा-कसी करने लगीं, बेटे रेखों में मुस्कराने लगे, यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी तोतली भाषा में चिढ़ाने लगे।

दो वर्ष मुझे स्वामी जी की सेवा में रहते बीते, पर न भगवान तक पहुँचने का रास्ता दीखा, न ब्रह्म में लय होने का उपाय सूझा।

इस चारों तरफ़ की बदनामी के कारण मेरे पापी

मन में एक दिन विचार आया—स्वामी जी में कुछ नहीं है, कोरा शाब्दिक पाखण्ड है !

इस पापी मन ने सोचा, यहाँ भगवान नहीं मिलने के ! चलना चाहिए !

पर सहसा स्वामी जी से कुछ कह न सकता था, इसलिए चुप रहा ।

और एक महीना बीता ।

एक दिन दोपहर को लौट कर क्या देखता हूँ कि झोंपड़ी में किसानों के पाँच-छः बालक हैं, और स्वामी जी उनके साथ बैठे-बैठे, हँस-हँस कर एक फटे हुए ताश-जोड़े से खेल रहे हैं !

मेरा मन तो कलुषित था न ! बस, इस दृश्य ने रहा-सहा भाव भी नष्ट कर दिया और उसी दिन चल देने की ठान ली ।

गाय का दूध निकाल कर शाम को मैं स्वामी जी के सम्मुख बैठा और बोला—स्वामी जी, अब मैं आपसे बिदा लेना चाहता हूँ ।

स्वामी जी बोले—कहाँ जाओगे ?

मैंने सिर झुका कर कह दिया—महाराज, आप तो गृहस्थ के चक्कर में पड़ गए हैं, मैं ऐसी जगह जाऊँगा, जहाँ मुझे शान्ति मिल सके ।

गत दो वर्षों में मैंने स्वामी जी के मुँह पर वैसा भाव न देखा था, जैसा अपनी बात कह कर देखा । मानो किसी ने उन पर भयानक आघात किया, या मानो वे सोते से जाग पड़े । इस तरह उन्होंने मुझे ताका । बच्चे को दिया रमा की गोद में, और आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी तरफ़ ताकने लगे ।

फिर वे उठ कर इधर-उधर घूमने लगे ।

मैं बाहर जाकर कुएँ की जगत पर बैठ गया ।

एक घण्टे बाद स्वामी जी आते नज़र पड़े, मुँह पर प्रफुल्लता थी और आँखें चमक रही थीं ।

मेरी तरफ़ देख कर वे खिलखिला पड़े और बोले—लो भाई, भगवान आ रहे हैं !

मैं जगत से उतर कर खड़ा हो गया और चकित होकर उन्हें देखने लगा ।

वे बोले—अब हम जायँगे । भगवान आ रहे हैं । वक़ हो चुका !

स्वामी जी क्या कह रहे हैं ?

उन्होंने हँस कर कहा—तुम अचरज करते हो ? देख लेना, कल भगवान आ जाएँगे । हमें लेने ही तो आ रहे हैं । तुम उन्हें देख लेना ।

स्वामी जी पागल तो नहीं हो गए ?

मैं सिहर उठा ।

उन्होंने हँस कर कहा—हम पागल नहीं हुए हैं ! तुमने याद दिला दी, नहीं तो भगवान बेख़बर आ खड़े होते ! अरे भाई, हमें तो बहुत पहले पता लग जाना चाहिए था ! वाह रे भगवान ! क्या बढ़िया खेल रचाया है, अन्त समय में !

कहते-कहते स्वामी जी परे जाकर टहलने लगे !

मैं पापी उन्हें क्या समझ सकता था ? मैं अचरज में डूबा, वहीं खड़ा रहा ।

रात आई, स्वामी जी रह-रह कर "भगवान आओ !" "भगवान आओ !" कहते बराबर सड़क पर घूमते रहे ।

दो-चार बार मैंने कहा—"स्वामी जी, भीतर चलिए !"—तो उन्होंने हँस कर कहा—"अब भीतर किसके लिए जायँ भाई, हमें तो लेने आ रहे हैं भगवान !......हा हा हा हा !"

रमा ख़ुद बेचारी चकित और भयभीत थी । वह रात हम दोनों ने कुएँ की जगत पर बैठे-बैठे और स्वामी जी की अवस्था देखते-देखते बिता दी ।

सुबह हुई, सूरज निकल आया, धूप चढ़ आई और स्वामी जी उसी तरह घूमते रहे ।

सहसा दूर से कोई आता नज़र पड़ा । स्वामी जी ने भी आने वाले को देखा, और दोनों हाथ फैला कर पागलों की तरह उसकी तरफ़ भाग पड़े ।

मैं और रमा भी कुएँ की जगत से उतरे और उधर भागे ।

आने वाला एक घोर काले रङ्ग का अर्द्ध-नग्न भिखारी था । स्वामी जी ने उसे देखा, पहले उसके पैरों पर गिर पड़े, फिर उछल कर उसके गले से चिमट कर रोते-रोते बार-बार "भगवान ! भगवान !" चिल्लाने लगे ।

भिखारी हँस पड़ा और बोला—अरे भाई, मुझे पहचान तो लो, तुम मुझे जानते हो ?

स्वामी जी रो पड़े और बोले—"हाय भगवान ! यह छल, मुझी से ! मैं तुम्हें न पहचानूँगा ! ओहो ! नाथ ! बड़ी बाट दिखाई .....!"

स्वामी जी क़रीब-क़रीब बेसुध हो गए।

भिखारी ने ज़ोर से कहा—भले आदमी, तुम पागल हो गए हो ! मैं तो भिखारी हूँ—मुझे कैसे भगवान समझ लिया !

कह कर भिखारी ने बेसुध स्वामी जी को पेड़ के नीचे सुला दिया।

मैं और रमा पत्थर की मूर्त्ति की तरह खड़े थे। बच्चा रमा के कन्धे से लगा सो रहा था।

स्वामी जी होश में आए और भिखारी से बोले—भगवान ! ईश्वर ! परमेश्वर ! तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है ..!

भिखारी हँसा और उठ कर बड़बड़ाता हुआ एक तरफ़ को चल दिया।

जब तक दीखता रहा, स्वामी जी अतृप्त नेत्रों से उधर ताकते रहे, जब अदृश्य हो गया तो उठे और मुझसे बोले—लो भाई, जाता हूँ।

"कहाँ ?"

"भगवान के पास।"

"भगवान कहाँ हैं ?"

"अभी तो गए हैं। भगवान ने मुझे सपना देकर कहा—तू आ, मैं लालचन्द को लेता हूँ ! अरे भाई, भगवान तुम लोगों को दर्शन देना नहीं चाहते थे। तुम्हारा भाग्य, मैं क्या करूँ ! मेरा कोई अपराध नहीं ! ......अच्छा, चला... !"

स्वामी जी उठ कर चलने लगे, तो मैंने कहा—महाराज, मुझे भी ले चलिए !

"ना भाई, तुम नहीं......"

"क्यों नहीं स्वामिन......?"

"भाई, तुम्हारा हृदय अभी शुद्ध नहीं है।"

मुझे जैसे हज़ारों बिच्छुओं ने काट लिया। क्षण भर स्तब्ध खड़ा रहा, फिर हाथ जोड़ कर रोता हुआ स्वामी जी के चरणों पर गिर पड़ा।

स्वामी जी ने धीरज देकर उठाया, तो मैं बोला—स्वामिन् ! सचमुच मेरा हृदय शुद्ध नहीं हुआ ? महाराज, बताइए तो क्यों नहीं मेरा हृदय शुद्ध हुआ ? क्यों नहीं परमात्मा ने मुझ पर दया-दृष्टि की ?

स्वामी जी ने कहा—देखो भाई, तुम सच्चे वैरागी नहीं हो।

मैंने हाथ जोड़ कर पूछा—कैसे महाराज ?

"भाई, तुम्हारे कुटुम्ब में कलह होता था, तुम उस कलह के फल-स्वरूप संन्यासी हुए हो ! यह वैराग्य नहीं, वैराग्य का उपहास है।"

फिर क्षण भर ठहर कर बोले—असल वैराग्य की उत्पत्ति तो भाई, भोग में से होती है। जब भोग की असारता मनुष्य की समझ में आ जाती है, और वह अनासक्त भाव से उन भोगों को भोगने लगता है, तभी असली वैराग्य अथवा संन्यास का आरम्भ हो जाता है। तुम भोगों से डरो, इसका नाम संन्यास नहीं; भोग तुमसे डरें, यह संन्यास है !...जाओ, अगर असली संन्यास अथवा वैराग्य की शिक्षा ग्रहण करनी है, तो वापस जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो और अपनी दुखिया स्त्री की आत्मा का क्षोभ दूर करो !

स्वामी जी चले गए। मैं उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर रमा के साथ लौटा।

रमा का बच्चा जाग उठा था और चुप था। रमा का सिर झुका हुआ था और वह भी चुप थी।

मैं पूछे बिना रह न सका—रमा, तुमने कुछ क्यों नहीं कहा ?

"किससे ?"

"स्वामी जी से।"

रमा मेरी तरफ़ देख कर हँस पड़ी और बोली—ज़रूरत क्या थी भैया ?

मैंने चकित होकर तपस्विनी रमा को देखा।

वह हँसे जा रही थी !!



इन्हीं दिनों हिन्दी के प्रचारार्थ, उर्दू के दुर्गम दुर्ग लखनऊ से आपने "विद्या-विनोद-समाचार" नामक हिन्दी-पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया और दो वर्ष तक बड़ी योग्यता के साथ सम्पादन किया। लखनऊ से निकलने वाला हिन्दी का पहला पत्र यही था।

लखनऊ के इस समय के प्रायः सभी प्रमुख व्यक्तियों से आपका हेल-मेल था। 'रस कुसुमाकर' नामक सुन्दर काव्य-ग्रन्थ के प्रणेता स्वर्गीय अयोध्या-नरेश, सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित विशुननारायण दर, 'अवध-पञ्च' के



स्वर्गीय बाबू कृष्णबलदेव वर्मा

सम्पादक सय्यद सज्जादहुसेन आदि से आपकी विशेष घनिष्टता थी। सज्जादहुसेन साहब को तो आप प्यार में "भाई साहब मरहूम" कहा करते थे। ब्रह्मलीन श्रीस्वामी रामतीर्थ भी आपको बहुत प्यार करते थे। आपकी तत्परता देख कर उन्होंने प्यार से आपका नाम "ख़ुदाई फ़ौजदार" रख छोड़ा था।

लखनऊ म्यूज़ियम के तत्कालीन क्यूरेटर, जर्मन विद्वान डॉक्टर फ़्यूरर से भी आपकी मैत्री हो गई थी। इन्हीं के सत्सङ्ग से आपको भारतीय पुरातत्व तथा ऐतिहासिक शोध सम्बन्धी कार्य से अनुराग हुआ। बुन्देलखण्ड के इतिहास को आपने विशेष रूप से अध्ययन किया था। तत्सम्बन्धी खोज में आपने अपने जीवन का बहुत बड़ा समय व्यय किया। इसीलिए बुन्देलखण्ड के इतिहास के आप बहुत बड़े ज्ञाता थे। बङ्गाल के ख्यातनामा इतिहास-वेत्ता, "करुणा" तथा "शशाङ्क" नामक ऐतिहासिक उपन्यासों के अमर लेखक स्वर्गवासी बाबू राखालदास बन्द्योपाध्याय आपके बुन्देलखण्ड सम्बन्धी ऐतिहासिक ज्ञान के क़ायल थे। उन्होंने वर्मा जी के साथ, बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्थानों में, भ्रमण करने की अभिलाषा प्रकट की थी; पर बन्द्योपाध्याय महाशय की सुदीर्घकालीन अस्वस्थता तथा असामयिक मृत्यु के कारण यह न हो सका।

इधर कुछ वर्षों से, कुछ तो शारीरिक अस्वस्थता और कुछ विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते रहने के कारण, आपने हिन्दी लिखना कम कर दिया था; पर वर्तमान हिन्दी के प्रारम्भिक काल में उन्होंने उसकी जो स्तुत्य सेवा की थी, वह उसके इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखी रहेगी। मिश्रबन्धु-विनोद के १४०२ पृष्ठ पर आपके सम्बन्ध में यों लिखा है :—

नाम—(२५८०) कृष्णबलदेव खत्री, कालपी

ग्रन्थ—(१) भर्तृहरि नाटक, (२) फ़ाह्यान भाषा, (३) ह्यूनसाँग भाषा, (४) विद्याविनोद पत्र

जन्मकाल—१६२७ के लगभग

विवरण—ये महाशय हिन्दी के बड़े रसिक, गद्य के सुलेखक। प्राचीन विषयों की खोज में इन्होंने समय लगाया है। इनका भर्तृहरि नाटक पढ़ने से रुलाई आ जाती है। विद्याविनोद पत्र भी इन्होंने कुछ साल निकाला था।

समय-समय पर 'मर्यादा', 'सरस्वती' आदि पत्रों में भी आप लेख लिखते रहे हैं। अभी हाल ही में "महाराज छत्रशाल" तथा "बाबा मलूकदास" आदि कई गवेषणापूर्ण लेख आपने 'विशाल भारत' में प्रकाशित किए थे।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के आप प्रारम्भ से ही परम शुभचिन्तक तथा उत्साही कार्यकर्ता रहे। सभा

द्वारा प्रकाशित "लाल" कवि का "छत्र-प्रकाश" नामक ग्रन्थ का आपने सम्पादन किया था। हिन्दी के पुराने साहित्य-सेवी स्वर्गीय पण्डित विष्णुलाल मोहनलाल पाण्ड्या को आप बड़ी भक्ति से स्मरण किया करते थे, और जहाँ तक हमें विदित है, सभा द्वारा प्रकाशित महाकवि चन्द के "पृथ्वीराज-रासो" नामक महाकाव्य के सम्पादन में आपने पाण्ड्या जी की यथेष्ट सहायता की थी।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से भी आपका सम्बन्ध बराबर रहा; और कलकत्ते में सम्मेलन के जिस अधिवेशन में "मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक" की संस्थापना हुई थी, उसके प्रधान-मन्त्री आप ही थे। हिन्दी के प्राचीन कविता-साहित्य पर आपका विशेष अधिकार था। महाकवि चन्द से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक के प्रायः सभी कवियों के सहस्रों पद आपको कण्ठस्थ थे। काव्य-चर्चा करते समय जिस समय भावावेश में आकर आप कविता की मन्दाकिनी प्रवाहित करने लगते, उस समय सरस्वती के इस अनन्य सेवक के प्रति श्रद्धा से बरबस मस्तक नत हो जाता था।

प्रयाग की अर्ध-सरकारी साहित्यिक संस्था—हिन्दुस्तानी एकेडमी के भी आप सदस्य थे। एकेडमी से 'हिन्दुस्तानी' नामक एक सुन्दर त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती है! आप उक्त पत्रिका के सम्पादकीय बोर्ड में भी थे। केशवदास के ग्रन्थों को आपने विशेष रूप से अध्ययन किया था। अतएव एकेडमी ने उन्हें पूर्ण अधिकारी समझ कर केशवदास के समस्त ग्रन्थों के सम्पादन का भार सौंपा था, पर कराल काल ने यह न होने दिया।

अपने ज़िले और झाँसी डिवीज़न में उनकी गणना प्रमुख व्यक्तियों में थी। ये बड़े सर्वप्रिय थे। कोई बीस वर्ष तक वे जालौन के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, कालपी म्यूनिसिपिल-बोर्ड के सदस्य रहे। कालपी म्यूनिसिपैलिटी के आप सर्व-प्रथम ग़ैर-सरकारी चेयरमैन और वर्षों तक ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट रहे; पर असहयोग के समय काँग्रेस की आज्ञा शिरोधार्य कर आपने सर्वदा के लिए उपर्युक्त पदों को त्याग दिया था।

आप एक उच्च श्रेणी के व्यक्ति थे और बड़े-बड़े लोगों से मैत्री करना तथा बड़ी-बड़ी संस्थाओं में प्रमुख रूप से भाग लेने का आपको व्यसन था। महामना मालवीय जी, त्याग-मूर्ति स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल जी तथा 'लीडर' के यशस्वी सम्पादक श्रीयुत चिन्तामणि जी आदि आपके मित्रों में से हैं। कौन्सिल के चुनाव के

जिन्होंने प्रचार देव-नागरी का करने में,
नाना कष्ट झेले, निज सौख्य-साधना तजी।
जिनकी एकान्त कामना थी आँखों देखने को,
फुलवारी हिन्दी की हरी-भरी, सजी-बजी।
आरम्भिक जिनकी तपस्या के फल-स्वरूप,
आज राष्ट्र-भाषा को विजय-दुन्दुभी बजी।
अभिनन्दनीय वन्दनीय पूजनीय सदा,
उन्हीं कर्मवीरों में थे कृष्णबलदेव जी॥

(२)

सद्म वात्सल्य के, निकेतन सुजनता के,
सहृदयता के अवतार मूर्तिमान थे।
देश-भक्ति-मद में प्रमत्त रहते थे सदा,
पर-हित-व्रतधारी सुमन समान थे॥
जीवन की साधना थी वाणी की उपासना ही,
विद्या-व्यसनी थे, प्रत्न-तत्वग महान थे।
परम-उदारचेता कृष्ण-बलदेव जी थे,
अनुकरणीय गुण-गण के निधान थे॥

(३)

प्रत्न-तत्व वर्णन की शैली कैसी रोचक थी,
देखी कहते थे मानो घटनाएँ आँख की।
चर्चा जब काव्य की विमुग्ध-चित्त करते थे,
वाणी में मिठास भर जाती रही दाख की।
हास्यमय सरल विनोदपूर्ण व्यङ्गों में थी,
क्षमता विचित्र ज्ञान-अञ्जन-सलाख की।
महामना पूज्यपाद कृष्ण-बलदेव जी की,
एक-एक बात रही एक-एक लाख की॥

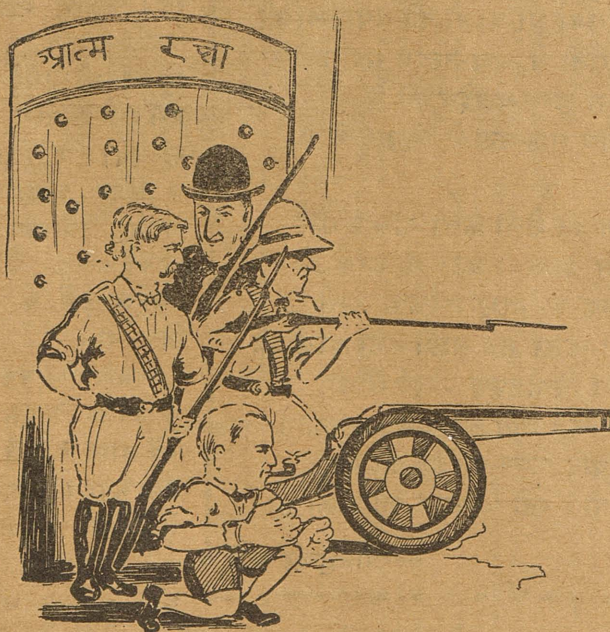
—श्यामसुन्दर खत्री

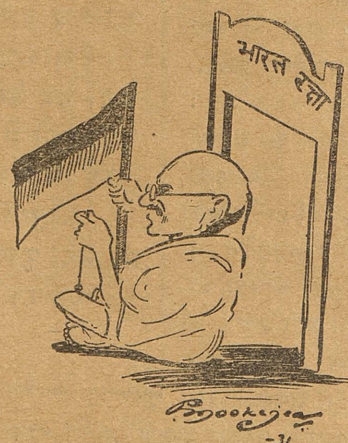
सम्बन्ध में मालवीय जी, स्वर्गीय नेहरू जी तथा चिन्तामणि जी आपकी सहायता का विशेष आदर करते थे। मालवीय जी तो अब तक वर्मा जी ही के डिवीज़न से एसेम्बली के सदस्य होते आए हैं।

आपका चरित्र बड़ा ऊँचा था। आपका विवाह युक्त-प्रान्त के गाँधी, तपस्वी पुरुषोत्तमदास टण्डन की बुआ के साथ हुआ था और जब ये केवल ३० वर्ष के ही थे, उस समय उनकी अर्द्धाङ्गिनी का स्वर्गवास हो गया था। मित्रों ने अनुरोध किया; घर वालों ने बहुत-कुछ कहा-सुना, पर उन्होंने एक न सुनी। दूसरा विवाह न किया और सारा जीवन सरस्वती की आराधना करते हुए, एक साधक की भाँति, पवित्रता के साथ व्यतीत कर दिया।

इधर वर्षों से आपका शरीर व्याधियों का मन्दिर हो रहा था। महीनों केवल दूध और फल पर बिता देते थे। वर्षों तक केवल जीवन धारण करने के हेतु प्रत्यह एक बार कुछ खा लिया करते थे। परन्तु आपके कार्य करने के उत्साह में कोई कमी न होती थी। सभी कार्य पूर्ववत् जारी रहते थे। गत दिसम्बर महीने में पटने में 'ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स' का अधिवेशन था। आपका शरीर अधिक अस्वस्थ था। लोगों ने बहुत-कुछ मना किया; पर पुरातत्व का प्रेम वहाँ आपको खींच ही ले गया। बीमारी बढ़ गई। किसी तरह काशी आए। सब प्रकार का उपचार हुआ, पर कोई फल न हुआ, और अन्त में सहृदय-शिरोमणि बाबू कृष्ण-बलदेव वर्मा, अपने असंख्य मित्रों तथा भक्तों को रुला कर, सदा के लिए इस संसार से चल बसे!

एक पुत्र, एक पौत्र तथा कई एक कन्याओं के अतिरिक्त आपका परिवार बहुत बड़ा है। सभी पर आपका समान रूप से स्नेह था और परिवार वालों के लिए भी वे आराध्य-देव थे। सन्तोष का विषय है कि आपके सुयोग्य भ्रातृपुत्र बाबू व्रजमोहन वर्मा में आपके अनुपम गुण अङ्कुरित हो रहे हैं। उनसे हिन्दी-साहित्य को बहुत-कुछ आशा है।





श्रेष्ठ कौन है?

नारी-जीवन

[कविवर आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—२७

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन,

समय पर काम तुम्हारो
बुद्धि सदा कर जाती थी,
कहती हो तुम ठीक, देख कर
विपदा वह तो आती थी।

पर अधिकांश नारियाँ लेतीं
नहीं स्वकीय बुद्धि से काम,
हो जाती हैं नष्ट और कह—
देती हैं यह—'विधि थे वाम'।

लें कैसे वे काम बुद्धि से,
वे तो समझे हैं यह बात—
'नर हैं उनकी बुद्धि', सुझा दें
वे तो दिन हो जावे रात।

कहती हैं वे, उनके रक्षक
नर हैं, यह अति आश्रित भाव
होने देता उन्हें समुन्नत
नहीं, न उनका तनिक प्रभाव।

बहिन, लिखूँ क्या-क्या करना है
उचित सकल नारीजन को।
किस प्रकार वे कर सकती हैं
अब स्वतन्त्र निज तन-मन को!

बड़े-बड़े हैं यहाँ विचारक,
बड़े-बड़े नेता, विद्वान,
उन्हें सूझता नहीं भला तो
क्या बतलाऊँ मैं नादान।

पर अपना विचार कह दूँगी
अपनी लघु मति के अनुसार,
चाहे माने उसे, तिरस्कृत
अथवा उसे करे संसार।

कहना यह भी व्यर्थ, सुनेगा
कैसे उसे सकल संसार?
भला करेगा फिर वह कैसे
उस विचार पर स्थिर स्वविचार?

मेरी है प्रार्थना ईश से
मन में उठ कर यही विचार
किसी बड़ी ललना-नेत्री के,
बदले सब नारी-संसार।

जिन ललनाओं को स्वतन्त्रता
है इस समय जगत में प्राप्त,
वे होकर सङ्गठित करें
शिक्षा की रुचि ललना-जन-व्याप्त।

करें साथ ही धन-अर्जन वे
स्वसङ्गठन के हेतु विपुल,
खोलें गुरु ललना-विद्यालय
सब सामग्री से सङ्कुल।

उसमें हों शिक्षित ललनाएँ—
शिक्षित हों उनके तन-मन
वह हो उनकी सभी भाँति की
उन्नति का उत्तम साधन।

मिले सामरिक शिक्षा भी, हो
अवैतनिक सेना तैयार,
जिसके बल को देख चकित हो—
विस्मित हो सारा संसार।

फिर उस संस्था का प्रसार
कर दिया सकल जग में जावे,
बिना सदस्या बने न जग की
कोई ललना रह पावे।

किया जाय उनमें प्रचार तब
उत्तम-उत्तम भावों का,
उन्हें लाभ पहुँचाया जावे
उच्च अपूर्व प्रभावों का।

सभी कलाओं में पटुतम वे
उस संस्था में हो जावें,
स्वावलम्बिनी सभी भाँति से
वे निज को जग में पावें।

तब तो जागृत होगा उनमें
उन्नतिकर शुभात्मसम्मान,
तभी उन्हें आभासित होगा
निज स्वतन्त्र सत्ता का ज्ञान।

तभी उन्हें समझेंगे नर भी
निज समानता अधिकारी,
तब मानेगी उनको भी कुछ
स्वार्थमयी जगती सारी।

तभी बढ़ सकेंगी वे अपनी
पूर्णोन्नति की ओर सदा,
तभी रहेगी उन पर पुरुषों
की 'करुणा की कोर' सदा।

बहिन बड़ा होगया पत्र यह,
मैं अपना आगे का हाल—
लिख न सकूँगी इसमें—
आया क्या मुझ पर घटना-जञ्जाल।

पत्र-संख्या—२८

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन,

तुम्हारा कथन ठीक है,
जो कहती हो वह करना
होगा सब जग की ललनाओं
का सारा सङ्कट हरना।

पर आरम्भ करेगा ऐसा
कार्य कौन, कब, पता नहीं,
रह न जाय सुविचार तुम्हारा
कार्य-अपरिणत सदा कहीं।

हैं कितनी विदुषी ललनाएँ,
कितनी प्रतिभावती तथा,
क्यों करतीं वे नहीं इस तरह
ललनाओं की दूर व्यथा।

बहिन तुम्हारी बुद्धि बड़ी है,
जो कहती हो तुम है ठीक,
पर क्या ललना कहीं नहीं हैं
कुछ शत भी स्वतन्त्र निर्भीक।

यदि हैं, तो वे क्यों न सङ्गठित
होकर करती हैं कुछ कार्य,
पड़ता जान कि उनके पथ में
हैं कुछ बाधाएँ अनिवार्य।

बड़े-बड़े मस्तिष्क जगत में
ललना-जन में हैं अवदात,
वे न सोच सकते हैं क्यों यह,
क्यों न गई सोची यह बात ?

बहिन, नहीं मैं कह सकती कुछ
तुम्हीं सोचना फिर एक बार,
और मुझे लिख देना पत्रों
में स्वविचारों का शुभसार।

यही पूछती हूँ—अब तक क्यों
हुआ नहीं इस विधि से काम,
और न होगा कब तक ? कब
आवेंगे शुभ दिन, शुभ परिणाम।

बहिन नहीं अब की तो तुमने
लिखा स्वीय आगे का हाल,
खड़ी हुई थीं तुम पथ पर
निश्चेष्ट परिस्थिति थी विकराल।

सोच नहीं पाती हूँ मैं तो
कुछ उसके आगे की बात,
कौन तुम्हारे तन-मन पर
आघात लगे उसके पश्चात।

उत्सुक हूँ तुम पत्रोत्तर में
वह अवश्य ही लिख देना;
अपने साहस का परिचय दे
चिन्ता मेरी हर लेना।

आई होगी तुम पर विपदा,
किन्तु कुचलने में उसको—
उठा नहीं रक्खा होगा कुछ
तुमने—दलने में उसको।

तुमसे मुझे यही आशा है,
लिखना पहले मन की चाल,
उसके बाद मुझे लिखना तुम
साहस-प्रेरित तन की चाल।

हाल लिखूँगी अब अपना, मैं
स्मितियुत कर नौकर से बात,
हरने लगी हृदय उसका यों
लगी लगाने अपनी घात।

उसे रूपया एक दे दिया
वह हो गया मुदित अब तो,
भय टलने की आशा मन में
होने लगी उदित अब तो।

दो ही दिन के बाद और भी
रुपए आए मेरे पास,
कुछ नौकर को दे उनमें से
लिया मोल उसका विश्वास।

छेड़-छाड़ करता था मुझसे
वह, पर मैं जाती थी टाल,
मन में जो आता था मेरे
क्रोध, कहूँ क्या उसका हाल!

यों ही बीते दो दिन, अधिपति
ने मुझको फिर बुलवाया,
मैंने उससे पाँच दिवस का
और समय माँगा, पाया।

इन्हीं दिनों में नौकर पर
हो गया पूर्ण मेरा अधिकार,
मैंने उससे मोल मँगाया
एक छुरा कुछ सोच-विचार।

बीत रहा था चौथा दिन अब
रक्त-पूर्ण सन्ध्या का काल,
निकट आ रहा था, मैं उस दिन
थी चिन्ताओं से बेहाल।

ठीक किया मैंने नौकर से—
"आज रात को निकल चलें"
बोला वह—"मैं मौज उड़ाऊँ,
श्रीअधिपति जी हाथ मलें।"

मैंने कहा—"ठीक है तुम पर
तो तन-मन है न्यौछावर,
पर दरबान हमें क्यों जाने
देंगे इस घर के बाहर?"

उसने कहा—"उन्हें तो मैंने
मिला लिया है अपनी ओर,
मदिरा पिला-पिला, रुपए दे
उन्हें किया है अपनी ओर।"

मैंने कहा—"ठीक है, रुपए तुम ले लो जितने हैं पास,
आज रात को ख़ूब पिला कर करना उनकी मति का नाश।"



उपन्यास-कला और प्रेमचन्द के उपन्यास

[श्री० केशरीकिशोर शरण जी, बी० ए०, (ऑनर्स) साहित्य-भूषण, विशारद]

प्राक्कथन



साहित्य, सभ्यता और समाज, तीनों एक सूत्र में निहित हैं। एक से भिन्न दूसरे का कोई अस्तित्व ही नहीं है। किसी देश या काल की दशा का परिचय तत्सम्बन्धी साहित्य से ही होता है और उसकी महत्ता पर देश की सभ्यता की महानता की परख होती है। यह बात ठीक भी है। आज हमें प्राचीन सभ्य जातियों में जो सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ है, उसका सारा श्रेय हमारे प्राचीन साहित्य वेद को है, जिसे हम आदि-ग्रन्थ मानते हैं। विपक्षी विद्वान भी इस साहित्य का अध्ययन कर इसकी उत्कृष्टता पर आश्चर्य प्रकट करते और कहते हैं—"जिस देश का प्राचीन साहित्य इतना उन्नत और विशाल हो, उसकी सभ्यता कितनी ऊँची होगी!" कुछ लोगों का विचार है कि सभ्यता के विकास के साथ ही साहित्य का विकास होता है, अथवा साहित्य के विकास का नाम ही सभ्यता और संस्कृति है। वास्तव में यह सिद्धान्त निर्विवाद है। साहित्य, सभ्यता, संस्कृति और समाज एक दूसरे का प्रतिबिम्ब, एक दूसरे की सृष्टि हैं। भूत सभ्यता और संस्कृति के परस्पर सम्मिलन से साहित्य का उन्मेष होता है और साहित्य के निर्मित सिद्धान्तों से ही भविष्य सभ्यता और संस्कृति में तथा इस कारण समाज की गति-विधि में आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्धन होता है। अतएव सभ्यता, समाज और साहित्य में सर्वदा प्रतिक्रिया (Re-action) होती रहती है।* परन्तु सभ्यता के विकास से साहित्य का विकास होते हुए भी साहित्य का उद्गम शान्ति नहीं, क्रान्ति से होता है। जिस समय सभ्यता उन्नति की चरम सीमा पर रहती है, उस समय साहित्य की प्रगति शिथिल पड़ जाती है। आज अङ्गरेज़ी सभ्यता कितनी उन्नति पर है, परन्तु अङ्गरेज़ी साहित्य की प्रगति में कितनी शिथिलता है! वास्तव में जब तक समाज में अशान्ति और मनुष्य के विचारों में क्रान्ति न होगी, तब तक ठोस साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता। किसी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने से इस सिद्धान्त की परिपुष्टि होगी। उदाहरणार्थ उर्दू साहित्य को ही लीजिए। जिस समय मुग़ल आधिपत्य उन्नति के उच्चतम शिखर पर आसीन था, उस समय उर्दू साहित्य की—जिस अर्थ में यह अत्यन्त प्रचलित है—कहीं चर्चा भी न थी। यह केवल बोल-चाल की भाषा थी। पर हाय रे दुर्भाग्य! जब विधाता की क्रूर लीलाओं का वह साम्राज्य खिलौना बन कर धूल में मिल गया, तब उसका चाँद निखरने लगा। यही नहीं, दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। वह ज़मीन, जो ऊसर पड़ी हुई थी, लहलहा उठी और मीर, ग़ालिब, ज़ौक़, दाग़ और आज़ाद के स्नेह से सिक्त हो, चमन में परिणत हो गई।* यथासमय उस बाग़ के पौधों में टहनियाँ लगीं, पत्ते निकले, फूल खिले, जिनके सौरभ से सारा संसार सुवासित हो उठा। परन्तु कब? उस समय, जब मुग़ल साम्राज्य की 'टूटी मज़ार' पर पतन ताण्डव नर्तन कर रहा था। हम शान्ति के समय अपने विचारों को प्रौढ़ बना सकते हैं, ज्ञान का विस्तार कर सकते हैं, भाषा का प्रचार भी कर सकते हैं। परन्तु नवीन भावनाओं की सृष्टि नहीं कर सकते।† वास्तव

* Every language makes its own contribution of literary creations and national custom, determines the degree in which these shall be available to all classes of community, thereby reacting upon the national type.

—*The Indian Sagar*, by Sister Nivedita.

* कविता कौमुदी (चौथा भाग) की भूमिका

† विश्व-साहित्य, पृष्ठ २०

में यदि फ़्रान्स की साधारण जनता (*Tiers etat*) में घोर असन्तोष न फैलता, उनकी दशा पददलित न होती और उन पर अमीरों का अमानुषिक अत्याचार न होता, तो कभी वाल्तेयर और रूसो (*Roussean*) जैसे दार्शनिक तथा विक्टर ह्यूगो और डूमा जैसे उपन्यास-लेखक पैदा न होते। यह रूस की क्रान्ति का ही प्रभाव था कि महात्मा टॉल्स्टॉय के ऐसा विकट साहित्यिक उत्पन्न हो सका। और वास्तव में यही कारण है कि जिस समय भारतीय स्वतन्त्रता की वेदी पर जीवन-बलि देने के लिए प्रस्तुत हैं; जिस समय क्रान्ति, शान्ति और भ्रान्ति की लहरें प्राचीन परिपाटी को अस्त-व्यस्त कर रही हैं, उस समय भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में एक ऐसे नर-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिनके लिए प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को गौरव और अभिमान है। ये नर-रत्न हैं, औपन्यासिक सम्राट श्री० प्रेमचन्द जी!

उपन्यास की आवश्यकता

हम अपने मनोगत भावों को जब दूसरों पर प्रकट करना चाहते हैं, तो भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा का अर्थ ही है भावों को प्रकट करने का साधन। प्राचीन समय से लेकर आज तक प्रचारकों ने अपने सिद्धान्त को दूसरों तक पहुँचाने के लिए दो ही उपादानों का आश्रय लिया—सङ्गीत और आख्यान। सङ्गीत केवल हृदय को आकृष्ट करता है और आख्यान मस्तिष्क और हृदय दोनों को। पहले का प्रभाव क्षणिक, किन्तु प्रबल होता है; दूसरे का स्थायी। यही कारण है कि हमारे प्राचीन साहित्य में सङ्गीत और आख्यान का अद्भुत सम्मिश्रण है। किन्तु जिस प्रकार जन-वृद्धि के साथ-साथ 'शाखोपशाखा' की वृद्धि होती गई और आधुनिक पृथक तथा जटिल जाति-व्यवस्था का विकास हुआ, उसी प्रकार, साहित्य के पूर्वोक्त एक ही रूप से भिन्न-भिन्न प्रकार के भेदोपभेदों का प्रस्तार हुआ। निदान धर्म-सम्बन्धी कठिन प्रश्नों को सुलझाने के लिए तथा जन-साधारण के बोधगम्य के योग्य बनाने के लिए महात्माओं ने कहानी का ही दामन पकड़ा।* इसी कारण 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका'† नामक पुस्तक के लेखक लिखते हैं:—

"उपन्यास से मनोरञ्जन होता है, शिक्षा मिलती है, राजनीतिक तथा धार्मिक बातों में प्रोत्साहन मिलता है और आवश्यक ज्ञातव्य बातों की जानकारी प्राप्त होती है।"

उद्देश्य

इस कारण एक बड़ा गहन और विवादास्पद प्रश्न उठता है कि कथानक साहित्य का मुख्य उद्देश्य क्या है—मनोरञ्जन या शिक्षा? दोनों मतों के विद्वान अपने-अपने पक्ष के समर्थन में दार्शनिक तत्व का सहारा लेते हैं। पहले मत के मानने वाले कहते हैं, मनुष्य का जीवन-काल अत्यन्त अल्प है और कार्य गुरु तथा गहन। कार्य से जीवन का एक लघु अंश भी रिक्त नहीं रहता, किन्तु कार्य-साधन के उपकरण अनिश्चित और बिखरे हुए हैं। उन्हें एकत्रित कर प्रयोग में लाते-लाते यह लघु जीवन समाप्त हो जाता है। कार्य-सम्पादन और सफलता की तो चर्चा ही क्या? अतएव हमें अवकाश ही नहीं मिलता कि हम अन्य वस्तुओं का भी अवलोकन करें। जो कुछ समय मिलता है, उसे हम इस नीरस जीवन को कुछ अंश में सरस न सही, आर्द्र ही बनाने का प्रयत्न करते हैं और इसीलिए उन कतिपय भाग्यवान सज्जनों को छोड़ कर, जिनका मुख्य लक्ष्य ही साहित्य-सेवा और अध्ययन है, हममें से अधिकांश कथानक साहित्य को इसीलिए पढ़ते हैं कि कार्य-भार से क्लान्त हृदय को कुछ काल के लिए शान्ति मिले अथवा फालतू समय किसी भाँति आनन्दपूर्वक कट जाय। अतएव उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है, मनोरञ्जन। किन्तु हम जानते हैं कि मनुष्य की प्रवृत्ति सदा अवनति और बुराई की ओर ही जाती है, क्योंकि हमारे हृदय में चैतन्य और जड़त्व दोनों का समावेश है—बल्कि

* महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म-सम्बन्धी व्याख्यान देते हुए जनता को समझाने के लिए बहुत सी कल्पित कहानियों का प्रयोग किया था, जिनका संग्रह "जातक" के नाम से बौद्ध-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

† Encyclopædia Britannica, Vol. 16.
The novel has been made the vehicle for satire, for instruction, for political or religious exhortation for technical information . . .

जड़त्व की मात्रा अधिक है।* अतएव मनुष्य के हित की जो वस्तु हो—साहित्य का अर्थ भी यही है †—उसमें शिक्षा की मात्रा कम या अधिक अवश्य होनी चाहिए, तभी उसका वास्तविक कल्याण होगा। श्री० प्रतापनारायण जी श्रीवास्तव ने अपने एक लेख में लिखा था कि H. G. Wills की रचनाएँ इसलिए लोकप्रिय नहीं हैं, कि उनमें उपदेश प्रवृत्ति (Didactic element) की मात्रा प्रचुर है, और इस कारण आप मनोरञ्जन को ही उपन्यास का मुख्य गुण मानते हैं। 'ब्रिटैनिका-इनसाइक्लोपीडिया' के लेखक ने भी पूर्ववर्ती पृष्ठ की पंक्तियों को लिख कर भ्रम दूर करने के लिए आगे लिखा है:—

"किन्तु ये गौण बातें हैं। वास्तव में उपन्यास का साधारण और विशेष उद्देश्य प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण और भावपूर्ण वर्णनों द्वारा पाठक का मनोरञ्जन करना है।"

परन्तु मेरी सम्मति में आप किसी उपन्यास‡ का अवलोकन करें, आपको शिक्षा का अंश अवश्य मिलेगा। और प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में—जो मनोरञ्जन की विपुल सामग्रियों का भण्डार है—शिक्षा के चमकीले और अमूल्य रत्नों की भी कमी नहीं है। निम्न-लिखित अवतरणों को देखिए:—

(क) "...जीवन! तुझसे ज़्यादह असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भाँति ही क्षणभङ्गुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है? पानी के उस बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है? जीवन में उतना सार भी नहीं। साँस का भरोसा ही क्या? और उसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं! नहीं जानते, नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं।" *

(ख) "...तालियाँ क्यों बजाते हो, यह तो जीतने वालों का धरम नहीं? तुम्हारा धरम तो है, हमारी पीठ ठोकना। हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, ज़रा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे, और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, ज़रूर होगी।" †

अतएव यह स्पष्ट है कि उपन्यास के लिए मनोरञ्जक होना जितना आवश्यक है, उतना ही शिक्षाजनक भी। एक के बिना दूसरा नीरस और व्यर्थ है। यदि मनोरञ्जन ही केवल उद्देश्य हो तो ठोस और गम्भीर उपन्यासों की सृष्टि नहीं हो सकती। "मनोरञ्जन पाठक की उच्च भावनाओं को जाग्रत करने का साधन मात्र होना चाहिए, अन्तिम लक्ष्य नहीं।" ‡

उपन्यास-कला

अब यहाँ पर एक दूसरा प्रश्न उठता है। वह यह कि कौन-कौन से गुण कथानक साहित्य के लिए आवश्यक हैं? किन-किन तत्वों के सम्मिश्रण से इसका निर्माण होता है अथवा इसकी रोचकता तथा लोकप्रियता की वृद्धि होती है? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले आवश्यक है कि 'कथा-साहित्य' के विभाग, उपविभाग पर विचार किया जाय। यों तो इसके बहुत से विभाग हो सकते हैं, परन्तु पश्चिमी विद्वानों ने इसे दो बड़े-बड़े भागों में विभक्त किया है—एक रोमांस (Romance) और दूसरा नॉवेल या फ़िक्शन (Novel or Fiction)। विस्मय और कौतूहल उत्पन्न करने वाली रोमाञ्चकारी और असम्भव घटनाओं से पूर्ण कथानक साहित्य को 'रोमांस' कहते हैं। इसके विपरीत वैसी

* c. f. Sir Lieth at the door; and unto thee shall be his desire . . . Genesis (Bible) 4.

† हिन्दी काव्य में नवरस, पृष्ठ ४०

But these are the side issue. Its (i.e. Novel's) plain and direct purpose is to amuse by a succession of scenes painted from nature and by a thread of emotional narrative.

‡ उपन्यास से मेरा तात्पर्य है, सामाजिक, घरेलू (Domestic) या ऐतिहासिक उपन्यास से; जासूसी तथा तिलस्माती उपन्यास से नहीं। हिन्दी-कोष में शब्दों का बड़ा अभाव है। सभी प्रकार के कथानक साहित्य, चाहे वह रोमांस (Romance) हो या फ़िक्शन, (Fiction) उपन्यास ही कहलाते हैं।

* निर्मला, पृष्ठ २१

† रङ्गभूमि, पृष्ठ ८८९-९०

‡ 'सुधा'—ज्येष्ठ तु० स० ३०६

कहानी, जो मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाले, उसे 'नॉवेल' कहते हैं। नॉवेल का 'इतिवृत्त' कल्पित होते हुए भी सर्वांश में सत्यमय प्रतीत होता है।* सर आर्थर क्विलर कूच के विचारानुसार 'उपन्यास उस कहानी को कहते हैं, जो मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्र सम्मुख रखती हो और विशेषकर उसमें उन कौतूहलपूर्ण घटनाओं का वर्णन हो, जो उसमें चित्रित पुरुषों और स्त्रियों के जीवन-काल में घटी हों।' † किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वे 'कौतूहलपूर्ण घटनाएँ' असङ्गत और अस्वाभाविक न हों; नहीं तो उपन्यास के बदले वे रोमांसपूर्ण हो जायँगी।

उपन्यास, काल की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं—ऐतिहासिक और सामाजिक। वास्तव में यह विभेद भ्रमपूर्ण है। प्रत्येक उपन्यास में समाज का चित्र अङ्कित रहता है। कारण, उपन्यास में मनुष्य के वास्तविक जीवन (Real Life) की व्याख्या रहती है और समाज कतिपय मनुष्यों के समूह को कहते हैं। अतएव उस कृति में, जिसमें 'कतिपय मनुष्य'-जीवन तथा कार्यक्रम पर प्रकाश डाला गया हो, समाज का प्रतिबिम्ब अनायास ही अङ्कित हो जायगा। ऐसी दशा में प्रत्येक उपन्यास में समाज की चर्चा न्यून या अधिक अवश्य रहती है। भेद इतना ही है कि एक में प्राचीन समाज की झलक रहती है और दूसरे में अर्वाचीन की।‡ अतएव उपरोक्त उपभेदों का नामकरण प्राचीन सामाजिक और अर्वाचीन सामाजिक हो सकता है। इस निष्कर्ष पर आते ही बलात् यह प्रश्न उठता है कि विशेष आदत और कल्याणकारी कौन सा उपन्यास है—प्राचीन सामाजिक या अर्वाचीन सामाजिक? साहित्यिकों का सिद्धान्त है कि मनुष्य अपनी सभ्यता के अनुसार ही कथा-कहानी का निर्माण करता है। उसकी कृति के चरित्र जीती-जागती दुनिया से लिए जाते हैं, जिनसे हमारी भेंट नित्य-प्रति होती है। इस कारण, जो लेखक काल की प्रगति एवं तत्सम्बन्धी सभ्यता, संस्कृति और वातावरण के अनुसार कहानी लिखता है, वही सफल कहानी-लेखक कहलाता है। इससे समाज की कुरीतियों का पता चलता है। हमें अपनी दुर्बलताओं और अभावों का ज्ञान होता है; और यदि हमारा पूर्ण नैतिक पतन न हो गया हो, तो हम उसे यथासाध्य दूर करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे हमारा, हमारे समाज का और इस कारण मनुष्य-मात्र का कल्याण होता है। हम प्राचीन समाज की वास्तविक दशा का निदर्शन अपनी आँखों से नहीं, बल्कि पुस्तक की चक्षुओं से करते हैं; अतएव वह किसी भी दशा में सत्य तथा पूर्ण नहीं होता। ऐसी कथा-कहानियों से मनोविनोद भले ही हो, किन्तु शिक्षा नहीं मिल सकती। और यदि वह मिल भी सके, तो भी उससे सामाजिक सुधार की आशा नहीं की जा सकती, जो मेरे विचार में कहानी-लेखक का एक मुख्य उद्देश्य है। परन्तु समाज का चित्रण दो प्रकार होता है—एक आदर्शात्मक दृष्टि से और दूसरा सत्यात्मक दृष्टि से। आदर्शात्मक उपन्यास में लेखक एक आदर्श चरित्र की कल्पना करता है। ऐसी कहानी के पात्रों में मानवोचित दुर्बलताएँ लेश-मात्र भी नहीं होतीं। और इस कारण वे इस

---

* c.f. 'Novel is the name given in literature to a sustained story which is not historically true, but might very easily be so.'

—*Encyclopaedia Britannica, Vol. 16.*

† A novel is a fictitious prose narrative or tale presenting a picture of real life, especially the emotional crises in the life history of the men and women portrayed'

हमने 'जान-बूझ' कर गद्य शब्द छोड़ दिया है। कारण, वे गद्य में ही वर्णित कहानी को उपन्यास मानते हैं; किन्तु इस अल्पज्ञ लेखक की सम्मति में गद्य और पद्य दोनों में लिखी गई कहानी, कहानी है। यदि ऐसा नहीं है, तो श्री० सियारामशरण जी गुप्त की पद्य में लिखित कहानी क्या है?—लेखक

‡ हाँ, एक बात अवश्य होती है, और वह यह कि ऐतिहासिक उपन्यासों का नायक इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति होता है, सामाजिक उपन्यासों का नहीं। परन्तु उक्त नायक सम्बन्धी अन्यान्य पात्र ऐतिहासिक नहीं होते, बल्कि कल्पित होते हैं। इसके अतिरिक्त नायक के चरित्र में कथा-विस्तार की दृष्टि से आवश्यक हेर-फेर कर दिया जाता है। अतएव ऐसी दशा में वह चरित्र सत्य होते हुए भी अनेकांश में कल्पित ही होता है।

पार्थिव संसार से परे किसी कल्पना-जगत के मनुष्य होते हैं, जिनका रहन-सहन, आचार-व्यवहार, बल-विभव हम जैसे साधारण मनुष्यों के से नहीं होते। उनकी क्षमता और शक्ति हम लोगों की परिधि से परे—बहुत विस्तृत होती है, इसलिए वे हमारे आदर और श्रद्धा के पात्र हो सकते हैं, परन्तु स्नेह और सहानुभूति के नहीं। उनके कार्य हमें विस्मित अवश्य करते हैं, पर प्रभावित नहीं। इसके विपरीत सत्यात्मक (Realistic) उपन्यास-लेखक समाज का नग्न चित्र प्रदर्शित कर देता है। उसे इसकी चिन्ता नहीं होती कि जनता पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। वह लोक-कल्याण या रचना-कला की दृष्टि से, जो बात जैसी है, उसका वैसा ही चित्र खींचना आवश्यक समझता है। परन्तु मनुष्य का दुर्बल मन बुराई की ही ओर बहुत झुकता है, इस कारण ऐसे साहित्य से—कलापूर्ण होते हुए भी, समाज को लाभ के बदले हानि ही उठानी पड़ती है। इसमें सन्देह नहीं कि समाज का चित्र सत्यात्मक ही होना चाहिए—और अवश्य होना चाहिए, परन्तु साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वह अश्लील और कुरुचिपूर्ण न हो।

अब हम उस प्रश्न पर विचार कर सकते हैं कि किन-किन तत्वों के सम्मिश्रण से उपन्यास का निर्माण होता है। एक कहानी के सङ्कुचित स्वरूप को लीजिए, उसके विश्लेषण से स्वयं ही पता चल जायगा कि इसमें कौन-कौन से 'अवयव' हैं। उदाहरणार्थ :—

"रानी मर गई, किन्तु किसी को इसका कारण न मालूम हो सका। अन्त में यह पता चला कि राजा की मृत्यु के शोक में ही उसकी मृत्यु हुई।"

यह एक स्वयं छोटी-मोटी सम्पूर्ण कहानी है, जिसमें प्रायः सभी आवश्यक वस्तुओं का समावेश हो गया है। ध्यानपूर्वक देखने से इसमें दो बातें हैं। पहली तो यह कि 'राजा मरे तब रानी मर गई', और दूसरी 'राजा मरे तब शोक में रानी भी मर गई।' इन दोनों वाक्यों में प्रथम को कथा (Story) और दूसरे को वृत्त (Plot) कहते हैं। कथा और वृत्त में कोई विशेष अन्तर नहीं; दोनों में घटनाओं का उल्लेख रहता है। परन्तु भेद केवल इतना ही है कि वृत्त में कारण पर विशेष ध्यान दिया जाता है।* अतएव एक कहानी के लिए मुख्य आवश्यक वस्तु हुई कथा और वृत्त। उपरोक्त कहानी में वृत्त है और कथा भी, परन्तु उसके साथ ही साथ एक नई बात है; और वह है, वृत्त के साथ रहस्य का सम्मिश्रण। इसी रहस्य के उन्मेष से घटना-वैचित्र्य का आविर्भाव होता है और उसके उद्घाटन से विस्मय, कौतूहल तथा आनन्द का। इसी के कारण रोचकता में वृद्धि होती है। पुनः यह कहानी सुन्दर भाषा में लिखी गई है। उसमें दो चरित्र हैं—एक राजा और दूसरी रानी। यदि इस कहानी का प्रस्तार किया जाय, तो वह एक उपन्यास का रूप धारण कर लेगी और तब राजा और रानी के चरित्र का पूरा विकास होगा, जिसका हमें यहाँ केवल आभास-मात्र मिलता है। वह यह है कि रानी पति-परायणा स्त्री थी; राजा को बहुत प्यार करती थी। जब राजा की मृत्यु हो गई, तो वह उसके दारुण वियोग को न सह सकी और इस कारण शोक में (घुल-घुल कर) मर गई। अतएव उपन्यास के तीन मुख्य गुण हुए—भाषा-सौष्ठव, चरित्र-चित्रण और (वृत्त या इसके कारण) घटना-वैचित्र्य। संक्षिप्त रूप में ये ही तीनों स्तम्भ उपन्यास के प्रायः सभी गुणों को अपने में सम्मिलित कर लेते हैं; इनके अतिरिक्त जो विभेद है, वह केवल नाम-मात्र का है। परन्तु श्री० प्रतापनारायण जी अपने विचार† से दो और गुणों का होना आवश्यक समझते हैं—वे हैं शैली और मनो-विज्ञान। ये अपने विचार के समर्थन में लिखते हैं कि 'शैली भाषा-सौष्ठव का एक अङ्ग अवश्य है, परन्तु उससे स्वतन्त्र भी। भाषा मँजी होते हुए भी सुशैलीहीन हो सकती है।' वास्तव में यह बात ठीक भी है। परन्तु मेरे विचार में शैली ही आवश्यक है, क्योंकि इस पर व्यक्तित्व की छाप रहती है। प्रत्येक लेखक की शैली अपनी और निराली होती है, अतएव यह उसकी निजी सम्पत्ति या कृति है, इसलिए इसकी उत्कृष्टता से लेखक

* Story is a narrative of events arranged in the time consequence. A plot is also a narrative of events, the emphasis falling on the casuality.

† 'उपन्यास और हिन्दी के वर्तमान उपन्यास-लेखक' शीर्षक लेख से—'माधुरी' माघ तु० स० ३०६

के पाण्डित्य का प्रदर्शन होता है। मेरे और इनके विचार में केवल इतना ही अन्तर है कि वे शैली को भाषा-सौष्ठव का एक अङ्ग मानते हैं और मैं भाषा-सौष्ठव को शैली का। (इन्हीं के विचारानुसार) 'भाषा मँजी होते हुए भी सुशैलीहीन हो सकती है', परन्तु शैली भाषा-सौष्ठव-विहीन नहीं। अतएव पाण्डित्य की सच्ची परख शैली से ही हो सकती है, भाषा-सौष्ठव से नहीं। मानव-विज्ञान के सम्बन्ध में ये लिखते हैं कि चरित्र-चित्रण के लिए मनोविज्ञान अति आवश्यक है, किन्तु यह भी शैली की भाँति स्वतन्त्र है। 'चरित्र-चित्रण हर एक उपन्यास में होता है, किन्तु लेखक मानव-विज्ञान से जितना ही परिचित होता है, चरित्र-चित्रण उतना ही कुशलतापूर्ण और सुन्दर होता है।' इनका यह विचार भी प्रायः ठीक है, परन्तु कुछ एक अंश में भ्रान्ति-पूर्ण। ये मनोविज्ञान को चरित्र-चित्रण के लिए आवश्यक मानते हुए भी स्वतन्त्र मानते हैं और इसीलिए 'उतना ही' वाक्यांश का प्रयोग करते हैं। परन्तु 'उतना ही' वाक्यांश क्रम (Degree) का द्योतक है, जो सापेक्ष है। इसलिए वह विभिन्नता नहीं, बल्कि एकता की ओर सङ्केत करता है। मनोविज्ञान का ज्ञान जितना ही ऊँचा होगा, 'चरित्र-चित्रण उतना ही कुशलतापूर्ण और सुन्दर होगा।'

आप प्रत्येक चरित्र के चित्रण में—यहाँ तक कि घटना-प्रधान उपन्यासों में भी मानव-विज्ञान का कुछ न कुछ आभास अवश्य पावेंगे। कारण, चरित्र होता है मनुष्य का और मानव-चरित्र के ज्ञान को ही मानव-विज्ञान कहते हैं, अतएव यह स्पष्ट है कि चरित्र-चित्रण में ही मानव-विज्ञान सम्मिलित है। परन्तु इन तीन स्तम्भों के अतिरिक्त एक चौथा स्तम्भ भी है, जो प्रत्येक दशा में चरित्र-चित्रण में सहायक होते हुए भी उससे स्वतन्त्र है; वह है भावव्यञ्जना। अमुक स्थिति तथा समय में उन चरित्रों का विचार कैसा था, उनकी दशा कैसी थी, इसका पूर्ण प्रदर्शन भावव्यञ्जना से ही हो सकता है। यह साधारण लेखकों का नहीं, बल्कि कलाविदों का कार्य है। इसी के द्वारा पाठकों के भी हृदय पर तत्सम भावनाओं तथा वास्तविक परिस्थिति का दृश्य अङ्कित किया जा सकता है। और जो इसके व्यक्त करने में पूर्ण सफल होते हैं, वही सिद्धहस्त लेखक कहला सकते हैं। स्वयं प्रेमचन्द जी ने उपन्यास का तीन ही मुख्य स्तम्भ माना है*—(१) भाषा-सौष्ठव, (२) चरित्र-चित्रण और (३) भावव्यञ्जना। मेरे विचार में उपन्यास साहित्य में चार मुख्य गुणों की आवश्यकता है, और वे हैं शैली, चरित्र-चित्रण, घटना-वैचित्र्य और भावव्यञ्जना। इनमें शैली और भावव्यञ्जना प्रत्येक उपन्यास के लिए आवश्यक हैं, परन्तु चरित्र-चित्रण और घटना-वैचित्र्य की दृष्टि से उपन्यास के दो और नवीन उपविभाग† होते हैं—पहला घटना-प्रधान या क्रियात्मक (Novel in action) और दूसरा चरित्रात्मक (Novel in character)। क्रियात्मक उपन्यास-चरित्रों का निर्माण घटना से होता है। उनमें मानव-विज्ञान का पूर्ण विकास नहीं होता। पात्र घटनानुसार अपने चरित्रों में परिवर्तन कर लेते हैं, अतएव वे सजीव नहीं, निर्जीव कठपुतली के समान होते हैं अथवा उस पालतू बन्दर के समान, जो मदारी की सिखलाई हुई आज्ञा अक्षरशः पालन करता है। इसके विपरीत चरित्र-प्रधान या चरित्रात्मक उपन्यास में पात्रों के चरित्र के स्वाभाविक विकास के अनुसार ही घटनाएँ घटित होती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि रोचकता तथा कथा-विस्तार के लिए कुछ असाधारण घटनाओं का सन्निवेश हो जाता है, परन्तु वे असाधारण घटनाएँ अप्राकृतिक तथा असम्भव नहीं होतीं। हाँ, वे ऐसी अवश्य होती हैं, जिनकी पाठक पढ़ते समय कल्पना नहीं कर सकते। अतएव वास्तव में उपन्यास के—प्रेमचन्द जी के भी विचारानुसार—तीन ही मुख्य स्तम्भ हैं :—

(१) शैली, (२) $\frac{\text{चरित्र-चित्रण}}{\text{घटना-वैचित्र्य}}$ और (३) भावव्यञ्जना।

(क्रमशः)

---

* 'विद्या' नामक उपन्यास की भूमिका से।

† यह वर्गीकरण एडविन म्यूर के 'The Structure of Novel' नामक ग्रन्थ के आधार पर किया गया।—पृष्ठ २३-४०

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

छठा खण्ड

६



रोज को देखते ही दिल उछल पड़ा और मैं झपट कर पर्दे से बाहर होने वाला था कि उसके तकिए वाले पत्र के शब्दों ने एकाएक मेरे पैरों में काठ मार दिया, मैं जहाँ का तहाँ मूर्तिवत खड़ा ही रहा। यद्यपि वह मेरे पास ही थी, फिर भी उस हत्यारे पत्र ने, जिसे मैंने अभी-अभी फाड़ा था, मेरे हृदय को कोड़े मार कर उस समय इतनी दूर कर दिया कि उसे पास पाकर भी उसके पास फटकने की इसे हिम्मत न हुई। जिसे यह सदा से अपने ही कलेजे का टुकड़ा और हर प्रकार से विपरीत परिस्थिति में भी अपनी समझता आया, उसी को आज यह अपनी जलन के आवेश में पराई जान कर अलग ठिठुक कर रह गया। उसके शब्दों के अर्थ में तो कुछ भी अनर्थ न था, मगर उनकी कोमलता और मधुरता में मेरे लिए न जाने कैसा उत्पात भरा हुआ था कि मैं अमृत को भी हाय ! उस घड़ी विष समझ बैठा। परन्तु मेरी यह स्तब्धता की दशा क्षण भर से अधिक न रही होगी, क्योंकि दूसरे ही क्षण मैं सब-कुछ भूल-भाल कर उसके चरणों पर लोटने के लिए, उसको अपना ही सर्वस्व जान कर उसको हृदय से लगा लेने को व्यग्र हो उठा और सामने से पर्दा हटाने के लिए मेरा हाथ उठ पड़ा।

सरोज तकिए में हाथ डाल कर कुछ निकाल रही थी। मेरा हृदय एक बारगी ज़ोरों से धड़क उठा। और पर्दा बस थोड़ा सा ही हट कर रह गया। इस बात के कुतूहल ने, कि अपने पत्र के स्थान पर मेरा पत्र देख कर उसकी क्या दशा होगी, मेरे अङ्ग-अङ्ग को वहीं जकड़ लिया। मैं उत्सुकतावश यही प्रतीक्षा करने लगा कि इस भाँति मेरे आगमन ही का नहीं, वरन् मेरी उस कमरे तक की पहुँच का भी यह विचित्र सबूत पाकर उसके हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। उसने धर्मावतार का पत्र पहचान कर उसी में फिर रख दिया और दूसरा पत्र उठाया और उसे वह खोलने लगी। मैं अपना कलेजा थामे उसके चेहरे की आकृति देख रहा था। मेरी उत्सुकता उस घड़ी इतनी बढ़ गई थी कि मेरी साँस की गति भी बन्द हो गई। मगर उसके मुखड़े पर कुछ भी आश्चर्य तथा आवभगत के लक्षण प्रतीत न हुए, बल्कि उसको पढ़ते ही उसकी भृकुटी चढ़ गई और इधर मेरा दिल हताश होकर बैठ गया। आगे बढ़ने की मेरी सारी व्यग्रता ठण्डी पड़ गई। वह पत्र गुस्से में फाड़ती हुई बिना इधर-उधर देखे हुए भीतर चली गई और मैं मरा-मुर्दा सा अपने स्थान से निकल कर बाहर आया।

क्या सरोज ने मेरी लिखावट नहीं पहचानी ? या इसके लिए उसे मेरे अतिरिक्त किसी और पर सन्देह हुआ ? या उसे मालूम था कि मैं यहीं हूँ और पत्रवाहक के रूप में यहाँ आता-जाता हूँ ? तब हाय ! उसने वह पत्र कहीं मेरे ही प्रेम से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए तो नहीं लिखा था ? आह ! कुछ भी समझ में नहीं आया ?

तबियत में एक अजीब उचाट समा गई। वह स्थान मुझे काटे खाने लगा। फिर भी कई बार भागने का इरादा करने पर भी मुझसे भागा न गया, रह-रह कर मैं अपनी ही भूल पर पछताता था कि मैंने क्यों नहीं सरोज के सामने निकल कर असलियत जान ली। तब इस भ्रम में पड़ कर कुत्ते की मौत मरने की नौबत तो न आती। सम्भव है, उसका सन्देह किसी और पर हुआ हो और अपने पत्र के इस गुप्त रूप से बदले जाने पर अपने को अपमानित प्रतीत किया हो। फिर भी मेरे दिल में यह काँटा भेदता ही रहा कि वह अपने पत्र की अस्वीकृति के भाव को कड़े शब्दों में बदला हुआ पाकर क्यों जल उठी। क्या वह पूर्णरूप से उसका प्रभाव डालना

नहीं चाहती थी। यदि वह पत्र मेरे लिए था तो क्या वह मुझे मुद्दतों पहिले ऐसा नहीं लिख सकती थी? अब हाय! अब, जब मैंने उसीके ध्यान में अपनी सारी ज़िन्दगी मिट्टी में मिला दी तब लिखा। क्यों? आह! क्यों? मेरी अगाढ़ भक्ति और अटल अनुराग का क्या यही पुरस्कार था?

उस दिन से फिर कभी मुझे उस कमरे में जाने का संयोग नहीं प्राप्त हुआ। यद्यपि इसी आशा पर अब मैं वहाँ ठहरा हुआ था कि एक बार जिस तरह भी सम्भव हो, मैं अपने को उसके सामने प्रकट करके देखूँगा कि मेरे लिए उसके हृदय में अब सचमुच ही कुछ भी स्थान नहीं है। और इस तरह से मैं हमेशा के लिए अपने जीवन और मृत्यु की समस्या हल करके छोड़ूँगा। परन्तु मेरा दुर्भाग्य! मैं परवश था। मैं और ही जञ्जाल में डाल दिया गया।

दूसरे दिन रात के समय डॉक्टर साहब मुझे अपनी मोटर में लिए हुए दरिया के पुल पर होकर जगमगाती हुई कोठी में पहुँचे। उस स्थान की तमाम इमारतों में इसी से कुछ राजसी ठाट चमकता था। दरिया के बीच में थोड़ा सा पथरीला हिस्सा कुछ ऊँचा होने के कारण टापू सा बन गया था। उसी पर यह शानदार कोठी, जिसे वहाँ के लोग रङ्ग-महल कहते थे, अपनी शोभा दिखला रही थी। यहाँ आने-जाने के लिए दोनों तरफ़ लकड़ी के ऐसे पुल थे, जो वक्त पर हटाए भी जा सकते थे। इन पुलों के फाटक पर सिपाहियों का सख़्त पहरा जान पड़ा। यहाँ कुछ भीड़ भी लगी हुई थी।

इस जगह मोटर कुछ देर के लिए रुकी। पहरे के सिपाही हाथ जोड़े हुए दौड़ पड़े। धर्मावतार ने उनको यह कह कर भीड़ हटाने के लिए हुक्म दिया कि इन लोगों से अपने-अपने घर जाने के लिए कह दो, क्योंकि आज गाना-बजाना कुछ न होगा, जो इन्हें यहाँ से सुनाई पड़े। आज अन्नदाता जी की विलास-रात्रि है। वे केवल विलास करेंगे, गाना नहीं सुनेंगे।

इस हुक्म को सुन कर लोगों को कुछ निराशा हुई और भीड़ छटने लगी। उस समय एकाध की इस प्रकार की बड़बड़ाहट मेरे कान में पड़ी—भाई, राजा-महाराजा हैं, जो चाहें सो करें, कोई कुछ कह सकता है?

"ईश्वर ने इन लोगों को मौज करने ही के लिए बनाया है। इसमें किसी का क्या इजारा?"

"घर में दो-दो रानियाँ मौजूद और फिर भी वेश्याओं के साथ इस तरह खुल्लमखुल्ला रङ्गरेलियाँ कि आज गाना नहीं सुनेंगे, विलास करेंगे!"

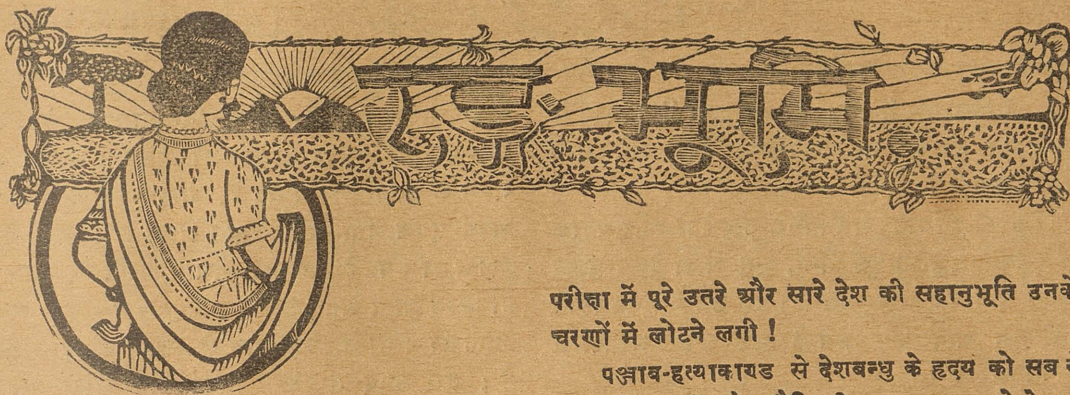
"तो क्या हुआ? हमारे-तुम्हारे जैसे वह कुछ मामूली आदमी हैं कि उन्हें ऐब लग जाएगा?"

रङ्ग-महल के भीतर पहुँचने पर देखा कि सचमुच ही उसका यथा नाम तथा गुण है। विलास-चित्रों तथा सामग्रियों से वह पूर्णरूप से सुसज्जित है। परियों और बोतलों का जमघट लगा हुआ है। मर्दों में केवल सरकार साहब और एक सुन्दर नवयुवक, जिसको सरकार साहब ने अन्नदाता कह कर प्रणाम किया था, दिखाई पड़े। उस समय मैंने जाना कि राजा यही हैं।

अन्नदाता जी सुन्दर ज़रूर थे, मगर ग़ौर से देखने पर उनकी सूरत मुझे बिल्कुल ज़नानी मालूम हुई। उस वक्त मुझे एकाएक यह याद आया कि—"भावे न नारी नारी रूपा।" उस पर उनके मिज़ाज का यह रङ्ग? अब सरोज के दाम्पत्य जीवन की व्यथा समझने में कुछ कठिनाई न थी।

शराब का दौर चलने लगा। वेश्याएँ नशे में चूर हो-होकर सरकार साहब पर गिरने लगीं। सरकार साहब भी बुरी तरह मस्त थे, और बड़ी बेहयाई के साथ छेड़-छाड़ और हाथापाई कर रहे थे। मगर अन्नदाता जी, जिनके विलास के लिए यह सारी बातें थीं, वह चुपचाप अलग कोने में उदासीन बैठे थे। वेश्याओं की छेड़-छाड़ बढ़ते देख कर वह स्वयं अनमने से उठ कर बग़ल वाले कमरे में चले गए। उनका यह रङ्ग देख कर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मुझे भ्रम था कि शायद वहाँ पहिले से कोई वेश्या मौजूद हो। मगर धर्मावतार ने कई बार पान-इलायची लेकर मुझे उनके पास भेजा और मैंने उनको छोड़ कर वहाँ किसी भी स्त्री को न देखा। तीन-चार बार जब मैं अन्नदाता जी को पान इत्यादि देकर बाहर आया, तब धर्मावतार ने झल्ला कर मुझे इशारा किया कि तुम उन्हीं के पास बैठो।

(क्रमशः)



स्वर्गीय देशबन्धु चितरञ्जनदास

श्रद्धाञ्जलि

इस अभागे देश में कितनी ही लोकोत्तर विभूतियाँ आईं और अपनी प्रभा का दान देकर अनन्त में विलीन हो गईं। हम गुमराहों के लिए ही हमारे रह-नुमा आए और हमारे राह का इशारा कर अपने निर्विकल्प पथ पर चल कर हमारी आँखों से ओझल हो गए! उनकी पवित्र स्मृति और पुनीत उपदेशों के दिव्य प्रकाश में चल कर हम अपने उद्देश्य की ओर बढ़ सकते हैं। उनके चरण-चिन्हों पर चल कर हम अपने इष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। उनकी अमर कीर्ति को समय फीका नहीं कर सकता।

आज से छः वर्ष पहले की बात है। भारत के भाग्य-गगन का एक उज्ज्वलतम सितारा अचानक अस्त हो गया। देश ने आहें भरीं, दुश्मनों ने भी आदर और श्रद्धा से उस महान् आत्मा की स्मृति में सिर झुकाए। लोकमान्य की मृत्यु के बाद देश को इतनी गहरी चोट कभी नहीं आई थी!

* * *

वैभव और विलास की गोदी में पाले जाकर भी देशबन्धु के फ़क़ीराना दिल ने माँ की पुकार सुन, अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। अलीपुर के विख्यात् षड्यन्त्र केस का सूत्रपात सन् १६०८ में हुआ। श्री० अरविन्द घोष को कोई पैरवीकार नहीं मिलता था। देशबन्धु का भाव-प्रवण हृदय मचल पड़ा और जिस तेजस्विता, वीरता एवं बुद्धि-कौशल से उन्होंने उस मामले की पैरवी की, वह सब पर प्रकट है! देश का तक़ाज़ा था, देशबन्धु परीक्षा में पूरे उतरे और सारे देश की सहानुभूति उनके चरणों में लोटने लगी!

पञ्जाब-हत्याकाण्ड से देशबन्धु के हृदय को सब से गहरी ठेस लगी और बैरिस्टरी पर लात मार, वे देश के युद्ध-प्राङ्गण में कूद पड़े! बाल-बच्चे सहित उन्हें सरकार की मेहमानी मन्ज़ूर करनी पड़ी, बङ्गाल का शेर सीख़चों में बन्द कर दिया गया!

गया की कॉङ्ग्रेस देशबन्धु के युद्धमय—सङ्घर्षमय जीवन की प्रमुख घटना है। स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल जी के साथ परामर्श कर, उन्होंने स्वराज्य-पार्टी स्थापित की और अपने सिद्धान्त का झण्डा ख़ूब ज़ोरों से फहराया। तर्क और आत्म-विकास से क़ायल होकर उनकी इस अङ्गी नीति को देश ने ख़ूब अख़्तियार किया! यह देशबन्धु का ही व्यक्तित्व था, जो गाँधीवाद के विरुद्ध स्वराज्य-पार्टी स्थापित कर, देश के अधिकांश शिक्षित व्यक्तियों के दिमाग़ को अपने साँचे में ढाल सका! देशबन्धु ने अपनी पार्टी द्वारा सरकार के दाँत किस प्रकार खट्टे किए, यह राजनीति से सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता होगा।

मिट्टी का पुतला मिट्टी में मिल जाता है, पर अपनी कृतियों की ख़ुशबू अपने पीछे छोड़ जाता है। देशबन्धु के अनिन्द्य गौरव, अपूर्व आत्म-विश्वास, अप्रतिम प्रतिभा, अक्षुण्ण त्याग, अविरल तपस्या और अखण्ड बलिदान की गाथा आज भी देश और विदेश के घर-घर में गाई जाती है। दार्जिलिङ्ग की पर्वत-शिखर-माला से टकरा कर वायु ने करुणा-भरी तान में गाया था:—

"तुमि आमादेर सर्व जीवनेर चिर साधनार चिर कल्पनार फल।"

प्रकृति इस एक अलाप की कारुणिकता में निश्चेष्ट और गत-काय होकर एक क्षण के लिए अपने व्यापार से उदासीन थी, उधर संसार का एक अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र अस्त हो रहा था—देशबन्धु की तपःपूत आत्मा



ब्रह्म की विराटता में लीन हो रही थी!! १९२५ के १६वीं जून की वह भयानक सन्ध्या क्या कोई कभी भूल सकता है?

देश की वर्तमान राजनीतिक उलझनों और बङ्गाल की दुखद विशृङ्खलतापूर्ण 'मैं-मैं, तू-तू' में तो देशबन्धु का अभाव अत्यधिक अखर रहा है। हम उनकी पुण्य-स्मृति में अत्यन्त आदर और प्रेम के साथ अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

* * *

कवि-सम्राट का प्रमाद

हाल में ही विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी सत्तरवीं वर्ष-गाँठ मनाई थी। उस अवसर पर कलकत्ते के सहयोगी 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के प्रतिनिधि को अपना सन्देश देते हुए, विश्वकवि ने कहा था :—

"× × × मेरा सन्देश यह है, कि देश अपनी शक्ति भावुक आस्फोट में व्यर्थ व्यय न करे, उसे कार्य-रूप में परिणत करे। 'वन्देमातरम्' बहुत हो चुका, अब 'वन्देमातरम्' का स्थान 'वन्देभ्रातरम्' को देना चाहिए। न तो राष्ट्रीय झण्डे के फहराने से और न कॉङ्ग्रेस के द्वारा निर्णीत किए हुए परिमाण का सूत कातने से ही स्वराज्य मिलेगा। स्वराज्य तो जन-साधारण के लिए रचनात्मक कार्य करने से ही मिलेगा। वह अपने देशवासियों की वास्तविक सेवा करने से ही आपको प्राप्त होगा।"

हम विश्वकवि की हृदय से प्रतिष्ठा करते हैं, उन्होंने अपनी प्रतिभा से भारत का गौरव संसार की दृष्टि में बढ़ाया है। परन्तु जहाँ हम उनकी इन बातों के लिए प्रतिष्ठा करते हैं, वहाँ उनके उपरोक्त कथन का घोर विरोध करते हैं। इतना ही नहीं; हम उनकी इन सारहीन बातों को अनर्गल प्रलाप के नाम से पुकारना चाहते हैं।

हम 'वन्देभ्रातरम्' के विरोधी नहीं हैं, प्रत्युत हम इसे मानव-साधना की एक परम हितकर वस्तु समझते हैं। हम यह भी कहने को तैयार हैं, कि भारत एवं विश्व के कल्याण के निमित्त 'वन्देभ्रातरम्' की प्रतिष्ठा की परम आवश्यकता है; परन्तु 'वन्देमातरम्' के स्थान पर नहीं, अन्यथा वह कलुषित हो जायगा। भ्राता केवल माता के चरणों का प्रसाद है, मातृ-जगत से भिन्न वह अपनी पृथक सत्ता नहीं रखता। भ्राता और सारा जगत प्रकृति का रूप है। इनका विभाग प्रकृति के भीतर ही है; परन्तु माता आदि-शक्ति का अवतार है—उस आदि-शक्ति का, जिसकी इच्छा मात्र से प्रकृति की सृष्टि होती है; उस आदि-शक्ति का, जिससे हीन होकर भगवान अपनी सृष्टि नहीं कर सकता। शक्ति से पृथक प्रकृति अपना अस्तित्व नहीं रख सकती; माता से पृथक भ्राता अपना अस्तित्व नहीं रख सकता; 'वन्देमातरम्' से पृथक 'वन्देभ्रातरम्' अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। तात्पर्य यह, कि 'वन्देभ्रातरम्' केवल 'वन्देमातरम्' के श्रीचरणों का प्रसाद है; इससे अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं। 'वन्देमातरम्' की पूजा से वह स्वतः सिद्ध हो जाता है, 'वन्देमातरम्' की सिद्धि से उसकी स्वयं सिद्धि हो जाती है तथा 'वन्देमातरम्' के ह्रास से उसका विनाश भी हो जाता है। भ्राता का प्यार मधुर है—अत्यन्त मधुर है, पर वह मातृ-चरणों के तिरस्कार के मूल्य पर नहीं ख़रीदा जा सकता।

यह तो वन्देमातरम् की दार्शनिक मीमांसा हुई। उसका एक ऐतिहासिक महत्व भी है। उस ऐतिहासिक महत्व में रवीन्द्र बाबू जैसे अथवा उनसे उच्च व्यक्तित्व के असंख्य मनुष्य विलीन हो जाते हैं। आधुनिक भारत के राजनीतिक इतिहास में 'वन्देमातरम्' की सृष्टि सन् , १९०५ ई० अर्थात् लगभग २६ वर्ष से हुई है। इन २६ वर्षों में 'वन्देमातरम्' के प्रेमातिरेक में जिस महान् इतिहास की सृष्टि हो चुकी है, उसे देख, सुन और पढ़ कर संसार चकित और स्तम्भित हो जायगा। कन्हाई और खुदीराम, रामप्रसाद और अशफ़ाक़, लाहरी और रौशन, भगत और सुखदेव, आज़ाद और जगदीश तथा इनकी भाँति सैकड़ों देशभक्त वीरों के फाँसी की रस्सियों के चूमने का वह मृत्यु-अभिनय; राजा महेन्द्रप्रताप और अजीतसिंह, हरदयाल और न जाने कितने देश-निर्वासितों के सर्वस्व त्याग की वेदनापूर्ण गाथाएँ और १९२० के असहयोग तथा १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन में जेल-प्रवास की सहस्रों मौन कहानियाँ × × × इन सारी बातों की जड़ में 'वन्देमातरम्' की प्रेरक शक्ति ही है। फिर उस

'वन्देमातरम्' को राष्ट्र कैसे भूल सकता है, चाहे लाखों रवी बाबू उसे भूल जाने की शिक्षा भले ही क्यों न दें?

इस स्थान में एक बात की चर्चा करना हम आवश्यक और अनिवार्य समझते हैं। हमें भय है, इसके बिना कहीं हमारे अर्थ का अनर्थ हो जाय। वह बात कन्हाई और खुदीराम × × × भगत और सुखदेव आदि के सम्बन्ध में है। हम उन वीर देशभक्तों के पथ से भले ही सहमत न हों, और सहमत हैं भी नहीं, पर हम उनकी निष्ठा और मातृभूमि के चरणों में उनके आत्म-समर्पण को नहीं भूल सकते। और जिस समय हम इस बात पर विचार करते हैं, कि उक्त वीरों की आहुतियों की जड़ में 'वन्देमातरम्' की उत्प्रेरक शक्ति काम कर रही थी; हम कम से कम उनके प्राणों के उस मँहगे सौदे के लिए ही इस प्यारे 'शब्द' को विस्मृत नहीं कर सकते। भगतसिंह और उनके साथी के विचारों से सर्वथा भिन्न विचार रखते हुए भी, हम यह कहेंगे कि जहाँ तक देश की बलिवेदी पर निष्काम आत्म-समर्पण का प्रश्न है, वहाँ एक-दो; दस-बीस; सौ-हज़ार; और लाखों तथा करोड़ों रवी बाबू उनके चरण-रज तक नहीं पहुँच सकते।

रवी बाबू के चरख़े का विरोधी सन्देश भी उसी प्रकार प्रमादपूर्ण है, जिस प्रकार उनकी उपरोक्त अनर्गल बातें। गाँधी जी अथवा काँङ्ग्रेस की शिक्षा यह नहीं है कि देश वास्तविक रचनात्मक कार्यक्रम न करे; उनकी मन्त्रणा तो केवल यही है, कि देश के सर्वोत्कृष्ट महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम में चरख़ा चलाना भी एक कार्यक्रम है। आत्म-शुद्धि एवं देश-सेवा के दृष्टिकोण से चरख़ा का महत्व सर्वश्रेष्ठ है या नहीं, यह एक विवादपूर्ण बात है; पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि चर्ख़े का महत्व रवी बाबू के छोटे व्यक्तित्व से अधिक ऊँचा, अधिक महान और अधिक उपयोगी है। हम तो विश्वकवि के इस अनर्गल प्रलाप का उत्तर इन्हीं शब्दों में देना अच्छा समझते हैं—'हे महान कवि, काश तेरा यह अनर्गल प्रलाप तेरी ही भाँति महान प्रमाद से पूर्ण न होता !!!

* * *

उन्नतिशील मैसूर

समाज-सेवा एवं सुधार का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ तक मैसूर राज्य भारत के अन्य देशी रियासतों अथवा प्रान्तों से अधिक उन्नतिशील एवं अग्रसर रहा है। मैसूर राज्य ने समय-समय पर क़ानून का निर्माण कर समाज की प्रचलित कुप्रथाओं को रोकने का प्रयत्न किया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है,कि सन् १९०८ ई० में,जबकि सारे भारत में बाल-विवाह शुभ एवं मङ्गलमय सङ्केतों का परिचायक समझा जाता था; मैसूर राज्य ने इस नाशकारी प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। इतना ही नहीं, मैसूर राज्य के अग्रगण्य समाज-सुधारकों के शुभ प्रयत्नों के द्वारा उस समय बाल-विवाह के विरुद्ध मैसूर सरकार ने एक क़ानून भी बनाया था।

'चाँद' के पाठकों को यह सूचित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष और सन्तोष होता है, कि हाल ही में मैसूर की व्यवस्थापिका सभा में शारदा एक्ट के ढङ्ग का एक बिल पेश हुआ है, जिसका तात्पर्य विवाह की आयु को अधिक बढ़ाना है। उक्त बिल मैसूर राज्य के प्रसिद्ध समाज-सुधारक सर के० जी० पुटन्ना चेटियार ने उपस्थित किया है। कहना नहीं होगा कि समाज-सेवा के निमित्त श्रीमान चेटियार महोदय का यह पवित्र प्रयत्न सर्वथा शुभ और अनुकरणीय है। पर साथ ही साथ इस स्थान पर हम एक आवश्यक बात की चर्चा किए बिना नहीं रह सकते। वह यह, कि जहाँ उक्त बिल समाज-सेवा एवं सुधार की शुभ भावनाओं से प्रेरित होकर उपस्थित किया गया है, वहाँ उसमें एक ऐसा भी त्रुटिपूर्ण अंश है, जिसके रहते हुए न तो श्रीमान चेटियार महोदय का ही उद्देश्य पूर्णतः सफल होगा और न बिल में ही पूर्णता आ सकेगी। वह अंश बिल का वह अपवाद है, जिसमें कहा गया है कि ज़िला मैजिस्ट्रेट की अनुमति से बारह वर्ष की बालिकाओं का विवाह किया जा सकता है। चाहे मैजिस्ट्रेट की अनुमति हो अथवा नहीं, बारह वर्ष की बालिकाओं का विवाह किसी भी अवस्था में उचित नहीं कहा जा सकता। इस आयु की बालिकाओं के विवाह से उत्पन्न शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक

दोष को मैजिस्ट्रेट की अनुमति नहीं मिटा सकती। जन-साधारण के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के इस वर्तमान अधःपात का ध्यान देते हुए कोई भी बुद्धिमान आदमी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता, कि १६ वर्ष से कम आयु वाली बालिकाओं का विवाह करना देश की माताओं और शिशुओं की आयु तथा उनके मानवी-विकास के भिन्न-भिन्न अङ्गों पर कुठाराघात करना है। और इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यदि उक्त बिल में बारह वर्ष वाला अपवाद पास हो गया तो इसका अर्थ यह होगा, कि मैसूर राज्य में असंख्य अशिक्षित माता-पिताओं को अपनी बालिकाओं के भावी सुख, शान्ति और विकास को नष्ट करने की पूरी क़ानूनी स्वेच्छाचारिता मिल जायगी।

* * *

नरक के अड्डे और पाप का व्यापार

देश के दुर्भाग्य से आज प्रत्येक प्रान्त में और विशेषकर प्रत्येक बड़े-बड़े नगर में व्यभिचार के गुप्त अथवा प्रत्यक्ष अड्डे मौजूद हैं। इतना ही नहीं, देश के भीतर आज ऐसी असंख्य नाशकारी गुप्त संस्थाएँ मौजूद हैं, जिनके द्वारा स्त्रियों और बालिकाओं का क्रय-विक्रय होता है। कहना नहीं होगा कि इन संस्थाओं के एजेण्ट रात-दिन इसी धुन में लगे रहते हैं कि किस स्थान से किस परिवार की कौन सी स्त्री भगाई जाय; उन्हें कौन-कौन से प्रलोभन दिए जायँ, आदि-आदि?

इन्हीं व्यभिचार के अड्डों तथा महिलाओं के क्रय-विक्रय करने वाली संस्थाओं को, बने हुए क़ानून के व्यवहार द्वारा शीघ्रातिशीघ्र दबाने के लिए अखिल भारतीय महिला-सङ्घ का एक डेपुटेशन हाल में ही मद्रास के होम-मेम्बर से मिला था।

इस प्रसङ्ग में यह कहना अनुचित न होगा, कि एक वर्ष से अधिक हुआ, जब कि मद्रास नगर की कई उपयोगी एवं समाज-सेवी संस्थाओं के प्रयत्न से व्यभिचार के अड्डों तथा महिलाओं एवं बालिकाओं के क्रय-विक्रय करने वाली संस्थाओं को पूर्णरूप से दबाने के निमित्त सरकारी क़ानून बनाया गया था; परन्तु वह क़ानून अभी काम में नहीं लाया जा रहा है! कहते हैं कि क़ानून बनने के पहले सरकारी गणना के अनुसार केवल मद्रास नगर में ही छः सौ से अधिक व्यभिचार के अड्डे थे! इन अड्डों की संख्या क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। इसके अतिरिक्त एजेण्टों अथवा दलालों के द्वारा इनमें सदा नई स्त्रियाँ और बालिकाएँ लाई जाने के कारण इन अड्डों में रहने वाली अभागिनियों की संख्या पहले की अपेक्षा लगभग दूनी हो गई है और यदि संख्या की वृद्धि का यह क्रम इसी प्रकार रहा तो भगवान जाने भविष्य का चित्र कितना भयानक होगा।

यह तो रहा अड्डों की संख्या के विषय में। उनके भीतर रहने वाली अभागिनियों के कष्टों की गाथा करुणा से अधिक करुण और दुख से अधिक दारुण है। वह इस पृथ्वी पर रहने वाली अभागिनी बहिनों की ऐसी मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसकी ज्वाला नरक से अधिक दाहक है! पाठकों की जानकारी के निमित्त हम यहाँ कुछ अभागिनियों की दशा का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं:—

(क) एक स्कूल का मास्टर एक बार व्यभिचार के अड्डे में गया, वहाँ कम्मा जाति की दो बालिकाएँ थीं। उनकी अवस्था अभी पूरी नहीं हुई थी, परन्तु चौबीस घण्टे में, उनकी मालकिन के इच्छानुसार, जितनी बार वह चाहे, उन्हें पुरुषों के साथ सम्भोग करना पड़ता था। उन्होंने अपनी दर्द-भरी कहानी मास्टर से कही और उसने शीघ्र ही पुलीस को ख़बर देकर उनकी रक्षा की।

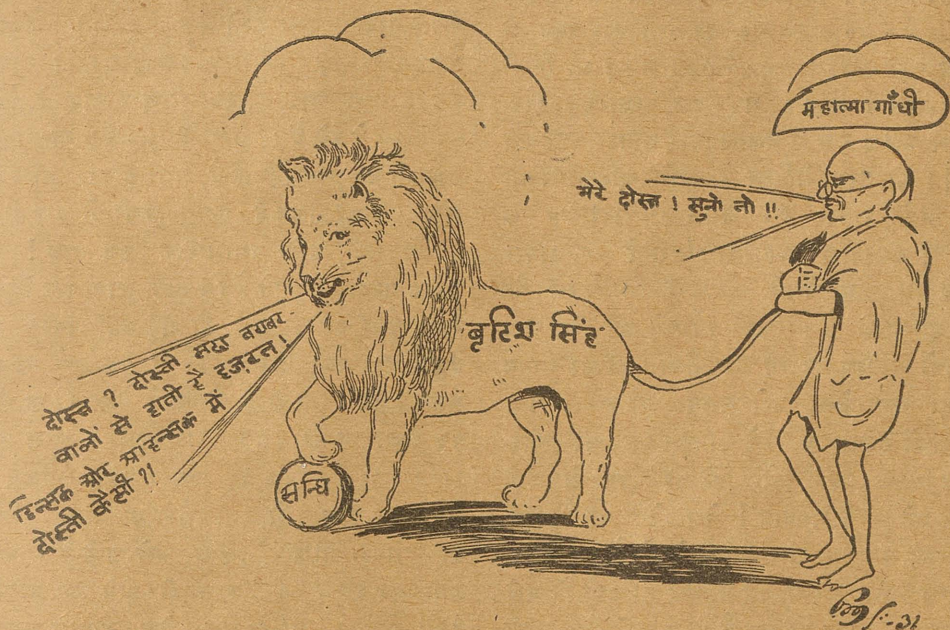
(ख) बारह साल की ब्राह्मण की एक बालिका कुछ ही रुपयों में अपने चाचा द्वारा एक बुढ़िया दलाल के हाथ बेची गई। उसके साथ इतना अधिक प्रसङ्ग किया जाता था, कि कुछ ही दिनों में वह बहुत अधिक बीमार हो गई और अब प्रसङ्ग के योग्य न रही। उसकी यह अवस्था देख कर उसे रयापुरम् अस्पताल में भेजा गया। वहाँ उस बालिका ने अपने जीवन की लोमहर्षक कहानियाँ प्रधान डॉक्टर को सुनाईं; जिसने दया कर उसे वहाँ से सीधे मद्रास की शिशु-सहायक-संस्था (Children's Aid Society) में भेज दिया।

(ग) एक दूसरे अड्डे से १३ वर्ष की एक सुकुमार मुस्लिम बालिका छुड़ाई गई। उसका कहना है, कि अड्डे का मालिक उसे रात-दिन ताले के भीतर, इसलिए

बन्द रखता था कि वह कहीं भाग न जाय। कारण, वह अपने प्रति किए गए व्यवहार का विरोध करती थी। जब वह प्रसङ्ग करने को राज़ी न होती तो वे उसे एक खम्भे में बाँध देते और उसकी आँखों में काली और लाल मिर्च का चूर्ण छोड़ देते। एक नौजवान मुसलमान को, जो उस अड्डे में गया था, उसकी दर्दनाक कहानी पर दया आ गई और उसने पुलिस को सूचना देकर उसे छुड़ा लिया। उसी अड्डे में एक १२ साल की मुसलमान बालिका भी थी, जो ट्रिची से लाई गई थी। उसकी दशा भी उपरोक्त बालिका की ही भाँति थी। इन दोनों बालिकाओं को भयानक रूप से सूज़ाक और गर्मी की बीमारी हो गई और गवर्नमेण्ट मेटरनिटी अस्पताल में स्वस्थ हो जाने पर ये महिला-सहायक-सभा में भेज दी गईं।

इस प्रकार और इससे भी अधिक दारुण असंख्य दृष्टान्त उन नारकीय अड्डों के सम्बन्ध में दिए जा सकते हैं। मनुष्यता के इस दारुण पतन की करुण कहानियों से आहत होकर ही कुछ समाज-सेवकों और सुधारकों के अनवरत परिश्रम से इन भयानक अड्डों के दबाने के उद्देश्य से सरकार ने आज से लगभग डेढ़ वर्ष हुए Immoral Traffic Act नामक एक क़ानून बनाया था; परन्तु वह क़ानून अभी सरकार के द्वारा कार्यरूप में परिणत नहीं किया जा रहा है। इसका कारण यह बतलाया जाता है, कि यदि उन अड्डों को तोड़ दिया जाय तो उनमें रहने वाली अभागिनियों के भरण-पोषण का कोई अन्यत्र प्रबन्ध नहीं है। सरकार की यह दलील भ्रामक और अज्ञानता से पूर्ण है। एक तो मद्रास नगर में अखिल भारतीय महिला-मण्डल की अध्यक्षता में बहुत सी ऐसी संस्थाएँ हैं, जहाँ कि इन पतित बहिनों को केवल आश्रय ही नहीं मिल सकता, वरन् उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की उपयोगी शिक्षा भी मिल सकती है। दूसरे यदि ऐसी संस्थाएँ न भी हों तो यह सरकार का कर्तव्य है कि देश की छाती पर से मनुष्यता के इस नग्न-पतन का उद्धार करे और उस उद्धार के पवित्र प्रयत्न में समुचित व्यय भी करे। जो सरकार ऐसा नहीं कर सकती, वह अन्यायी और स्वार्थी है और ऐसी सरकार की उदासीनता की जितनी भी निन्दा की जाय, थोड़ी है!

* * *



शेर-बकरी सम्मेलन



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

मालूम होता है, हमारे देश के पढ़े-लिखे युवकों के लिए केवल दो-तीन व्यवसाय रह गए हैं। यदि वाजिबी ही वाजिबी पढ़े तो क्लर्की पर डट गए और यदि काले आदमियों की भाषा में सुशिक्षित हो गए—अर्थात् ग्रेज्युएट बन गए, तो वकालत की ओर भागे। जिनमें बी० ए० पास करने का धैर्य न हुआ अथवा जिन्होंने समझा कि बी० ए०, एम० ए० का योग इस जन्म के जन्मपत्र में नहीं पड़ा, वह एफ़० ए० तक पढ़ कर किसी मेडिकल कॉलेज में प्रविष्ट हो गए। बस, अल्ला-अल्ला ख़ैर-सल्ला ! इस कारण देश में वकील और डॉक्टर बेतहाशा बढ़ गए हैं। मेटीरिया मेडिका में इतनी बीमारियाँ भी न होंगी, जितने डॉक्टर हैं। जिस गली में देखिए एक अल्मारी में दस-बीस रङ्ग-बिरङ्गी शीशियाँ भरे डॉक्टर साहब डटे हैं। रोगी मारने को नहीं मिलते तो बैठे मक्खियाँ ही मारते हैं। किसी अभागे की मौत आई तो मक्खियों के साथ वह भी आ फँसा। डॉक्टर साहब ने चार-छः रुपए लेकर उसे यमपुर का रास्ता बता दिया। हज़ारों रुपए ख़र्च करके डॉक्टरी पास की—परिणाम यह निकला कि सवेरे उठे तो ईश्वर से यही मनाते हुए उठे—"हे भगवान ! भेज प्लेग या हैज़ा।" किसी हट्टे-कट्टे तन्दुरुस्त आदमी को देखते हैं तो आँखों में ख़ून उतर आता है। सोचते हैं, ऐसे ही दुष्टों के मारे हमारा रोज़गार चौपट हो रहा है। न जाने किस चक्की का पीसा खाते हैं। किसी दुबले-पतले खाँसी-खुर्रे वाले को देख कर बाछें खिल जाती हैं—सोचते हैं, शायद हमारे ही पास आ रहा है। बहुत पुरानी बीमारी हो तो पौ-बारह हैं। पुरानी बीमारी देर में अच्छी होती है न ? न भी पुरानी हुई, तो डॉक्टर साहब किसलिए हैं ? एक महीने के पहले तो पिण्ड छोड़ेंगे नहीं। रोगी अपने आप ऊब कर भागे तो भाग जाय। डॉक्टर साहब सर्जरी भी जानते हैं। मगर अफ़सोस है कि औज़ार नहीं है। औज़ार आवे कहाँ से ? जो कुछ पास-पल्ले था वह तो केवल डॉक्टरी पास करने में ख़र्च हो गया। औज़ार और दवाइयों के लिए किसी सेठ-साहूकार की ताक में बैठे हैं। दो-एक चाक़ू कॉलेज से चुरा लाए थे, फ़िलहाल वही काम दे रहे हैं। हालाँकि कुछ ज़ङ्ग खा गए हैं और धार भी कमज़ोर पड़ गई है, मगर डॉक्टर साहब के हाथों में अभी काफ़ी ताक़त है। फोड़ा-फुन्सी तो चीर ही डालेंगे, छोड़ेंगे नहीं, चाहे तमाम दिन लग जाय ! परेड के प्रत्येक बाज़ार में जाते हैं कि कोई पुराना सेट मिल जाय, मगर अभी तक तो कोई दिखाई नहीं पड़ा। एक सेट देखा था, परन्तु दाम अधिक थे, इसलिए पसन्द नहीं आया। इस घात में हैं कि कोई ऐसा व्यक्ति फँसे जो यह न जानता हो, कि यह भी किसी के काम की चीज़ हो सकती है। उसे वह मनुष्य-मात्र के लिए बेकार समझ कर दाम माँगे, तो सौदा पट जाय। फ़िलहाल तो चार-छः शीशियाँ लेकर चले आते हैं। धीरे-धीरे जमा कर रहे हैं, कोई अल्मारी हत्थे लग जायगी तो उनमें कोयला, खरिया मिट्टी, गेरू, रामरज तथा हरा-पीला पानी भर कर अल्मारी में सजा देंगे।

जब से होम्योपेथी और एलेक्ट्रो होम्योपेथी का रवाज हुआ, तब से तो डॉक्टरी और भी सहल हो गई। दो-चार पुस्तकें पढ़ डालीं, किसी नाम-मात्र के होम्योपेथिक कॉलेज से परीक्षा-पत्र मँगा लिए और झट एच० एम० बी० की डिग्री प्राप्त कर ली। होम्योपेथी में शुगर ऑफ़ मिल्क (शकर) और "एक्वाप्योरा" (पानी) के अतिरिक्त और किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन्हीं को शीशियों में भर कर रख दिया और डॉक्टर बन गए। कोई मरीज़ फँसा तो उसके रोग के "सिम्पटम" पकड़ने के लिए उसके ख़ानदान भर का हाल पूछ गए, मगर सिम्पटम कमबख़्त पकड़े नहीं मिलता, परन्तु फिर भी अनुमान से दवा दे ही दी। अच्छा हो गया तो डॉक्टर साहब के भाग्य से, मर गया तो अपने भाग्य से। दो-चार मित्रों को लगा रक्खा है। वे लोग जहाँ-कहीं बातचीत होती है तो डॉक्टर साहब की प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं। "भई, नासूर तो अमुक डॉक्टर ने अच्छा किया था। शहर भर के डॉक्टरों का इलाज किया, मगर जनाब, कोई फ़ायदा न हुआ। अकस्मात हमारे मन में आ गया कि ज़रा इनको भी दिखा दें। बस जनाब, उनका इलाज शुरू किया। सच मानिए—एक हफ़्ते में जड़ से जाता रहा। बड़ी सूझ-बूझ का आदमी है। और मरीज़ के साथ मेहनत भी करता है।" किसी ने शङ्का उठाई कि—"वह तो अभी लौण्डे हैं।" तो बिगड़ गए—"वाह, यह आपने अच्छी कही। लौण्डे हैं तो क्या हुआ? पढ़ा नहीं है? अब भी रात-दिन पढ़ा ही करते हैं? केस को स्टडी करके दवा देते हैं। बड़े डॉक्टर क्या ख़ाक स्टडी करेंगे। ज़रा नब्ज़ पकड़ी, ज़बान और आँखें देखीं—दवा दे दी। उनकी बला से, चाहे मरे या जिए। नाम निकल गया है इससे सब उन्हीं के पास दौड़ते हैं। ये नए आदमी हैं सही, परन्तु बड़े मेहनती हैं। ख़ूब सोच-समझ कर दवा देते हैं। इसीसे अधिकांश केस अच्छे होते हैं। सारी बात 'स्टडी' की है—नए-पुराने की बात नहीं है। और फिर हाथ कङ्गन को आरसी क्या? एक दफ़ा उनसे इलाज कराके देखिए तो पता लग जाय!" चलिए इस प्रकार महीने में दो-चार मरीज़ मिल गए। उनमें से एकाध अच्छा हो गया—डॉक्टर साहब की दवा से नहीं, वरन् अपने आप। बस वह उनका चेला हो गया।

सम्पादक जी, मेरी आँखों देखी बात है, एक डॉक्टर साहब, इतने बड़े सर्जन हैं, कि ज़ख़्म को तार के ब्रश से धोते हैं। एक व्यक्ति की जाँघ में एक इञ्च चौड़ा घाव था। उसकी शामत जो आई, तो वह उन हज़रत के पास पहुँच गया। उन्होंने घाव को दोनों समय तार के ब्रश से रगड़-रगड़ कर धोना आरम्भ किया। उनके लिए वह घाव नहीं, बल्कि सोने-चाँदी का कोई ज़ेवर था। परिणाम यह हुआ कि चार-पाँच दिन में वह घाव एक इञ्च से बढ़ कर छः इञ्च का हो गया। और आनन्द यह कि तार के ब्रश से धोने में रोगी को कष्ट होता था और वह हाय-तोबा मचाता था, तो आप उसे डाँटते थे कि "वाह! बड़े कमज़ोर दिल के आदमी हो; घाव धोने में इतना चिल्लाते हो!" जब उसने देखा कि डॉक्टर साहब इस प्रकार धो-धोकर सारा शरीर ग़ायब कर देंगे, तब वह दूसरे डॉक्टर के पास गया। उन्होंने जो तार के ब्रश से धोने की बात सुनी, तो दाँतों तले उँगली दाब ली। कोई बिगड़े दिल होता तो पुलिस में रिपोर्ट करके डॉक्टर साहब को धरवा देता; परन्तु वह भले आदमी हैं, अतएव चुप बैठ रहे। यह डॉक्टरों का हाल है!

यही दशा वकीलों की भी है। किसी ने क्या ख़ूब कहा है—"गर बजोयम कुलूख़े इस्तिञ्जा, सरे वुकला बदस्त मी आयद!" अर्थात् यदि मैं इस्तिञ्जे के लिए ढेला उठाता हूँ, तो वकीलों का सर हाथ में आता है। वकीलों का नम्बर डॉक्टरों से भी बढ़ा-चढ़ा है। कचहरी जाइए तो देखिए, कैसी-कैसी सूरतें दिखाई पड़ती हैं। अभी अच्छी तरह रेख भी नहीं आई, मगर नीम के नीचे तख़्त डाले बैठे 'अल्ला भेज, मौला भेज' जप रहे हैं। घर से जो चार-छः आने पैसे जेब में डाल कर ले गए, वह खा-पीकर शाम को घर आ गए। दोपहर को बार एसोसिएशन में वह धमाचौकड़ी मचती है कि स्कूल के लौंडे भी देख कर झेंप जायँ। किसी ने जलपान के लिए चार पैसे की कोई चीज़ मँगाई, उसे देखते ही दो-चार और टूट पड़े और छीन कर खा गए। वह बेचारा मुँह ताकता रह गया। कोई देखे तो समझे कि अच्छे अकाल के मारे जमा हैं। क्या करें, मुक़दमे नहीं मिलते तो यही सही—किसी प्रकार दिन तो कटे। तबीयत घबराई तो किसी अदालत में जा बैठे। और कुछ नहीं तो केस ही

"स्टडी" कर रहे हैं। किसी जान-पहचान वाले ने देखा और पूछ बैठा तो बोले—हम भी इस केस में अमुक वकील के साथ हैं।

बहुतों ने दलाल छोड़ रक्खे हैं। वह बाहर से मवक्किल फाँस-फूँस कर लाते हैं और वकील साहब को सौंप देते हैं। उनकी चौथाई बँधी हुई है।

अपने राम के एक मित्र, जो हाल ही में वकील हुए हैं, एक दिन बोले—क्या बतावें, हमसे तो हमारा मुहर्रिर अधिक पैदा कर लेता है।

उनसे पूछा गया—किस प्रकार?

बोले—उनकी मार्फ़त जो मुक़दमा आता है, उसमें जो मेहनताना मिलता उसमें से चौथाई वह ले लेते हैं। एक मुक़दमा आया उसमें हमें पाँच रुपए मिले। उसमें से सवा रुपए मुहर्रिर साहब ले गए—हमारे पास पौने चार बचे। उधर मुहर्रिर साहब को सवा रुपया तो हमसे मिला, एक रुपया तहरीर का लिया। कुछ टिकटों में घपला किया—एकाध शिनाख़्त कर आए। इस प्रकार जब वह शाम को घर चले तो उनकी जेब में पाँच रुपए के लगभग थे और हमारे पास वही पौने चार! अब बताइए वकील साहब अच्छे रहे, या मुहर्रिर! कभी कोई मुवक्किल फँस गया तो महीने भर की सारी कमाई अकेले उसी ग़रीब से वसूल करने की चेष्टा करते हैं।

किसी अगली चिट्ठी में वकीलों के सम्बन्ध में विस्तृत लिखने का प्रयत्न करूँगा। इस समय विचारणीय बात केवल यही है, कि क्या हमारे नवयुवकों को कोई और पेशा ढूँढ़े नहीं मिलता? इससे तो कोई दस्तकारी सीखें, किसी कला का अभ्यास करें, तो कहीं अच्छे रहें।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

चुम्बन के प्रति—

[श्री० बालकृष्ण राव]

(१)

प्रेम के मूर्तिमान माधुर्य,
कल्पनाओं के कोमल चित्र!
स्नेह-सरिता की ऊर्मि अनूप,
दिव्य आशा की पूर्ति पवित्र!!

(२)

सुखद संयोग-दिवस के मञ्जु,
अरुण आभामय प्रातःकाल!
सुमन-मधुकर के शुभ संयोग,
मृदुल, मनमोहक, मायाजाल!!

(३)

भव्य भावों के अनुपम रूप,
प्रीति के हे, पुनीत परिधान!
हृदय मधुमयकारी, कोमल,
कामना कोकिल के कल गान!!

(४)

सुखद स्वप्नों के सच्चे रूप,
मुग्ध मन की मृदु मौन पुकार!
देवलोकों की विमल विभूति,
सौख्य-सागर के सुन्दर ज्वार!!





[श्री० रतनलाल जी मालवीय, बी० ए०]

मांस-पेशियों को विकसित और पुष्ट करने वाला भोजन

शारीरिक स्वास्थ्य और बल के लिए सात्विक और पौष्टिक भोजन जितना आवश्यक है, उतना कोई अन्य पदार्थ नहीं। इसी की असावधानता से मनुष्य अकाल ही में अपने हाथ से अपनी क़ब्र खोदता है। कुछ व्यवसायी पहलवानों का कहना है कि जो नियमित रूप से कसरत करते हैं, वे अपनी इच्छा के अनुसार हर एक पदार्थ खाकर पचा सकते हैं। परन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। जो मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ, बलिष्ट तथा अपनी मांस-पेशियों को लोहे जैसी बनाना चाहता है, उसे अवश्य भोजन-सम्बन्धी नियमों का पालन करना पड़ेगा।

मनुष्य-शरीर ईश्वर की कारीगरी का अद्भुत नमूना है। संसार का कोई यन्त्र जटिलता में मुक़ाबला नहीं कर सकता; परन्तु है वह उसी सिद्धान्त पर अवलम्बित, जिस पर अन्य यन्त्र हैं। मनुष्य यह अच्छी तरह जानता है कि वह अपनी मोटर या अन्य किसी यन्त्र को कूड़ा-करकट और गन्दगी मिले हुए तेल के द्वारा सञ्चालित नहीं कर सकता; पर वह स्वयं अपने शरीर के जटिल यन्त्र में दुनिया की सब अलाबला ठूँस कर सदैव एक ही गति से सञ्चालित रखना चाहता है। प्रकृति कभी इसे गवारा नहीं कर सकती। वह स्वयं नियम से चलती और अपने बच्चों को भी नियमपूर्वक चलाना चाहती है।

मांस-पेशियों को बलिष्ट बनाने वाले भोजन पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। पर हमारे पास इतना स्थान नहीं है कि हम उन ग्रन्थों का सार दे सकें। इसलिए यहाँ हम केवल ऐसे सुप्रसिद्ध पहलवानों और व्यायाम-विशारदों के भोजन-सम्बन्धी अनुभवों का उल्लेख करेंगे, जिन्होंने स्वयं उन भोजनों पर अवलम्बित रह कर अपना शरीर लोहे की तरह बनाया है।

एक सुप्रसिद्ध पहलवान गहमन का कहना है कि उसके शारीरिक विकास का सारा श्रेय भोजन को है। वह लगातार तीन वर्षों तक कच्चे भोजन पर रहा है और उस बीच में उसने सुखाए हुए, पके या उबाले हुए भोजन का एक ग्रास भी नहीं खाया। उसका प्रधान भोजन सूखे और ताज़े फल और कच्चा शाक रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि मांस-पेशियों को विकसित और पुष्ट करने के लिए जितना बिना पकाया हुआ भोजन लाभदायक है उतना और किसी प्रकार का भोजन नहीं। जो लोग वर्षों से पके हुए भोजन के आदी हो गए हैं, उन्हें भले ही कच्चा भोजन रुचिकर प्रतीत न हो, पर उससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता।

इसके साथ ही कच्चे भोजन के समान सादा कोई दूसरे प्रकार का भोजन नहीं है। उसमें कच्चा दूध, हरा शाक और फल सम्मिलित हैं। साधारण भोजन की तरह उसे मिर्च-मसाले से सुस्वादु और चटपटा बनाने की आवश्यकता नहीं और न खाने का कोई समय ही निश्चित करने की आवश्यकता है। जब तुम्हें भूख लगे तभी भोजन करने बैठ जाओ और क्षुधा शान्त होने पर बन्द कर दो। इसके साथ तुम्हें मांस, चाय, क़हवा, शराब और अन्य नशीली चीज़ों का भी पूर्ण बहिष्कार करना पड़ेगा।

प्राचीन रोमन लोग शारीरिक विकास और सुन्दर गठन में संसार में अद्वितीय हो गए हैं। यद्यपि वे अब

संसार में नहीं हैं, पर उनकी स्मृति अब भी बाक़ी है। उनका इतिहास हमें बतलाता है कि वे प्याज़, हरा शाक, ताज़े फल और सादी रोटी का आहार करते थे।

आज भी इटली का सुप्रसिद्ध पहलवान 'लिगी-सिया-राटो' जो अपने को जूलियस सीज़र और पाम्पेआई के घराने का बतलाता है, उन प्राचीन रोमनों का प्रतिनिधि स्वरूप मौजूद है। अपनी पीठ के बल चार हज़ार पौण्ड का वज़न उठाना और अपनी बलिष्ट तथा दृढ़ भुजाओं के सहारे चालीस घोड़े की शक्ति वाला इञ्जन रोकना उसके बाएँ हाथ के खेल हैं। जिन्होंने उसके इन शक्तिशाली कार्यों को अपनी आँखों से देखा है, उन्हें इस बात पर विश्वास न होगा कि शक्ति का यह पुतला मांस से अत्यधिक परहेज़ करता था और केवल दूध, चोकर मिली हुई सादी रोटी, हरा शाक और ताज़े फलों पर रहता था।

जो लोग सिनेमा देखने के शौक़ीन हैं, उनमें से शायद ही कोई ऐसा हो, जिसने इटली के चित्रपट पर संसार के सुप्रसिद्ध वीर सोन सोनिया एलबर्टनी के अद्भुत कार्यों को आश्चर्य-चकित दृष्टि से न देखा हो। वह सिनेमा-संसार में "लोहे का आदमी" के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी मांस-पेशियाँ इतनी विकसित और स्फूर्तिपूर्ण तथा उसके अवयव इतने शक्तिशाली हैं कि चार कुर्सियों को बाँध कर पीछे की ओर छलाँग मारने वाला संसार में वह एक ही व्यक्ति है। उसकी त्वचा हाथी की त्वचा की भाँति और हड्डियाँ इस्पात की तरह सख़्त हैं। उसने ऐसा शरीर मांसाहार से नहीं, बल्कि सादे और निरामिष भोजन से प्राप्त किया है।

ऊपर जिस कच्चे फल और शाक की इतनी प्रशंसा की गई है, उसके सम्बन्ध में इतना जान लेना आवश्यक है कि ज़मीन में जो खनिज तत्व वर्तमान हैं, वे उस ज़मीन पर उत्पन्न होने वाले पदार्थों में उसी समय तक रहते हैं, जब तक वे कच्चे रहते हैं, उबालने, सेंकने और पकाने से मांस-पेशियों को पुष्ट करने वाले उनके तत्व नष्ट हो जाते हैं। उनमें केवल गूदा शेष रह जाता है और उनके असली जीवन-तत्व भाप या धुएँ के साथ उड़ जाते हैं। पकने के उपरान्त उन फलों की जीवनदायिनी शक्ति नष्ट हो जाती है, केवल उसका निर्जीव शरीर बच रहता है।

यदि आप अपने शरीर को विकसित करना चाहते हैं, मांस-पेशियों को उभरी हुई और लोहे के समान बनाना चाहते हैं तो अपने भोजन को पका कर उसके तत्व को नष्ट न करें। आमाशय की ज्वाला ही उसे पकाने के लिए काफ़ी है। वास्तविक रूप में व्यवहार करने से उन पदार्थों के खनिज तत्व भाप के साथ ऊपर उड़ने के बजाय अवयवों को पुष्ट बनाएँगे। मांस-पेशियों और कच्चे शाक और फलों के तत्व भी मिलते-जुलते हैं।

जीवन-शक्ति और सहन-शक्ति बढ़ाने वाला भोजन

शरीर में स्थित जीवन-शक्ति का मुख्य कार्य रोगों के आक्रमण को रोक कर शरीर को स्वस्थ और बलिष्ट रखना है। भोजन को इस प्रकार रोग-निवारक बनाने के लिए सब से पहले इस बात की आवश्यकता है कि उसके स्वाभाविक तत्वों का क्षय न होने पावे। भोजन में जीवन-शक्ति-वर्धक तत्वों की कमी होने से शरीर की बाढ़ मारी जाती है, आमाशय अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है, बल का क्षय प्रारम्भ हो जाता है और शरीर में रोगों का आक्रमण रोकने की शक्ति क्षीण हो जाती है।

साधारण मनुष्य भोजन पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते। वे जिस प्रकार कुश्ती लड़ना और व्यायाम करना व्यवसायी पहलवानों का कार्य समझते हैं, उसी प्रकार भोजन पर विशेष ध्यान देना भी पहलवानों ही का कार्य समझते हैं। शक्ति-वर्धक भोजन के सम्बन्ध में ऐसे विचार लाना उतना ही मूर्खतापूर्ण है, जितना यह विचार करना कि शिक्षा की केवल उन्हीं को आवश्यकता है जो कॉलेज के प्रोफ़ेसर, व्यवसायी डॉक्टर या वकील होना चाहते हैं! वास्तव में शक्ति-वर्धक भोजन मनुष्य के शारीरिक विकास के लिए उतना ही आवश्यक है जितनी कि शिक्षा मानसिक विकास के लिए है।

एक बार अमेरिका के 'सेटरडे इवनिङ्ग पोस्ट' के विद्वान सम्पादक होरेस लारीमर ने अपने पत्र के मुख-पृष्ठ पर एक बलिष्ट और सुडौल जीवन-रक्षक तैराक का चित्र प्रकाशित किया था। यह तैराक एक बड़े जलाशय के किनारे अभिमान से गर्दन ऊँची किए निर्नि-

मेष नेत्रों से प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य का निरीक्षण कर रहा था और घाट पर स्नान और जलक्रीड़ा करती हुई बहुत सी सुन्दरियाँ उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थीं। इस चित्र की समालोचना करते हुए न्यूयार्क शहर से प्रकाशित "डेली मिरर" के सम्पादक ने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था कि "श्री० लारीमर ने इस चित्र में इस बात का बहुत ग़लत अनुमान किया है कि बलिष्ट और सुगठित शरीर वाले मनुष्य आदर्श पति होते हैं और सुन्दरी स्त्रियाँ अपने हाव-भाव और कटाक्षों से उनके हृदय को आकर्षित नहीं कर सकतीं।" उसने यह भी लिखा था कि हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों में मस्तिष्क नहीं होता; वे जड़ और बुद्धिहीन होते हैं। अपने इस विचार की पुष्टि उसने वाल्टेयर का उदाहरण देकर की थी। फ्रान्स के इस सुप्रसिद्ध तत्वज्ञ में यद्यपि एक १२ साल के लड़के को भी परास्त करने की शक्ति नहीं थी, परन्तु उसकी मानसिक शक्तियाँ इतनी विकसित थीं कि 'फ्रेडरिक दी ग्रेट' को भी वह क्षण भर में मात कर देता था। इस पत्र के सम्पादक का यह कथन कुछ अंशों में सत्य है कि बहुत से बलिष्ट और सुडौल पुरुष जड़ और बुद्धिहीन होते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें शारीरिक और साथ-साथ मानसिक विकास के वैज्ञानिक ढङ्ग बतलाने वाला योग्य गुरु नहीं मिलता। परन्तु यह भी झूठ नहीं है कि अधिकांश निर्बल और अविकसित गठन वाले मनुष्य भी मानसिक विकास से बिल्कुल शून्य रहते हैं, और दिन-रात औषधियों के विज्ञापन उलटते रहते हैं। बहुत से बलिष्ट मनुष्य बुद्धिहीन होते हैं अवश्य, परन्तु उनकी इस बुद्धिहीनता का कारण उनकी सुगठित मांस-पेशियाँ नहीं हैं। सम्पादक महोदय को यह याद रखना चाहिए कि बलिष्ट 'टनी' ने जिस दिन 'जैक डैम्पसे' को घूँसेबाज़ी में पछाड़ कर संसार का सब से बड़ा बाक्सर होने की ख्याति लाभ की थी, उसी दिन सन्ध्या को उसने न्यूयार्क यूनीवर्सिटी में महाकवि 'शेक्सपियर' पर एक विद्वत्तापूर्ण वक्तृता दी थी! पोलैण्ड का सुप्रसिद्ध पहलवान ज़ेबिस्को, जो थोड़े समय पहले प्रसिद्ध भारतीय पहलवान गामा से लड़ने आया था, बैरिस्टर है! स्वामी रामतीर्थ में, जिन्होंने अमेरिका में वेदान्त का बिगुल बजाया था, समुद्र में इक्कीस मील तक तैरने की शक्ति थी! वाल्टेयर की मानसिक शक्तियों की प्रशंसा करते समय उक्त पत्र-सम्पादक महोदय यह सोचना भूल गए कि बलिष्ट शरीर का मस्तिष्क निर्बल शरीर के मस्तिष्क से अधिक कार्य कर सकता है और यदि वाल्टेयर बलिष्ट होता तो शायद उसके मस्तिष्क की शक्तियाँ और भी अधिक विकसित होतीं और उसकी विचार-शक्ति अधिक तीक्ष्ण होती।

जब स्वास्थ्य-विभाग के कमिश्नर डॉ० कोपलेण्ड न्यूयार्क शहर से बदल कर सीनेटर बना कर वाशिङ्गटन भेजे गए थे तब वहाँ पहुँचते ही उन्होंने वहाँ के सीनेटरों और प्रतिनिधियों की एक सभा बुला कर व्यक्तिगत सङ्गठन के अनुसार सब से पहले उनका व्यायाम और भोजन निर्धारित किया था। डॉ० कोपलेण्ड यह अच्छी तरह जानते थे कि इन राजनीतिज्ञों को देश की सीनेट और कॉङ्ग्रेस में अपना कार्य समुचित रीति से चलाने के लिए जीवन-शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है और वह शक्ति उन्हें उचित व्यायाम और भोजन से ही प्राप्त होगी।

थ्योडोर रोज़वेल्ट अमेरिका के उन सुप्रसिद्ध प्रेज़िडेण्टों में से था, जो जीवन भर अपने देश की रक्षा और अपने देशवासियों के अधिकारों के लिए लड़ते रहे हैं। जो उसे अमेरिका का सबसे बड़ा बहादुर और लड़ाकू प्रेज़िडेण्ट समझते हैं, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि युवा रोज़वेल्ट बहुत निर्बल और हड्डियों का ढाँचा मात्र था। स्पेनिश अमेरिकन युद्ध के समय उसने केवल एक सवार सिपाही के रूप में ही ख्याति लाभ की थी। रोज़वेल्ट और उसके साथी बहादुर सवारों के नाम से आज स्वर्ण-अक्षरों में चमक रहे हैं, पर उसके साथियों को भी शायद इस बात का ख़्याल न रहा होगा कि उसके इस विकास का मुख्य कारण समुचित व्यायाम और सात्विक तथा पौष्टिक भोजन था। वह इतना व्यायाम—प्रेमी था कि जब वह अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट के पद पर था, तब भी उसका बाक्सिङ्ग का शिक्षक उसे व्यायाम कराने के लिए 'ह्वाइट हाउस' आया करता था।

जीवन-शक्ति और सहन-शक्तिवर्धक जितने पदार्थ हैं, उनमें से हर एक पदार्थ हर एक व्यक्ति के लिए लाभदायक सिद्ध नहीं होता। जिसको एक पदार्थ लाभदायक होता है, वही दूसरे को हानिकारक। इसलिए व्यक्ति-

गत आवश्यकता के अनुसार हम यहाँ कोई ख़ास आहार निर्धारित न कर सकेंगे। यहाँ हम केवल उन शक्तिवर्धक पदार्थों का उल्लेख करेंगे, जो सहनशक्ति बढ़ाने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। अपने शारीरिक सङ्गठन तथा व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुसार चुनाव करना उचित है।

फलों में केला और तरबूज़ में जीवन-शक्तिवर्धक तत्व साधारण रूप से होते हैं; खजूर और सेब में कुछ अधिक शक्ति है। परन्तु टमाटर, सन्तरा और अङ्गूर शक्ति बढ़ाने में अद्वितीय हैं। तरकारियों में चुक़न्दर और ककड़ी साधारण शक्ति-वर्धक होते हैं। पर गोभी और पालक आदि भाजियों में अत्यधिक शक्ति होती है।

जिन लोगों का विश्वास मांस, अण्डे और कॉड-लीवर ऑयल आदि में है, उन्हें यह भ्रम निकाल देना चाहिए। जो तत्व उपर्युक्त पदार्थों में मौजूद हैं उनके पूरे तत्व सूखे तथा गुठलीदार फलों जैसे—बादाम, अख़रोट, गरी, सकलपारे आदि में मिलते हैं। उनसे जितना अधिक लाभ होता है उतना मांसादि से नहीं।

अनाज में सब से अधिक जीवनी और सहन-शक्ति-वर्धक पदार्थ चोकर है। इसलिए रोटी के शक्तिवर्धक तत्वों की रक्षा करने के लिए आटे में चोकर का मिला रहना, अत्यावश्यक है। गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा आदि के बाद चावल का नम्बर आता है।

फूल

[श्रीमती गायत्री देवी "विन्दु"]

अहो फूल क्यों आज फूल कर,
फूले नहीं समाते हो।
अपने रूप-रङ्ग की शोभा,
देख-देख मुसकाते हो॥

❀

रूप-रङ्ग की चारु छटा पर,
मन ही मन इतराते हो।
जग के सभी जनों के मन में,
सरल प्रेम उपजाते हो॥

❀

अपने इस अधखिलेपने पर,
है अभिमानी मान तुम्हें।
रूप सुरङ्ग सुगन्ध-सुधा पर,
है इतना अभिमान तुम्हें॥

❀

इसी भूल में भूल भ्रमर का,
आज कर रहे हो अपमान।
हो भूले हम सदा रहेंगे,
इसी तरह शोभा के खान॥

पर यह भूल तुम्हारी है,
न रहोगे इसी तरह सब दिन।
इन डालों से झड़ जाओगे,
'पतित पुष्प' होकर एक दिन॥

❀

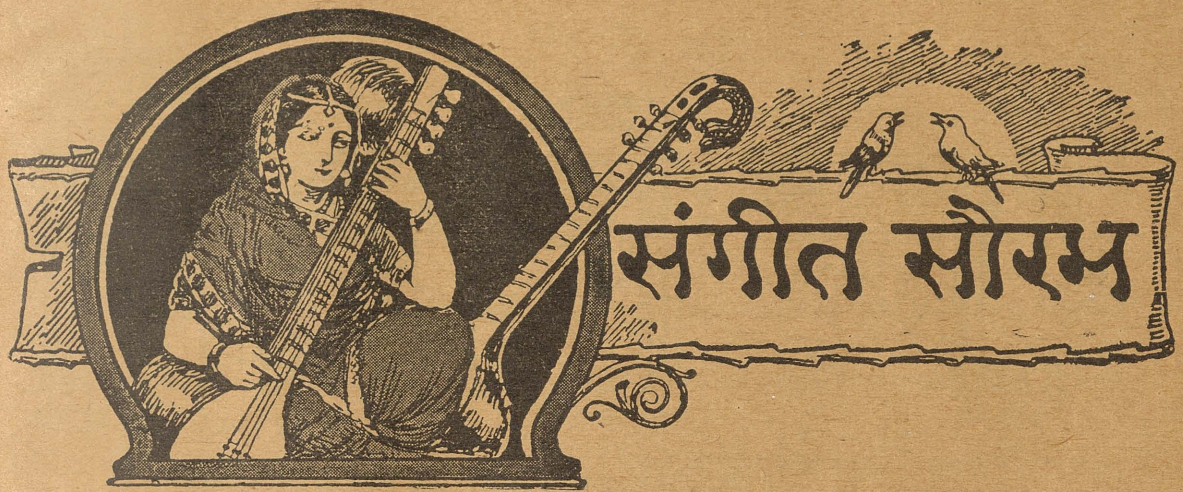
नहीं रहेगी रूप-माधुरी,
नहीं सुधा की यह प्याली।
नहीं रहेगी सदा गूँजती,
भ्रमर-भीर यह मतवाली॥

❀

नहीं जगत में रह सकता है,
सदा किसी का एक-सा दिन।
सदा प्रात के बाद रात है,
सदा रात के पीछे दिन॥

❀

अतः मान सिख सुमन हमारी,
मत इतना अभिमान करो।
त्याग मान मद मोह 'विन्दु',
अब निराकार का ध्यान करो॥



[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री० किरण-कुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

भैरवी दादरा

[शब्दकार—अज्ञात]

स्थायी—हे प्रेममय प्रभो तुम्हीं सबके अधार हो।
तुमको परम पिता प्रणाम बार-बार हो ॥

अन्तरा १—ऐसी कृपा करो कि हम सब धर्मवीर हों।
वैदिक पवित्र धर्म का जग में प्रचार हो ॥

असहाय के सहाय हो उपकार हम करें।
अभिमान से बचें हृदय निर्भय उदार हो ॥

	क	×			०			×	क		०
स	रे	म	—	म	म	—	प	पप	ध	प	म
हे	ए	प्रे	—	म	म	य	प्र	भोओ	ओ	तु	म्ही
क				क	क		क				
ग	—	म	—	रे	ग	—	रे	स	—	—	—
स	ब	के	—	अ	धा	—	र	हो	—	—	—

अन्तरा

क					क		क	क क			
ध	—	म	—	म	ध	—	नि	धनि	सं	सं	सं
ऐ	—	सी	—	कृ	पा	—	क	रो ओ	ओ	कि	हम
		क		क		क	क				
सं	—	नि	—	नि	सं	नि	ध	प	—	—	—
स	ब	ध	—	र्म	वी	ई	र	हों	—	—	—
क						क					क
ग	म	प	—	प	प	ध	प	म	प	म	ग
व	ए	दि	क	प	वि	ई	त्र	ध	अर	म	का
क				क	क		क				
ग	—	स	—	रे	ग	—	रे	स	—	—	—
ज़	ग	में	—	प्र	चा	—	र	हो	—	—	—

गृह-विज्ञान

[श्री० मोहनलाल जी मेहरा, वैद्य]

सर्प-दंशन-चिकित्सा

साँप बड़ा ही भयङ्कर और विषैला जन्तु है। इसके काटने से न जाने कितने मनुष्य प्रति वर्ष मौत के मुँह में चले जाते हैं। यद्यपि यह हमारे लिए अत्यन्त भयङ्कर जीव है, तो भी बहुत से विद्वानों के मतानुसार, यह दिन-रात हमारी भलाई किया करता है। हमारे शरीर से जो दूषित वायु निकलती है, यह उसे अपनी साँसों द्वारा शुद्ध करता है। इसलिए ऐसे उपकारी जन्तु की हत्या करना अनुचित और अधर्म है। किन्तु अपनी जान की रक्षा के लिए इनसे बच कर रहने का उद्योग करना भी आवश्यक है।

तात्कालिक उपाय

जिस समय साँप काटे, उसी समय कटे हुए स्थान को चीर कर थोड़ा-सा लहू बहा देना चाहिए और काटे हुए स्थान से तीन अङ्गुल दूरी पर, ऊपर की ओर कस कर बाँध देना चाहिए, जिसमें नीचे का ख़ून ऊपर न चढ़ने पावे। इस तरह तीन-तीन अङ्गुल पर तीन जगह बाँधना चाहिए। साथ ही रोगी को पन्द्रह-बीस घण्टे तक सोने नहीं देना चाहिए। भूख और प्यास लगने पर केवल थोड़े गर्म दूध में घी और गोल मिर्च मिला कर देना चाहिए।

कुछ औषधियाँ

१—नीम के पत्ते और गोल मिर्च, जब तक ज़हर न उतरे, तब तक बराबर खिलाते रहना चाहिए।

२—सफ़ेद कनेर के सूखे हुए फूल ६ माशे, कड़वी तम्बाकू (सुरती) ६ माशे और छोटी इलायची के दाने २ माशे—इन तीनों को ख़ूब महीन पीस कर नस्य बना कर सुँघाने से सर्प-विष उतर जाता है।

३—घर का धुँआ (झोल), हल्दी, दारुहल्दी और जड़ समेत चौलाई—इन सबको दही में पीस कर और थोड़ा घी मिला कर पिलाने से सर्प-विष उतर जाता है।

४—गोल मिर्च (काली मिर्च) ७ माशे और जमालगोटे की गिरी ७ माशे—इन दोनों को तीन अदद काग़ज़ी नीबू के रस में घोंट कर गोल मिर्च के समान गोलियाँ बना कर रख देना चाहिए। सर्प के डसे हुए मनुष्य की आँखों में एक गोली पानी में घिस कर आँजने और दो-तीन गोली खिलाने से सर्प-विष उतर जाता है।

५—सफ़ेद गोल मिर्च पीस कर सिरस के पत्तों के रस में खरल करके सुखा ले। इस तरह से ७ दिन में ७ बार सुखा करके रख दे। साँप के काटने पर इस दवा को खिलाने, सुँघाने और आँखों में आँजने से विष निश्चय उतर जाता है।

६—वमन कराने से भी सर्प-विष उतर जाता है।

साँप को भगाने का उपाय

जहाँ साँप हो, वहाँ जमालगोटा या राई रख देने अथवा बिखेर देने से, वह उस जगह से भाग जाता है। हल्दी जलाने से भी सब प्रकार के विषैले जन्तु भाग जाते हैं।

विष से बचने का उपाय

पुराने सिरस की काली छाल ८ माशे, तीन दिन तक नित्य पीस कर साठी के चावल के धोवन के साथ



पीने से विषैले जन्तुओं के डसने का विष एक वर्ष तक नहीं बढ़ता, बल्कि वे ही मर जाते हैं।

सर्प का डसा हुआ मनुष्य मर गया हो या बेहोश हो, उसकी पहचान

१—यदि सर्प डसे हुए मनुष्य की आँखों में चमक हो, तो समझना चाहिए कि वह जीता है।

२—यदि उसकी आँखों में देखने वाले का चेहरा नज़र आवे तो समझना चाहिए कि रोगी अभी जीता है।

३—यदि उसकी आँखों की पुतलियों में दीपक की ज्योति नज़र आवे तो समझना चाहिए रोगी जीता है।

४—बेहोश रोगी की छाती पर बहुत हलके कटोरे में पानी भर कर रखने से यदि पानी हिले, तो समझना चाहिए कि वह जीवित है।

साँप के काटे हुए रोगी को मरा समझ कर तुरन्त गाड़ देना या पानी में डुबा देना उचित नहीं है, क्योंकि वह कई दिनों तक ऐसा बेहोश रहता है कि देखने वाले समझते हैं कि मर गया। ऐसी अवस्था में घबड़ाना नहीं चाहिए और रोगी के पास रह कर उसकी बाहरी चिकित्सा करनी चाहिए। साँप के बेहोश रोगी को तुरन्त होश नहीं होता है; देर से होता है। इसलिए दो-एक दिन तक लाश को रख कर चिकित्सा करनी चाहिए।

यदि साँप का रोगी बहुत बेहोश हो और मुर्दा सा जान पड़े, तो उसकी नाभी को किसी तेज़ चाक़ू या अस्तुरा से ऐसा छीले कि लहू न निकले। इसके बाद उस पर जमालगोटे की गिरी पानी में घिस कर लगा देना चाहिए। ऐसा करने से रोगी को क़ै या दस्त होकर होश आ जायगा। होश आने पर फिर खिलाने-पिलाने वाली चिकित्सा करनी चाहिए।

'आह !'

['बचेल']

आह ! मेरे मतवाले प्रेम !
मचलते जाते हो किस राह ?
स्वार्थ की सिद्धि न होगी आज,
न करना मिलन-मोद की चाह !

❀

दीन पुष्पों का लेकर सार,
लूटता उनका सब शृङ्गार !
प्रेम की रज्जु डाल कर भौंर,
छिप जाता निर्दय व्यापार !

❀

मृगा सुन कर मुरली की तान,
भूल जाता अपना सर्वस्व;
अचेतनता में खोता प्राण,
प्रेम का ऐसा है भवितव्य !

❀

शलभ दीपक से करके प्रेम,
कहो क्या पाता है उपहार ?
जलन की पीड़ा, दाह अपार !
आह क्या यही प्रेम-व्यवहार।

❀

यही है इस दुनिया की रीत,
न करना कभी मिलन की चाह !
मिलेगा दारुण-दाह अपार,
इसे तुम 'प्रेम' कहो या 'आह !'





मैं क्या बताऊँ क्या है मेरे दिल की आरज़ू

[नाख़ुदाय सख़ुन हज़रत "नूह" नारवी]

क्यों अब तुम्हें नहीं है, मेरे दिल की आरज़ू,
लैला को होनी चाहिए, महमिल की आरज़ू !
दुनिया में अब तुम्हें यही, क्या काम रह गया,
इस दिल की आरज़ू कभी उस दिल की आरज़ू !
वह क़त्ल कर गया, तो यह बरबाद कर गई,
क़ातिल से कम न थी, मेरे क़ातिल की आरज़ू !
ऐसा न हो कि पूछ के, वह शर्मसार हों,
मैं क्या बताऊँ, क्या है मेरे दिल की आरज़ू !
उभरेंगे हम, न बहरे[1] मुहब्बत में डूब कर,
वह और ही हैं, जिनको है साहिल[2] की आरज़ू !
हमको तमाम उम्र, यह अरमान ही रहा,
क्योंकर निकालता है, कोई दिल की आरज़ू !
देखा तो यह भी अरसए[3] महशर से कम नहीं,
मुद्दत से थी हमें, तेरी महफ़िल की आरज़ू !
घर चाहिए इसे, कोई रहने के वास्ते,
क्यों आरज़ू को हो, न मेरे दिल की आरज़ू !
ऐ "नूह" ज़िन्दगी मेरी, तूफ़ान ही सही,
क्या बहरे ग़म में हो, मुझे साहिल की आरज़ू !

१—समुन्दर २—किनारा ३—प्रलय

वह मुझसे पूछते हैं, मेरे दिल की आरज़ू

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

पूरी कहाँ हुई, दिले बिस्मिल की आरज़ू,
अब तक इसे है, ख़ञ्जरे क़ातिल की आरज़ू !
इस आरज़ू में, जान भी अपनी निकल गई,
पूरी मगर हुई न कभी, दिल की आरज़ू !
लाई है आज सारे ज़माने को, खींच कर,
कूचे की आरज़ू, तेरी महफ़िल की आरज़ू !
जब डूबना लिखा हो, हमारे नसीब में,
तो बहरे ग़म में, क्या करें साहिल की आरज़ू !
मैं क्या बताऊँ, क्या कहूँ, क्या जानते नहीं,
वह मुझसे पूछते हैं, मेरे दिल की आरज़ू !
सब कह रहे हैं यह, तेरी महफ़िल में बैठ कर,
अब जीते जी न हो, किसी महफ़िल की आरज़ू !
ज़र्रें हमारी ख़ाक के, उड़ते हैं हर तरफ़,
क्या थी, हवाए दामने क़ातिल की आरज़ू !
जिस दिल से फिर गई है, तुम्हारी निगाहे लुत्फ़,
अब फिर हुई है इसको, उसी दिल की आरज़ू !
हैरत की बात है, यह तअज्जुब की बात है,
तुम और तुम को, हज़रते "बिस्मिल" की आरज़ू !

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]

पसे मर्ग मेरी मज़ार पे जो दिया किसी ने
जला दिया,
उसे आह ! दामने बाद ने सरेशाम ही से
बुझा दिया !

गत मास हिन्दू-समाज के कुछ ख़िज़ाबी नौजवानों ने 'चला चली के राह में भलाभली' कर लेने के महान उद्देश्य से प्रेरित होकर तथा श्रीसनातनधर्म को सदा के लिए अटल-अचल कर देने के लिए दुधमुँही बालिकाओं को बीबियाँ बनाने की जो कृपा की थी, उसे देख कर श्रीजगद्गुरु अत्यन्त आशान्वित हुए थे। सोचा था कि बाबा औलिया पीर की कृपा से अभी 'गुरुआई' कुछ दिन और चलेगी तथा भाँग-बूटी की अहर्निश चिन्ता से मुक्ति मिलेगी।

❀

परन्तु कहावत है कि 'मेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और !' अभी इस ख़याली-पुलाव का रसास्वादन समाप्त भी नहीं होने पाया था कि चारों ओर से धर्म-ध्वंसिनी ख़बरों के ओले बरसने लगे। परन्तु यह तो कहिए कि हज़रत की खोपड़ी महाराज मानधाता के ज़माने की है और, ख़ुदा झूठ न बुलवाए, पूरी पचहत्तर बरसातें इस पर से गुज़र चुकी हैं। वरना, बाप रे बाप, श्रीमती हर होलीनेस का सारा सौभाग्य-सिन्दूर ही खटाई में पड़ जाता और आगामी सावन में दाढ़ी पकड़ कर हिंडोला झूलने के मज़े को बेचारी तरसती ही रह जातीं।

❀

ख़ैर, इस संक्षिप्त भूमिका या प्राक्कथन के पश्चात् अब ज़रा मूल विषय के प्रथम सर्ग का मुलाहिज़ा कीजिए। अभी हाल ही में काश्मीर-दरबार ने एक क़ानून पास करके विधवा-विवाह को विहित बना डालने की बेवक़ूफ़ी कर दी है। ऊपर से 'दाल-भात में मूसरचन्द' की तरह महात्मा गाँधी ने काश्मीर के युवकों को यह सङ्कल्प कर लेने का आदेश प्रदान किया है कि विधवाओं से ही विवाह करें। और अगर जाति की विधवाएँ न मिलें तो पर-जाति की विधवाओं से करें। अर्थात् बेचारे सनातनधर्म की जड़ ही न खोदें, वरन् उसकी जड़ में थोड़ा सा मट्ठा भी उँडेल दें।

❀

अब आप ही ईमान-धर्म से बताइए कि किस धर्म की ज़िन्दगी इतनी बेहया होगी जो यह दोहरी नहीं, बल्कि तेहरी मार खाकर जीता रहेगा। एक तो बेचारे सनातनधर्म का जरा-जीर्ण शरीर, तिस पर आए-दिन की मुसीबतें! ख़ुदा ही ख़ैर करे, कहीं दादा जी ने उस पार के लिए टिकट कटाया तो कितनी ही तोंदें पिघल कर पानी हो जायँगी। इसलिए श्रीजगद्गुरु की राय है कि नवयुवक न तो विधवा से शादी करें, न सधवा से। यह परलोक सुधारने वाला काम हमेशा के लिए बूढ़ों को ही सौंप दिया जाए। और अगर मुमकिन हो तो मरने के बाद भी उन्हें दो-चार शादियाँ कर लेने की 'परवानगी' दे दी जाए। 'पितरपख' में पिण्डा-पानी तथा वृषोत्सर्ग की जगह दर्जन दो दर्जन किशोरियों का ही उनके नाम पर उत्सर्ग हुआ करे और इस प्रथा का नाम 'बीबियोत्सर्ग' रख दिया जाए तो कैसा ?

❀

बात यह है कि अगर हिन्दू-समाज विधवा-शून्य हो जाएगा तो सनातनधर्म की नौका मझधार में ही डूब जाएगी। वरना, यह बेहतर होता कि बूढ़े लोग कुमारियों से शादियाँ किया करते और नवयुवक गण 'प्रसाद'

स्वरूप उनकी (बूढ़ों की) परित्यक्ता विधवाओं से। हमारी धारणा है कि इसमें नवयुवकों की अपेक्षा बूढ़ों को अधिक लाभ होता। क्योंकि बुढ़ौती में आक़बत की राह दुरुस्त कर लेने के लिए उन्हें 'अनटच्ड बाई हैण्ड' बीबी मिल जाती और मर जाने पर 'प्रसाद' पाकर नवयुवकों के रोम-रोम से जो आशीष निकलती, उससे स्वर्ग में भी उन्हें काफ़ी शान्ति मिलती।

❀

आशा है, बूढ़े लोग श्रीजगद्गुरु की इस 'दोनों हाथों' लड्डू वाली सलाह से लाभ उठावेंगे और झट-पट नवयुवकों के साथ एक 'हिन्दू-मुस्लिम पेक्ट' की तरह पेक्ट या गाँधी-इर्विन समझौते की तरह समझौता कर डालेंगे।

❀

ख़ैर, और सुनिए। कहा है कि "एक व्याधि ते नर मरहिं ये असाध्य बहु व्याधि !" काश्मीर राज्य ने तो धर्म की केवल लुटिया ही डुबाई थी, मगर बड़ौदा राज्य ने तो एकदम बेड़ा ही ग़र्क़ कर दिया। इस राज्य ने हिन्दू-समाज की उच्च जातियों में भी 'तिलाक प्रथा' जारी कर देने की स्वीकृति दे दी। अब अगर कहीं बूढ़े बाबा की कमर में दर्द हुआ, तो नौजवान बीबी हल्दी-तेल की मालिश करने के बदले पतिदेव को छोड़ कर रफ़ूचक्कर हो जाएगी। बेचारे बूढ़े अपनी जन्म भर की कमाई लगा कर बुढ़ौती में एक 'स्वर्ग-सङ्गिनी' ख़रीदेंगे और वह भी बीमारी का बहाना करके चलती बनेगी ! इससे तो बेहतर था कि ये राजे-महाराजे एक दिन सनातनधर्म को ज़हर दे देते। और नहीं क्या, यों कोंच-कोंच कर मारने की अपेक्षा तो यही बेहतर था।

❀

भई, सनातनधर्म के लँगोटिया यार होने पर भी हिज़ होलीनेस न तो तलाक़-प्रथा के विरोधी हैं और न 'बीबी बदलौअल' के। इनकी राय सिर्फ़ इतनी ही है कि यह अधिकार केवल पुरुषों को ही होना चाहिए, स्त्रियों को नहीं। क्योंकि पति चाहे अन्धा हो या कोढ़ी, लँगड़ा हो या रोगी, बूढ़ा हो या बच्चा, स्त्री को चाहिए कि तन-मन और धन से उसकी सेवा करती रहे। क्योंकि शास्त्रानुसार—"ऐसेहु पतिकर किए अपमाना, नारि-पाव यमपुर दुख नाना।" इसलिए यहाँ अगर थोड़ी सी तकलीफ़ उठानी पड़ेगी तो कोई चिन्ता नहीं, यमपुर में आनन्द लेने की व्यवस्था का ख़्याल अवश्य रखना चाहिए।

❀

बड़ौदा के इस क़ानून में यह भी दर्ज है (मगर इसे अपने ही तक रहने दीजिएगा, वरना कहीं श्रीमती गुरुआनी जी के कानों में भनक पड़ गई तो बेचारे जगद्गुरु की सारी बुढ़ौती ही किरकिरी हो जाएगी) कि अगर पति शराब पीता हो या और कोई किसी नशे का आदी हो तो भी वैवाहिक सम्बन्ध का विच्छेद हो सकता है। बतलाइए, विवाह क्या हुआ, मानो काँच का खिलौना हो गया। इधर गुरु जी ने भाँग रगड़ने के लिए भङ्ग-घोंटना सँभाला और उधर गुरुआनी जी बोरिया-बँधना समेट नौ-दो ग्यारह ! बेचारे बुढ़ौती में ग़म ग़लत करने से भी रहे ! महीने दो महीने अरग़वानी या ज़ाफ़रानी के मज़े लेने की इच्छा हुई और बग़ल ख़ाली ! कभी किसी कोठे पर जाकर 'टेस्ट' बदलने की इच्छा हुई और घर ख़ाली !

❀

इसलिए श्रीसनातनधर्म को चाहिए कि वे अपना बोरिया-बिस्तर समेट कर बड़ौदा और काश्मीर से सीधे ब्रिटिश भारत में चले आवें। क्योंकि आजकल यहाँ श्रीमती नौकरशाही का रामराज्य है। बच्चियाँ बूढ़ों को ब्याही जाती हैं और किशोरियाँ खूसटों को। विवाह एक दर्जन कर डालिए, कोई पूछने वाला नहीं; शराब में आपादमस्तक डूबे रहिए, मजाल नहीं बीबी की, जो चूँ करे। सारदा-क़ानून तोड़ने के बहाने भूमिसात होने से पहिले ही बच्चे और बच्चियों को पवित्र विवाह-बन्धन में बाँध कर लटका दीजिए, कोई बात नहीं। घर में बीबी पातिव्रत धर्म का पालन करे और स्वयं बी महताबो के कोठे पर—'तेरी भोरी सी उमर बाँके नैना !' के मज़े लीजिए, ताब नहीं किसी में जो दख़ल दर माक़ूलात की जुर्रत कर सके। यहाँ न तलाक़ का भय है, न मनमाना गुलछर्रे उड़ाने में कोई बाधा !

❀

परन्तु हाँ, ज़रा गाँधी की आँधी से सावधान रहना आवश्यक है, अन्यथा कुछ दिनों में स्वयं चूल्हा फूँकने की नौबत आ जायगी। क्योंकि सुनते हैं, स्त्रियाँ भी अपना अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा में लगी हैं। गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए बड़े लाट के पास डेपुटेशन लेकर पहुँचती हैं और कहीं पति की सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करने की धुन में लगी हैं। अगर यही दशा रही तो पुरुषों की तरह दाढ़ी-मूँछ बना देने के लिए अल्लाह मियाँ के पास भी एक डेपुटेशन लेकर पहुँच जाएँगी। कमबख़्तों की स्पर्धा तो देखो, भला इन्हें कौन सी तकलीफ़ है, जो 'अधिकार-अधिकार' करके जान खाए जा रही हैं। पुरुष बेचारे सूम की सम्पत्ति की तरह इन्हें तहख़ानों में बन्द रखते हैं, गहने पहनने के लिए तीन सूराख़ नाक में और पूरे चौदह दोनों कानों में करा देते हैं। 'पिता रक्षति कौमारे' इत्यादि के अनुसार जन्म भर चैन की वंशी बजाने की व्यवस्था तो शास्त्रों ने ही कर रक्खी है। इतने पर भी इन्हें न जाने कौन सा अधिकार चाहिए?

❀

विधवा हो जाने पर सशरीर स्वर्ग उर्फ़ पतिलोक पहुँचने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की व्यवस्था कर दी गई है। पूजा-अर्चा की सुगमता के लिए तुलसी का वृक्ष आँगन में ही लगा दिया जाता है। भोजन के लिए पवित्र शाकान्न और शयन के लिए वेद-विहित कुशासन, तीर्थ करें, व्रत करें, कथा सुनें और माला फेरें और चाहिए क्या जनाब? विधवा भी तो वे अपने ही कर्मों के फल से होती हैं या कोई उन्हें बाध्य करता है? अगर उन्हें कष्ट होता हो तो न हुआ करें विधवा, जन्म भर सधवा ही बनी रहें। कोई मना थोड़े ही करने जाता है?

❀

इसलिए हमारी तो राय है कि जितना सुख स्त्रियों को हिन्दू-समाज में है, उतना किसी को स्वर्ग में भी प्राप्त न होगा। निश्चय ही ये पूर्व-जन्म की पवित्रात्माएँ हैं और बड़े भाग्य से इस जन्म में हिन्दुओं के घर की स्त्रियाँ हुई हैं। इसलिए भलमनसाहत तो इसी में है कि वे किसी प्रकार के अधिकार या उत्तराधिकार की चेष्टा न करें और दिलोजान से पुरुषों की दासियाँ बनी रहें, जिसके लिए परम दयालु परमात्मा ने उनकी सृष्टि की है। परन्तु अगर इतने पर भी न मानें तो पुरुषों को चाहिए कि 'वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ' द्वारा फ़ौरन इसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दें, नहीं तो सनातनधर्म और हिन्दू-समाज दोनों को एक साथ ही रसातल की राह लेनी पड़ेगी।

❀

श्रीजगद्गुरु ने अपनी 'ज्ञानानन्दी' दाढ़ी खुजला-खुजला कर जहाँ तक स्त्रियों के इन आए-दिन के उत्पातों के कारणों पर विचार किया है, वहाँ तक इन्हें यही सूझ पड़ा कि इस सारे फ़साद की जड़ श्रीमती नौकरशाही हैं। ये स्वयं जैसी पढ़ी-लिखी, चुस्त-दुरुस्त और कचालू सी स्वादिष्ट हैं, वैसी ही इस देश की स्त्रियों को भी बना डालना चाहती हैं। इनकी राय है कि स्त्रियाँ पढ़-लिख कर राजकाज सँभालें और बेचारे पुरुष लँहगा-साड़ी पहन कर बच्चे जना करें।

❀

इसीलिए वे ब्रिटिश भारत की बारह करोड़ और तीन लाख स्त्रियों को झटपट विदुषी और पण्डिता बना डालने की इच्छा से प्रति वर्ष पूरे दो करोड़ रुपए ख़र्च कर डालती हैं। एकदम माले मुफ़्त दिले बेरहम का मामला है। प्रत्येक स्त्री की शिक्षा के लिए साल में ढाई आने और कुछ अङ्गरेज़ी पाइयाँ अलग! बतलाइए, संसार में आर्थिक कष्ट न फैले तो क्या हो? हमें तो डर है कि अगर श्रीमती जी ने अपनी थैली का मुँह कुछ दिन और इसी तरह खुला रख दिया तो चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी कोई बेपढ़ी स्त्री इस देश में दिखाई न देगी।

❀

और जनाब, उस वक़्त सब से बड़ा अनर्थ तो यह हो जाएगा कि सारे काम स्त्रियों के हाथों में चले जायँगे। वे दफ़्तरों की नौकरियाँ ले लेंगी, इजलासों पर दख़ल जमाएँगी, वकालत करेंगी, हवाई जहाज़ चलाएँगी, कौन्सिलों में जाएँगी और सच मानिए, क़ानून बनवा कर बूढ़ों का ब्याह भी रोकवा देंगी। हिन्दू-समाज विधवा-शून्य हो जाएगा। बेचारे धार्मिकों की, पुत्रवधू का मुँह देख कर मरने की लालसा मन में ही विलीन हो

जाएगी। शास्त्रानुमोदित बाल-विवाह की प्रथा पर पानी फिर जाने के कारण महर्षि मनु की स्वर्गस्थ आत्मा, आश्चर्य नहीं, कुढ़ कर आत्म-हत्या कर ले !

❀

इसलिए हिन्दू-समाज के कर्णधारों, सूत्रधारों और 'पगड़ाधारों' को चाहिए कि सब से पहले श्रीमान लाट साहब की सेवा में एक डेपूटेशन भेज कर, इस संसार-व्यापी आर्थिक सङ्कट के दिनों में, स्त्री-शिक्षा के लिए प्रति स्त्री दस पैसे सालाना के ख़र्च को रोकने की चेष्टा करें, नहीं तो क़सम ख़ुदा की, श्रीमती नौकरशाही को एक दिन दिवाला बोल देना पड़ेगा और बक़ौल बूढ़े कवि श्रद्धेय शङ्कर जी के—

पढ़ी नारि नय्या डुबो जायगी,
किसी मित्र की मेम हो जायगी।

❀

हाँ, एक बात तो भूले ही जा रहे थे। सुनते हैं, पटने के कोई कुलीन हिन्दू महोदय दहेज की कुप्रथा के कारण अपनी कन्या का विवाह किसी सुपात्र से नहीं कर सकते थे, इसलिए कन्या भवभयहारी किरासिन तेल की शरण लेकर आजीवन कौमार्यव्रत का पालन करने के लिए स्वर्ग चली गई। बस जनाब, इसी ज़रा सी बात के लिए लोगों ने दहेज-प्रथा के विरुद्ध जहाद का झण्डा खड़ा कर दिया है। कोई दहेज लेने वाले पिताओं को कोस रहा है, तो कोई विवाहार्थी नवयुवकों को ललकार रहा है।

❀

परन्तु कहावत है कि 'जाके पाँव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।' बेचारे पिता ने मोशक़्क़त के साथ लड़का पैदा किया, उसे पढ़ाया-लिखाया, आदमी बनाया, उसके पीछे हज़ारों रुपए ख़र्च किए। ऐसी हालत में उसे क्या पड़ी है जो मुफ़्त ही अपने लड़के को किसी का दामाद बनने दे ? इसके सिवा इज़्ज़त-आबरू की रक्षा के लिए शादी में नाच, बाजा, तम्बू, शामियाना, जुलूस, रोशनी और आतशबाज़ी आदि का इन्तज़ाम करना पड़ता है। बहू के लिए सुनहले-रुपहले गहने बनवाने पड़ते हैं। आख़िर, इन कामों में रुपए लगते हैं या नहीं ? तो फिर दहेज न लिए जायँ तो ये रुपए आएँगे कहाँ से ? आसमान से या आपके घर से ?

❀

फिर लड़कों को क्या पड़ी है जो पूज्य पिता की आमदनी में अड़ङ्गे लगा कर नालायक़ों की सूची में अपना नाम दर्ज करावें ? मुफ़्त में बीबी मिले और उसके साथ ही हज़ार-दो हज़ार की रक़म भी लेती आवे तो इसमें क्या बुराई है, जो लड़के इस प्रथा का विरोध करें ? इसलिए श्रीजगद्गुरु की राय है कि लड़के इस बात की प्रतिज्ञा कर लें कि जब तक बीबी और बीबी के वज़न भर रुपए न मिलेंगे, तब तक शादी ही न करेंगे। आख़िर, पिता-माता के श्राद्ध के लिए भी तो रुपए चाहिए। फलतः यह रक़म अगर बीबी के नैहर से ही चली आए तो क्या बुराई है ?

❀

श्रद्धेय दादा पण्डित रामनारायण जी चतुर्वेदी बी० ए०, रिटायर्ड तहसीलदार उम्र ५८ (केचित ऋषि-नाम मतानुसारः ६१) साल, तीर्थराज प्रयाग की शोभा हैं। आपकी श्रीमती जी ने अभी हाल में ही स्वर्ग-यात्रा कर दी है और इधर सावन समीप है, इसलिए दादा जी ने अपनी एक द्वादशी साली जी को 'प्रोमोशन' प्रदान कर स्वर्गीया श्रीमती के रिक्तासन पर समासीन करने का विचार किया था, बजिन्सहू उस मनचले उर्दू शायर के, जिसने क़ब्र में जाने पर अल्लाहताला से फ़रियाद की थी—

"या ख़ुदा ज़न्नत से किसी हूर को भेज,
मेरे मौला, मुझे आदत नहीं तनहाई की !"

❀

मगर यारों ने सारा का सारा गुड़ गोबर करके धर दिया ! समझा-बुझा कर थके तो अदालत की शरण ली और दादा जी की आसन्न फलान्विता आशा-लता पर एकदम तुषार-वर्षा कर दी। कमबख़्तों ने ऐसी जगह लाकर कमन्द तोड़ी कि, "दो चार हाथ जब कि लबे बाम रह गया !" इस तरह जनाब आली, बसने से पहले ही एक भले आदमी की गृहस्थी उजड़ गई, सावन के मज़े पर पानी फिर गया ! एक विधवा की वृद्धि रुक जाने से बेचारे सनातनधर्म की भी शोभा नष्ट हुई ! दई-मारों ने बण्टाढार करके रख दिया !

Regd. No. A—1154

Printed and Published by Tribeni Prasad B. A.—Editor—at The Fine Art Printing Cottage
28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad

This PDF you are browsing now is in a series of several scanned documents by the Centre for the Study of Developing Societies (CSDS), Delhi

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/ institutions in making the digitzation possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for faciliating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.



